

ललित किशोरी : व्यक्तित्व और कृतित्व

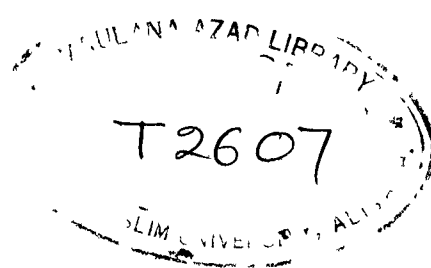
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध का सार



निर्देशक :
डा० गोवर्धननाथ मुक्ल
नि० आचार्य हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्त्री :
श्रीमती सरला शर्मा
एम० ए०

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़



सलित किशोरी : व्यक्तित्व और कृतित्व

सलित किशोरी जी ने लखनऊ और वृन्दावन में रहकर जी भरित साधना और काव्य रचना की उसकी सफ़ाजीन परिस्थितियाँ क्या थीं ? यह जान लेने के बाद उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का सही-सही वाकलन हो सकेगा । यद्यपि साधनाएँ होने के कारण सलित किशोरी जी वात्स केन्द्रित और वन्तर्मुख हो अधिक थे क्तः अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक हलचलों का अत्यधिक प्रभाव उनकी रचनाओं पर नहीं पड़ा है फिर भी धार्मिक परिस्थितियों का तो प्रभाव रहा ही होगा । प्रचारान्तर से कोई भी कलाकार या साधक अपने समय के प्रभाव से जूझता नहीं रह सकता है। संस्कार और वातावरण व्यक्तित्व की संरचना में प्रबल कारण बनते हैं ।

शाह जी के कार्यकाल की स्थूल रूप से विभ्रम की उन्नीसवीं शती का अन्तिम और बीसवीं शती के प्रथम दो चरण का माना जा सकता है। साठ-सत्तर वर्ष का यह कालखण्ड बड़ी उथल-पुथल और अनिश्चितता का वातावरण लेकर आया था । मुगलों की शक्ति क्षीण हो गई थी । अफगानिस्तान के अहमदशाह अब्दाली के बार-बार आक्रमण हुए । दिल्ली के निकट होने और धर्म स्थान होने के कारण मथुरा-वृन्दावन विधर्मों काक्रान्ताओं के मुख्य लक्ष्य रहे । वृन्दावन अब्दाली के आक्रमण ने नष्ट प्रष्ट कर दिया था । इसकी प्रतिक्रियास्वरूप

भक्तों के हृदयोंमें भक्ति-साधना का भाव और अधिक गहराई के साथ
उभरा ।

मुगल शक्ति के हाथ ने उत्तर भारत की
बन्य राज शक्तियों को उभर उठने का अवसर भी दिया । इनमें मराठे
और भरतपुर के जाट विशेष रूप से प्रबल बन गये । मराठों ने माऊ खा-
शिराव और माधव जो सिन्धिया के नेतृत्व में और जाटों ने सूरजमल एवं
उनके पुत्र बहादुर सिंह के नेतृत्व में शक्ति संगठन किया । प्रजा की भाँति
ये शासक लोग भी विशेष रूप से भक्ति भाव संपन्न और वृन्दावन के प्रति
श्रद्धावान् थे । इस कारण वृन्दावन में धर्म-साधना के लिए उत्तुल्लता भी
की । अवस्त देवदलियों का पुनर्निर्माण और जीर्णोद्धार किया गया ।
कई धनिकों ने इस महारम्भ में अपना योगदान दिया । मथुरा में दाका-
धारी जो का मंदिर और वृन्दावन में श्री रंग जो का मंदिर इसी प्रकार
वातावरण के परिणामस्वरूप बने । बंगाल के सेठ लालाबाबू ने वृन्दावन
में कई देवालयों का जीर्णोद्धार कराया । उनका सदावर्त की तक चल
रहा है। शाह जो ऐसे ही समय में वृन्दावन आये थे । धार्मिक वातावरण
की प्रेरणा पाकर उनके भक्ति भाव का उद्रेक घूना ही गया । वे उच्च
कोटि के साधक कवि थे । राधाकृष्ण का भव्य देवालय बना कर वहीं
रहने लगे । वृन्दावन से बाहर जाने की कल्पना भी उन्हें कष्टप्रद थी ।

शाह जी के वृन्दावन में रहते ही सन् १८५७
का प्रथम विद्रोह हुआ था । मथुरा और वृन्दावन के सेठों ने बड़ी बहादुरी
से विद्रोहियों को उत्तुल्ल बनाने में सफलता प्राप्त की । देवालयों की संरक्षित
और प्रजाजनों को उनके आश्रय का लक्ष्य बनने से बचा लिया । शाह जी

की भूमिका हमें विशेष रही। उन्होंने एक ओर अपनी सस्त्र सन्धि सेवकों की सशक्तता का प्रदर्शन किया और दूसरी ओर विद्रोहियों की बाधमग्न की। कुम्हवावन बसात बन गया। हमसे अलग साधकों के मन में साह बी के विद्रोहियों के साथ मिल जाने का भ्रम हो गया था। पर बाद में उनका खिह जाता रहा।

इस प्रकार एक ओर समाज में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन आ रहा था। दूसरी ओर धर्म के साधक विशेष रूप से अपनी व्यक्तिगत साधना चर्या में निरुपलब्ध शान्ति का अनुभव करने लगे थे। मोहम्मद मस्तानुयायी धर्मान्धों के वाङ्मयण और विध्वंस संहार समाप्त हो गए थे। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का वास्तविक स्वर कीर्तियों का शासन उत्तर भारत में बन गया था। ऐसे ही समय में हमारे वास्तविक भक्त कवि की साधना प्रारंभ हुई थी।

साह कुम्हवाला बी, बिरा साहूनाथिक निहूव नाम 'सल्लि किशोरी' या सल्लुज के धनी श्रेष्ठ परिवार में बन्ने थे। 'साह' की उपाधि उनके बाबा बिहारीलाल बी की मिली थी। उनका जन्म ^{कार्तिक} कुम्हवा द्वितीया संवत् १८८२ की सल्लुज में हुआ था। उनके पिता का नाम साह गोविन्दलाल था।

साह बी की शिक्षा परिवार में ही संकल्प हुई। ऐसा कि उस समय प्रचलित था, बापों प्रसुत रूप से कारखी-उर्दू की शिक्षा प्राप्त की। अपनी रुचि के कारण, प्रभाषा, कविता, राव-स्वामी आदि सीद्दीय भाषाओं का ज्ञान भी बापों जल्दा प्राप्त कर

लिया था। वैष्णव भक्त होने के नाते ब्रह्माज्ञा पर बाफ़ा पूर्ण अधिकार था। साह जी की समस्त रचनाओं की भाषा वहीं है। कताओं की निपुणता बापों विशेष थी। संगीत, नृत्य, रत्न परीक्षा बादि विधाओं के साह जी पारंगत कौशल थे।

साह जी का परिवार पहले से ही वैतन्ध्य सम्प्रदाय की वैष्णव भक्ति का अनुयायी था। परिवार के सब लोग यथावत् गुरुओं से भक्ति साधना की दीक्षा लेते थे। इस परिवार के गुरुओं का वंश वृन्दावन में बाज भी विद्यमान है। साह बिहारी साह जी ने वृन्दावन में राधारमण जी का मंदिर बनवाया था और उसकी पूजा-कर्मा का दायित्व अपने गुरुओं की ही दे दिया था। राधारमण जी के धर में ही एक हवेली भी बनवाकर गुरुओं की समर्पित की थी। वह बाज भी उत्तम अवस्था में विद्यमान है और गौस्वामी परिवार के अधिकार में है।

साह वृन्दावन साह जी ने गौस्वामी राधा गोविन्द जी से सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी।

सन् १६१२ वर्ष ३० वर्ष की अवस्था में बाप वृन्दावन आ गए। पचास वर्ष बाद सन् १६१७ में बापों 'सहित निरुद्ध', जिसे बाप 'साह जी का मंदिर' कहते हैं, स्थापना निर्माण प्रारम्भ किया। यह सन् १६२५ में लगभग आठ वर्ष में बन कर तैयार हुआ। इसके साथ ही लगा हुआ पूर्व की ओर बापों परिवार का बाबास गुरु बना हुआ है।

साह जी सती भाव के वैष्णव भक्त थे ।
 बापों समस्त बाहुभय में यही भाव व्याप्त है। स्वयं की राधा जी की
 अन्तर्ग सती मानते थे । वीर राधा वीर कृष्ण की झुंगार सीताजी के
 दर्शन का आनन्द अनुभव करते थे । सती सम्प्रदाय में यही 'निर्द्वेष सीता'
 कहलाती है। बापों मंदिर का नाम निर्द्वेष स्त्री अभिप्राय से बापों रत्ना ।
 बाप सर्वात्मना समर्पित भक्त थे । दिन रात सुनत मूर्ति की कर्ण- पूजा
 यथा उनकी झुंगार के ली की भावना में व्यतीत करते थे । उनका काव्य
 इस भाव मन्मता का ही परिणाम है।

कार्तिक शुक्ल द्वितीया संवत् १९३० की
 ४८ वर्ष की आयु में बापों वैशाखवासन हो गया ।

बापों वृन्दावन प्रेम विशेष प्रसिद्ध है।
 अपनी रत्नाजी में भी इसकी विशेष अभिव्यक्ति की है। वृन्दावन में साह
 जी सदा नग पैर रहते थे । बापों मत्त मूत्र कुण्डों में कर उन्हें बाहर फिकवा
 देते थे । वैसा उनका अभिलषित था, वृन्दावन में ही बापों मृत्यु मिली ।
 मरते से कुछ कास पसले बापों वृन्दावन से लिया था । वतः शरीर का अग्नि
 संस्कार नहीं किया गया । तत्ति निर्द्वेष के द्वार पर झुकी झररी में बापों
 समाधि की है। इसी के पश्चिम में झररी झररी में अनुव साह कुम्भनतास,
 निर्द्वेष नाम' तत्ति माधुरी ' की समाधि की है। बाप भी दोनों समा-
 धियों के पास फिट्टी के पात्र में प्रतिदिन जल भर कर रत्ना जाता है।

तत्ति किशोरी जी की रत्नाई प्रायः
 सभी उपलब्ध हैं वीर के प्रामाणिक भी हैं। वे तत्ति तो प्रीति सती

में ही थे। छोटे-छोटे पुर्ण पर उनके लिखे हुए पत्र मिले हैं पर उन सबका संग्रह और संपादन कर लिया गया था। तत्पश्चात् किसी भी भी मृत्यु के बाद उनके कुछ घेठ पुष्पनसासजी (निरुद्ध नाम तत्पश्चात् माधुरी) ने पहले उनकी फुटकल स्वभाव की रचनाओं का ' वसिला-वसमाधुरी ' नाम से संकलन , संपादन और प्रकाशन किया। यह प्रकाशन संवत् १९३८ में किया गया। इसके चार वर्ष बाद संवत् १९४५ में उनका शरीरान्त हो गया था। दूसरा संस्करण शाह जी और शरण जी ने संवत् १९८८ में ठीक पचास वर्ष बाद कराया। द्वितीय संस्करण प्रथम से कुछ भिन्न भी हो गया है। द्वितीय में पूर्ण की संख्या बढ़ गई है। पहले मुद्रित संस्करण की प्रति श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय कतरपुर में विद्यमान है। शाह जी के परिवारी-जनों के पास वृन्दावन में वह नहीं है। इसकी हस्तलिखित प्रति बहुत सुन्दर सुवाक्य वचनों में वक्ता बिल्कुल बद रूप में उनके पास है। इसके समग्र रूप का हस्तलेख अन्यत्र कहीं नहीं मिला। प्रकरणों के छोटे छोटे हस्तलेख अवश्य मिले हैं। ये भी सबसे अधिक कतरपुर में मिले।

दूसरी रचना ' रास कलिका ' है जो वाकार में ' वसिला-वसमाधुरी ' से बहुत बड़ी है। यह २४ वर्तों में विभक्त है। प्रत्येक वत का ' रास माधुरी ' , ' निरुद्ध विलास माधुरी ' वा वि नाम भी दिये गए हैं।

इसका वर्ण्य विषय प्रसुत रूप से रास लीलाएं हैं। शाह जी की व्यक्तित्व रूप से रास लीलाएं कराने में बड़ी रुचि थी। वह स्वयं उष्ण निर्देशन किया करते थे। उन्हीं का संग्रह रास कलिका में किया गया है।

इसके अविकल रूप का प्रकाशन नहीं हुआ ।

कुछ पन्नों को छोड़कर 'लघु रस कल्पा' नाम से चार भागों में यह प्रकाशित है। इसका विभाजन दलों में नहीं हुआ है। जैसा कि 'रस कल्पा' में विद्यमान है। 'रस कल्पा' के पत्र क्रम का भी इसमें विपर्यास है। इसके दो भागों का लक्षण से और तीसरे का प्रकाशन भी रामानुजायण भागवत के प्रबन्ध में 'लक्षण' में किया गया। चौथे का मुद्रण^{भी} मथुरा में हुआ। इस कार्य में नार वर्षों लगे। सेवत् १९३५ से प्रारम्भ होकर सेवत् १९३६ में यह संपन्न हुआ। यह प्रकाशन भी शाह कुन्दनलाल जी ने कराया था।

रसकल्पा का सुस्पष्ट, सुवाच्य लिपि में लिखा हस्तलेख शाह परिवार के पास वृन्दावन में विद्यमान है। मैं अपने कार्य में इसी का उपयोग किया है। हस्तलेख के प्रारंभ में पुस्तक की विषयसूची भी बहुत स्पष्ट रूप में दी गई है। इसमें वर्णित लीलाओं के कतिपय फुटकल हस्त लेख वृन्दावन और स्तरपुर में मिले हैं।

ललितकिशोरी जी की रचनाओं में दर्शन और भक्ति का जो स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है वह सामान्यतः साम्प्रदायिक और परम्परागत है। परंपरा में भक्ति के पाँच भेद माने जाते हैं- शान्त, वास्य, सत्य, वात्सल्य और शृंगार। इनमें क्रमशः उत्तरोत्तर भक्त की वासयित बढ़ती जाती है और वाराध्य का ईश्वरत्व विस्मृत होता जाता है। शृंगार में भक्त की वाराध्य के प्रति सबसे अधिक वासयित और सबसे कम ऐश्वर्य स्मृति रहती है। इसी भाव जो ललित किशोरी जी की काव्य रचना का केन्द्र है, शृंगार भक्ति का ही एक भेद है।

सखी तत्त्व गौपी तत्त्व का ही विकसित रूप है। इसमें प्रेम निष्काम होती है। सखियाँ राधाकृष्ण के सुख से सुखी होती हैं। यही सखी भाव का 'तत्सुख सुखित्व' है। राधा जी कृष्ण से भी अधिक महत्व लिए हुए होती हैं। युगल विहार शाश्वत और वसण्ड चलता है। उसका धाम गोलोक है। वह ब्रज से भिन्न माना जाता है।

सखी भाव के शास्त्रीय स्वरूप के सन्दर्भ में विद्वानों ने अधिक विचार नहीं किया है। साधक भक्तों की उचितियाँ ही इसका शास्त्र हैं। उनके अनुसार इसके चार प्रमुख तत्त्व हैं- श्रीकृष्ण, राधा, सखी और निकुंज। इनमें सर्वप्रधान राधा तत्त्व है। राधा जी श्रीकृष्ण की भी उपास्य हैं। उनमें श्रीकृष्ण तत्त्व का समावेश है। राधा शब्द के दो अपार 'रा' और 'धा' क्रमशः दान करने और धारण करने कर्म का बोध कराते हैं। वे इसद्वारे राधा और धारण कर्ता श्री कृष्ण के सूक्त हैं। दोनों तत्त्व एक में ही समाविष्ट हैं। इसी का नाम वदय युगल मूर्ति है। इस मत में 'रसोपासना' का महत्व है। इसीलिए युगल विहार का सर्वाधिक वर्णन किया जाता है।

तलित किशोरी जी की भक्ति भावना चैतन्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत माधुर्य भाव की थी। सखी भाव का अभिनिवेश उनका विशेष था।

सखी सम्प्रदाय रसोपासना है। यहाँ रस का कर्म है राधा और कृष्ण के रति विहार का सेवक साक्षी बनकर आनन्द लेना। सखियाँ कृष्ण किशोरी से युगल विहार की देखी और रसमग्न होती हैं। तलित किशोरी जी के वादुष्य का मुख्य प्रतिपाद यही है। इसी

पोंके दर्शन यही है कि व्यक्ति की जो काम वासना कल्याण साधना में प्रबल बाधक बनती है उसी की मगवतत्त्व से जोड़ कर कुसुम बना लिया जाता है, वह फिर बाधक न रहकर साधक बन जाती है।

सलिल किशोरी जी ने विकीर्ण रूप से अपनी वास्था के मूलभूत दर्शन का स्केत दिया है। इसके अनुसार सली भाव रहस्यात्मक गुप्त और वसिधारा व्रत है। इसमें ज्ञान और वैराग्य का भी उपयोग होता है, त्याग नहीं।

सलिल किशोरी जी अपनी को ललिता सली मानते हैं। युगल विहार में वह निकटतम सेविका है। उसे "छोहनी सेवा" मिली थी, कुंज में भागू लगाने का काम। ललिता युगल विहार की काम केलि में अन्तर्गता होकर तब भी उपस्थित रहती है : जब अन्य सलियाँ युगल को स्कान्त देने के लिए निकुंज से हट जाती हैं।

कवि ने दोनों प्रकार के भक्ति सम्बन्धी भाव अपनी कविता में व्यक्त किए हैं- सामान्य, जिसमें वैराग्य, विनय, संसार के कष्ट आदि का उत्प्रेत है और विशेष साम्प्रदायिक- जिसमें राधा और कृष्ण की मृगार केलि के वीर हृत्त चित्रण दिये हैं। यह उनका रसोपासना का साम्प्रदायिक स्वरूप है। सामान्य भक्ति के अन्तर्गत विनय, अपिलाप, अमृत निन्दा, वृन्दावन महिमा, आदि के भाव कवि ने अपनी कविता में फुटकल रूप से दितार हैं। विशेष के अन्तर्गत युगल विहार का महत्त्व, उसका स्वरूप, रास सीला आदि प्रकरणों की उद्भावना की है।

इस प्रकार ललित किशोरी जी ने विस्तार के साथ अपनी साधना का वर्णन पदा, भक्ति का सामान्य विवेचन और उसका विशेष साम्प्रदायिक स्वरूप विविध रूपों में अभिव्यक्त किया है।

ललित किशोरी जी के बाहुमय के काव्य पदा का पर्यालोचन करें तो सर्वप्रथम उनकी भाव सम्पत्ति पर दृष्टि पड़ती है। कवि के समूचे बाहुमय में एक ही भाव व्याप्त है। वह है शृंगार। इसका वात्सल्य राधा जी है वाक्य प्रोक्षणा है। दोनों के अनुपम नित नूतन सौंदर्य का भाव विभोर होकर कवि ने वर्णन किया है। यह शृंगार भावना प्रधान कम और चैष्टा-प्रधान अधिक है। इसका कारण भक्तों के लीला वर्णन की परंपरा है जो चैष्टा-प्रधान हो जाता है। दूसरा भाव शक्ति भक्ति है। कहीं कहीं हास्य का भाव भी भक्ति भावना का रंग बनकर अभिव्यक्त हुआ है।

ललित किशोरी जी की भाषा उर्दू और लड़ी बोली से प्रभावित ब्रज भाषा है। गजलों में उन्होंने उर्दू और फारसी का प्रयोग किया है। सामान्य रूप से उनकी भाषा सहज स्वाभाविक है। कवि भाषा के लिए विशेष सज्जन नहीं है। उसका लक्ष्य लीला का स्वरूप बिम्बायित करना तथा भाव को व्यक्त करना है। भाषा में उर्दू का छुट होने के कारण ही शाह जी ने कहीं-कहीं रेस्ता भाषा का भी प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी, कश्मीरी और भीजपुरी बोलियों का भी प्रयोग कहीं कहीं मिलता है।

सामान्यतः उनकी वाक्य रचना अधिधा

प्रधान होती है पर कहीं कहीं लक्षणा और व्यञ्जना के भी प्रयोग देखने में आते हैं। इसी प्रकार मुहावरे, लोकोदितियाँ भी वाक्य रचना का अंग बनते हैं।

कल्कारों का सौन्दर्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इनका प्रयोग सहज रूप में हो किया गया है, प्रयत्नपूर्वक छायास नहीं। उपमा, रूपक, वतिशयोक्ति, प्रतीप, भ्रान्तिमान्, उत्प्रेक्षा, तद्गुण, व्यतिरेक, अनुप्रास, यमक आदि कल्कारों के सफल प्रयोग अनेकत्र मिलते हैं।

शैली प्रमुख रूप से सहज, इतिवृत्तात्मक है। बिंब योजना उसका उल्लेखनीय और प्रमुख गुण है। कहीं कहीं छाया शैली का भी आश्रयण हुआ है।

सत्तित किशोरी जी ने मुक्तक और नाट्यात्मक दो प्रकार के काव्य रूप सृष्ट किये हैं। मुक्तकों में अधिक सम्बन्धी विचार शृंगार केति, आदि का वर्णन है। नाट्यात्मक शैली में लीलाओं का प्रणयन हुआ है। छुट छुट रूप में छूट शैली और प्रतीक शैली का भी प्रयोग है।

कन्द कवि ने वे भी अपनाये हैं जो रीति-काल के कवियों के हैं। अर्थात् शिष्ट साहित्य के कन्द जैसे कवित्त, संवैया और दोहा। उन कन्दों का भी कवि ने प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है जो लोक साहित्य में प्रयुक्त होते हैं। दोनों दिशाओं में कवि की सफलता अभिनन्दनीय है। शाह जी कन्दो विज्ञ कवि हैं। कन्दों के समान रागों का भी सत्तित किशोरी जी ने प्रचुर संख्या में प्रयोग किया है। सौ से अधिक

रागी के नाम उनकी रचनाओं में उल्लिखित हैं। उन्हें रागी का प्रायाणिक और व्यापक ज्ञान था।

कवि की दैन-ललित किशोरी जी की हिन्दी साहित्य की किंवा भक्ति साधना की क्या देन है ? इस प्रश्न पर विचार करें तो हम देखते हैं कि कवि की भावना का दौड़ तो सीमित है। उसने सभी भाव के अन्तर्गत ही राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं की, विलास विहारों की और भक्ति सुलभ भावों की अनुभूति की है और अपनी कल्पना के बल पर उन्हें रूपायित किया है। अपनी कल्पना से शाह जी ने बिन्दु की सिन्धु में परिणत किया है। काव्य कला की दृष्टि से यह कवि की उत्कृष्ट-नोय देन कही जायेगी। यह संभव इसलिए हुआ कि कवि की कल्पना शक्ति बहुत उर्वर और भाव की लीला रूप में साकार करने में समर्थ है।

ललित किशोरी जी का शृंगार वर्णन सुना, ग्राम्य और कहीं-कहीं साहित्य की औचित्य सीमा की लक्ष्मी हुआ लगता है। पर सभी भाव रसोपासना है जिसमें राधा कृष्ण की मानवीय भाव विलासों में वैष्टित दिला कर भक्ति रस का आनन्द लिया जाता है। उसमें जीवन की औचित्य- औचित्य की साधारण सीमा नहीं देखी जाती। अतः साधना के दौड़ में यह दोषपूर्ण नहीं है।

शाह जी का बाह्यमय अधिकतर लीलापरक है। एक लिका तो संपूर्ण रासलीलाओं को लेकर लिखी गयी है। अपने दौड़ में कवि की यह भी एक देन है कि उसने बाहर से बिना कुछ लिए इतना रास लीलाओं का साहित्य लिख दिया। शृंगार का अभिनेय बतौर होता तो आज रासधारियों के पास शाह जी का ही साहित्य प्रहुर पात्रा

में रहता ।

‘ तलित निर्द्वज ’ देवालय भी समाज की शाह जी की उत्प्रेक्षणीय देन मानी जाएगी । अपनी परिवार से पृथक् होकर अपनी ही सम्पत्ति में से ऐसे भव्य देवस्थान का निर्माण कराना अभिनिवर्णीय उदारता है। शाह जी ने अपनी संपूर्ण सम्पत्ति का स्वामी निर्द्वज विहारी की ही क्राया है।

राधा कृष्ण के शृंगार विलासों का चित्रण करते समय शाह जी ने अपनी समय के अभिजात जीवन के सब सुख वैभवों का उनसे सम्बन्ध जोड़ा है। बड़े से बड़े वैभव विलास की वे वाराध्य की सेवा में भेंट बढ़ाना चाहते थे । यह भी उनके सही भाव की उत्प्रेक्षणीय विशेषता है।

इस नागरिक वैभव विलास के साथ साथ जनपदीय लोक जीवन के चित्र भी क्लेश चित्रित किए हैं। बारहमासे , क्लेश लोलारं ऐसे ही चित्रों से भरित हैं ।

संदीप में उनकी देन निम्नलिखित हैं :

१- सही भाव की स्रान्तिक भावना और उसी की एक मात्र केन्द्र बनाकर साहित्य की सृष्टि करना ।

२- कवि की रूप विधा यिनी करुणा जिसके बल पर उसने ब्रह्म की समुद्र बना लिया है।

३- जात्मपरक साहित्य की सृष्टि । कवि युगल विहार के लीला विलास में प्रत्येक पाण स्वयं उपस्थित रहता है।

४- सही भाव के सुदृढतम रूप का चित्रण ।

५- रासलीलाओं के विपुल साहित्य की रचना ।

६- लीला वर्णन में अभिजात जीवन के सुस विलासों का उपयोग ।

७- उर्दू फारसी के काव्य शैली और भाषा शैली का उपयोग ।

८- लोक जीवन का रासलीलाओं में उपयोग ।

मूल्यविन

कवि के व्यक्तित्व के जीव पक्ष हैं। उसमें सबसे प्रबल उसका भवत रूप है। वही काव्य रचना का उत्पन्न है और उदारता की प्रेरणाभूमि है। इस रूप में तल्लिफ़िशोरी जी का यत्न अमर रहेगा ।

शाह जी काव्य साहित्य की परंपरा के कवि नहीं हैं। भक्ति के भावातिरेक ने उन्हें कवि बनाया है। इसीलिए उनका काव्य सहज अकृत्रिम है। जहाँ सौन्दर्य नागया है वह उनकी भावो-प्प्या का फल है। फिर भी कवि रूप में तल्लिफ़िशोरी जी अग्रिम श्रेणी

के नहीं तो मध्य श्रेणी के कवय हैं।

तल्लित किशोरी जी का रास रसिक रूप विशेष उल्लेखनीय है। 'रसकलिका' उनकी विशाल रचना है। यह रास लीलावर्ग का संग्रह ही है। शाह जी स्वयं रास-लीलावर्ग के अभिनय का निर्देशन किया करते थे। 'तल्लित निर्दुब' इस अभिनय का मंत्र बनता था। इसमें उनकी साम्प्रदायिक वास्था भी वृप्त होती थी।

इस प्रकार मन्त, दानी, कवि, रास-रसिक और उदारचित्त! महापुरुष के रूप में तल्लित किशोरी जी का हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान अमिट रहेगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए अपनी इतिहास में इनका उल्लेख करना आवश्यक समझा।

T2607

ललित किशोरी : व्यक्तित्व और कृतित्व

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध



निर्देशक :
डा० गोवर्धननाथ शुक्ल
नि० आचार्य हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्त्री :
श्रीमती सरला शर्मा
एम० ए०

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

१९८१



T2607

T2607

आत्म- निवेदन

“ ललित किशोरी : व्यक्तित्व और कृतित्व ”

विषय पर शोध की जुगा मुझे अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी- विभाग के माध्यम से प्राप्त हुई थी। विषय की प्रेरणा मुझे अपने गुरुवर डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल से मिली थी। वे ही मेरे निर्देशक थे। किन्तु प्रारम्भ में मैं विषयगत-सामग्री की उपलब्धि की कठिनाइयों से अपरिचित रही। उधर पारिवारिक झगडा भी बढ़ते गए। नित्य-जीवन की व्यस्तताओं से संघर्षरत रहकर भी शोध करने की प्रबल इच्छा और मोह टूटता ही न था। अतः अपने निर्देशक की आज्ञा पाकर मुझे कुछ दिन वृन्दावन- वास करना पड़ा। वृन्दावन में ललित किशोरी जी का बाहुल्य हस्तलिखित रूप में अधिक प्राप्त हुआ। इसकी प्रतिलिपि करने में और उसका अध्ययन करने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगा।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में कवि के समकालीन और पूर्ववर्ती सामाजिक, भक्ति सम्बन्धी, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का परिचय दिया गया है। इससे कवि की सर्जना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत होती है। द्वितीय अध्याय में शाह जी के परिवार का उनके जन्म, शिक्षा, वृन्दावन वागमन आदि जीवन वृत्त का वर्णन है। इसी में उनकी भक्ति साधना का भी परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय में कवि की रचनाओं का सविवरण परिचय प्रस्तुत किया गया है। रचनाओं के विषय, भाषा उनकी प्रामाणिकता आदि का विस्तृत विवेचन इसलिए दिया गया है कि शाह जी का व्यक्ति साहित्य हस्तलिखित रूप में है। चतुर्थ अध्याय का विषय है ललितकिशोरी जी के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण और उनकी भक्ति-भावना का सौदाहरण परिचय। पंचम अध्याय में रचनाओं के काव्य पक्ष का पर्यालोचन किया गया है। उनके काव्य की भाषा, भाव, उत्कर्ष, शैली, क्रन्द, राग आदि का उदाहरण सहित विवेचन इस अध्याय का विषय है। षष्ठ अध्याय में कवि के कृतित्व का मूल्यकिन और उनका अपने क्षेत्र में क्या योगदान है, इसका विवेचन है। अन्तिम उपसंहार में समस्त प्रबन्ध का समाहार किया गया है। अन्त में चार परिशिष्ट हैं जिनमें क्रमशः पद, चित्रावली, फोटो स्टेट का पियाँ एवं सहायक ग्रन्थों की सूची है।

इस प्रकार शाह कुन्दनलाल जी, सम्प्रदाय नाम ललितकिशोरी जी के समस्त काव्य का सांगीतिक विवेचन करने का विनीत प्रयास लेखिका ने किया है। वृन्दावन के प्रसिद्ध विद्वान् डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने सही भाव के सब कवियों का अपने शोध प्रबन्ध में अध्ययन किया है। उसमें प्रसंगवश ललितकिशोरी जी का भी उल्लेख है। पर इतने विशाल साहित्य का, जो समर्पण के अनन्य भाव से लिखा गया हो, उसका पुष्प से आकलन और मूल्यकिन होना अपेक्षित था। प्रस्तुत प्रबन्ध उसी आवश्यकता की पूर्ति है।

कैक विद्वानों और सहृदय महापुरुषों ने मेरे इस कार्य में सहायता प्रदान की है। उन सभी के प्रति मैं अपना हार्दिक

वाभार फ़ूट करती हूँ। कुछ नाम तो ऐसे हैं जिनका उल्लेख किए बिना मेरा मन सन्तुष्ट नहीं होगा। गुरुवर डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल प्रारम्भ से ही मेरा उत्साह बढ़ाते रहे हैं और फ़- फ़ पर मेरा मार्ग दर्शन करते रहे हैं। कार्य की संपन्नता में उन्हीं का अनुग्रह कारण है। मैं हृदय से उनकी वाभारी हूँ।

विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० प्रेमस्वरूप गुप्त जी की कृपा से मेरी मार्ग की अनेक बाधाएँ हटी हैं। उनकी सहायता के बिना मैं यहाँ तक न पहुँच पाती। मैं उनकी परम कृतज्ञ हूँ।

विशेषकर शाह परिवार के शाह गौरशरण जी (जो आज इस प्रबन्ध की पूर्णता को देख नहीं पाए और भगवच्छरणगति की प्राप्त होगए) जिनके सौजन्यपूर्ण व्यवहार, उदार आश्रय एवं निस्सीम सहायता भावना के लिए कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। उन्होंने पुत्रीवत् स्नेह देकर मुझे अल्प सामग्री प्रदान की तदर्थ मैं उनकी चिर वाभारी हूँ। इसके अतिरिक्त शाह परिवार के प्रबन्धक श्री मुन्ना लाल गुप्त ने भी आदि से अन्त तक मेरे कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। मैं उनकी कृतज्ञ हूँ।

वृन्दावन शोध संस्थान, ब्रज ऊनादमी, वृन्दावन एवं श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय इतरपुर आदि शोध-संस्थानों के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं परामर्शदाता विद्वान् महानुभावों के प्रति अपना विनम्र वाभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी महती अनुकम्पा के बिना इस कार्य की संपन्नता संभव नहीं थी। साथ ही अपने धर्म भाई श्री कुमार अली प्रसार शिक्षक (प्लाक स्वस-टेन्शन एडिटर) को भी अत्यन्त वाभारी हूँ जिन्होंने फ़ोटोस्टेट कापियाँ की व्यवस्थित तैयारी एवं चित्रावली की संजीने में अनुपम सहायता दी।

इसी संदर्भ में डा० रामेश्वर दयाल, हिन्दी विभाग मुस्लिम विश्वविद्यालय की भी कृतज्ञ हैं जिन्होंने समय समय पर मुझे शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए उत्साहित किया ।

अन्त में मैं अपनी पूज्य पतिदेव डा० राम प्रकाश शर्मा, एम० बी०, बी०एस० के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने निर्बाध एवं सीमातीत सहायता करके मेरे प्रति न केवल दायित्व वफ़ा गहन स्नेह भाव का परिचय दिया । उनके प्रति गहन आभार न व्यक्त करके मौन ही रहना श्रेयस्कर है।

(श्रीमती)सरला शर्मा
(श्रीपती सरला शर्मा)

विषयानुक्रमिका

पृ० सं०

प्रथम अध्याय : ललित किशोरी कालीन परिस्थितियाँ १ - ३२

राजनीतिक, सामाजिक, पृष्ठभूमि
एवं परिस्थितियाँ। धार्मिक एवं
सामाजिक पृष्ठभूमि। समसामयिक
परिस्थितियाँ। साहित्यिक परि-
स्थितियाँ।

द्वितीय अध्याय : ललित किशोरी जी का जीवन परिचय ३३ - ६६

विषय प्रवेश। जीवन परिचय।
बाह्य साक्ष्य। पूर्वजों का लक्षण
जागमन, वैश्व परिचय, जन्म स्थान
एवं जन्म संवत्। मूल नाम, उपनाम,
गौत्र व जाति। शिक्षा, वृन्दावन
की लालसा, पारिवारिक परिस्थिति
में परिवर्तन। वृन्दावन की प्रस्थान,

वृन्दावन में भक्ति-साधना।सू १८५७ और
शाह जी । शाह जी का बाह्यमय ।
वृन्दावन के प्रति प्रेम, निष्ठा एवं वादर ।
दिनचर्या , व्यक्तित्व एवं स्वभाव - बाह्य
व्यक्तित्व । अन्तिम समय । ललित माधुरी
(एक संक्षिप्त परिचय) ।

तृतीय अध्याय : ललित किशोरी जी की रचनाएँ और ७० - ११८

उनकी प्रामाणिकता

वमिलाण माधुरी - प्रकाशित प्रति ,
वमिलाण माधुरी-हस्त लिखित प्रति ,
वमिलाण माधुरी में प्रकरण क्रम से
पद्यों की संख्या । रस कलिका- लघु रस-
कलिका प्रथम और द्वितीय भाग , लघु
रस कलिका तृतीय भाग , लघु रसकलिका
चतुर्थ भाग , रसकलिका एवं लघु रस
कलिका के पद्यों की संख्या में अन्तर ।
रसकलिका- अप्रकाशित - ललित निकुंज
वृन्दावन वाली प्रति , वृन्दावन शोध
संस्थान वृन्दावन वाली प्रति , ब्रज
अकादमी वृन्दावन वाली प्रतियाँ ,
श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय कटर-
पुर वाली प्रतियाँ । रसकलिका का सामान्य
परिचय- भाषा ।

चतुर्थ अध्याय : ललित किशोरी जी की रचनाओं में दर्शनपदा ११६ -- १८६

स्व भक्ति का स्वरूप

भक्ति सिद्धान्त - शास्त्रीय विवेचन,
भक्ति साधना के भेद । पुरा भक्ति
और सखी भाव । भक्ति साधना में
सखी भाव का विकास । सखी भाव
का स्वरूप- श्रीकृष्ण, श्री राधा ,
नित्य विहार, प्रेम और रस । ललित
किशोरी जी की भक्ति भावना और
उनकी दार्शनिक विचारधारा - दर्शन,
कवि के दर्शन सम्बन्धी विचार , सखी
का स्वरूप और उसका कार्य , भक्ति
साधना के सम्बन्ध में कवि के सामान्य
विचार, अभिलाषा , वृन्दावन, युगल
विहार का स्वरूप , रति विलास नित्य
है, रस लोला ।

पंचम अध्याय : ललित किशोरी जी का काव्य पदा १८० .. २५०

भाव योजना - शृंगार , शान्त ,
हास्य । भाषा- ब्रज, संस्कृत ,
खड़ी बोली , रेस्ता, फारसी ,
उर्दू , राजस्थानी , भोजपुरी ,
कश्मीरी । शब्द शक्ति, मुहावरे ,

लौकीकित । कर्त्तार योजना-

रूप, उपमा, पूर्णोपमा , मालोपमा,
वतिशयोक्ति, प्रतीप , भ्रान्तिमान् ,
उत्प्रेक्षा , तद्गुण , व्यतिरेक ,
जुप्रस , यम्क । शैली- शायी शैली ,
बिम्ब योजना , काव्य रूप और शैली ,
कूट शैली , प्रतीक प्रयोग । इन्द्र- दोहा,
चौपहं , रोला , सार , कूड लिया,
ताटक , पदपादाकृत्क , वीर , सरसी ,
विष्णु पद , सुमेरु , कवित्त, समान
सवैया, राग ।

अष्ट अध्याय : ललित किशोरी जी का हिन्दी साहित्य को २५१-२८०

योगदान और उनका मूल्यांकन

योगदान । मूल्यांकन- भक्त रूप , कवि-
रूप , रास रसिक , उदार सेठ ।

उपसंहार

२८१ - २८५

परिशिष्ट १

२८६ - ३६५

ललित किशोरी जी के २५० पद

परिशिष्ट २

चित्रावली

परिशिष्ट - ३

३७६ .. ३८५

फोटो स्टेट का पियां

परिशिष्ट -४

३८६ - ३-६२

ग्रन्थ सूची

प्रथम अध्याय

ललित किशोरी कालीन परिस्थितियाँ

राजनीतिक

सामाजिक पृष्ठभूमि एवं

परिस्थितियाँ

धार्मिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

समसामयिक परिस्थितियाँ

आर्थिक परिस्थितियाँ

ललित किशोरी कालीन परिस्थितियाँ
राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियाँ

ललित किशोरी जी का कार्यकाल विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी का द्वितीयार्ध और बीसवीं शती का प्रथमार्ध है। यह शताब्दी उत्तर भारत के लिए ^{और} उसके अन्तर्गत ब्रज प्रदेश के लिए विशेष उल्लेखनीय है। मुगल साम्राज्य क्षिन्न भिन्न हो रहा था। शती के प्रारम्भ में जहमद शाह अब्दाली ने संवत् १८०५ से लेकर १८१५ तक दस वर्षों में अफगानिस्तान से वा आकर अनेक आक्रमण किए थे। उस समय दिल्ली की गद्दी पर बालम-गौर द्वितीय बैठा था। इतिहासकारों ने उसे एक निकम्मा शासक बताया है। अब्दाली के आक्रमणों का प्रतिरोध करने के स्थान पर उसने आक्रान्ता से संधि कर ली थी। उसके पुत्र से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था। दहेज में उसने दिल्ली की लूटने की सहमति भी दे दी थी।

जहमद शाह अब्दाली ने एक महीने तक दिल्ली की लूट ^१ लूटा। फिर उसकी वृष्णा उसे ब्रज प्रदेश की ओर भी ले गयी। एक तो ब्रज विशेषकर मथुरा वृन्दावन धर्म दौत्र माने जाते थे। इस्लाम के धर्मान्ध शासक हिन्दुओं के मन्दिर वादि धर्म स्थानों को नष्ट प्रष्ट करना अपने लिए पवित्र कर्म समझते थे। दूसरे उन दिनों ब्रज दौत्र को लेकर भरतपुर के जाटों और मरहठे फौजवालों में वैमनस्य और विवाह चल रहा था। इस दौत्र की सुरक्षा के लिए दोनों पक्षाँ में से कोई भी अपने को पूर्ण रूप से उत्तरदायी नहीं समझता था। असुरक्षा की इस परिस्थिति का अब्दाली ने लाभ उठाया। फौजवालों की सेना लेकर वह मथुरा की ओर चल पड़ा। उसके साथ रुहेला सरदार नजीबुद्दौला

और मुगल बादशाह का बजोर इमदाद खाँ भी अपनी सैनिक टुकड़ियाँ लेकर इसके साथ ही लिए । सूरजमल के सबसे बड़े पुत्र जवाहर सिंह ने वल्लभगढ़ ने अब्दाली के आक्रमण रोकने के लिए युद्ध किया । परन्तु वह हार गया । फिर मथुरा के पास चौमुहाने में जाट सेना लड़ी । वह भी हार गयी । अफगान सेना ने मथुरा में पहुँच कर ध्वज-जन का बड़ा भयंकर संहार किया । मथुरा उससे पूर्णतः ध्वस्त हो गयी । डा० कृष्ण दत्त बाजपेयी ने " ब्रज का इतिहास " भाग १ में किसी प्रत्यक्षदर्शी मुसलमान का लेख उद्धृत किया है। वह इस प्रकार है :

" सड़कों और बाजारों में सर्वत्र हलाल किए हुए लोगों के धड़ पड़े हुए थे और सारा शहर जल रहा था । यमुना नदी का पानी नर संहार के बाद सात दिनों तक लगातार लाल रंगका बहने लगा । नदी के किनारे पर वैरागियों और संन्यासियों की बहुत सी कौपड़ियाँ थीं । उनमें से प्रत्येक कौपड़ी में साधु के मुँह से लगाकर रखा हुआ गाय का कटा सिर दिखायी पड़ता था । "

मथुरा का संहार करने के पश्चात् अब्दाली वृन्दावन गया । वहाँ भी उसके सैनिकों ने मथुरा का सा ही कत्ले आम किया । वृन्दावन में जिधर दृष्टि जाती मुर्दों के ढेर के ढेर दिखायी पड़ते थे । सड़कों से निकलना भी मुश्किल था । वृन्दावन साधु सन्तों की बस्ती थी । निरीह धार्मिक विरक्तों का समाज था । आक्रमण का कहीं भी प्रतिरोध नहीं हुआ । गाजर मूसी की तरह सन्त महात्मा काटे गये ।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त कवि बाबा हित वृन्दावन दास जान बचाकर भरतपुर भाग गये थे । उन्होंने इस पाशविक

नर संहार का चित्र "हरिकला वैलि" पुस्तक में पथबद्ध किया है।

"बठारह सौ तेरह बरस, हरि ऐसी करी ।
जम्म विगोयी दैस, विपति गाढ़ी परी ॥" १

अनेकों विद्वान्, मन्त्र, कवि इस संहार में मारे गये थे । प्रसिद्ध कवि घनानन्द भी इसी विप्लव में मारे गये थे । यह संहार अब्दाली के सैनिकों ने किया था । बाद में अब्दाली भी स्वयं मथुरा में आ धमका । उसने भी लूटी हुई मथुरा को लूटा । आगरा की ओर बढ़ते समय नागा साधुजी ने उसका जम्कर मुकाबला किया । उसी समय सेना में हैजा फैल गया । इसके फलस्वरूप अब्दाली दिल्ली वापस लौट गया । आगरा संहार से बच गया ।

संवत् १८१८ में पानीपत की प्रसिद्ध लड़ाई हुई जिसमें अब्दाली के विरोध में पहले तो मरहठा सरदार भाऊ सदा शिवराव और जाट राजा सुजान सिंह संगठित हुए थे । परन्तु सदाशिव राव को अपनी सैन्य शक्ति का इतना अभिमान बढ़ा कि उसने सुजान सिंह की उपेक्षा पूर्ण अवमानना की । इससे जाट राजा मैदान से वापस लौट गया । मरहठा अफगानों से बुरी तरह परास्त हुए । हिन्दू शक्ति की यह अन्तिम परीक्षा थी । इसमें वह सदैव के लिए पराजित हो गयी ।

इस युद्ध में अब्दाली और भाऊ दोनों की शक्ति क्षीण हो गयी थी । अब्दाली अफगानिस्तान लौट गया था । भाऊ मराठवाड़ा की । इस बीच सूरजमल ने आगरा, फर्रुखसिंह (हरियाना) को अपने अधिकार में ले लिया था । दिल्ली में आकर वह स्वयं मारा गया ।

उनके पुत्र जवाहर सिंहनेगोवर्धन के निकट कुसुम सरोवर पर उनकी सुन्दर कला-पूर्ण समाधि बनवायी थी, जो आज भी वास्तुकला का एक अतुल्य उदाहरण है।

जाट राजा सूरजमल बड़ा प्रभावशाली, वीर और उत्तम प्रशासक था। समूचे ब्रज प्रान्त पर उसी का अधिकार था। हिन्दी का प्रसिद्ध कवि सूदन इन्हों का आश्रित था। उसने 'सुजान चरित' इन्हों की प्रशंसा में लिखा है। मथुरा, वृन्दावन और उसके आस पास अनेक निर्माण कार्य इस काल में हुए। सूरज^{मल} और इसकी रानियाँ वैष्णव थीं। हंसा रानी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसने मथुरा वृन्दावन में अनेक उपयोगी मय्य निर्माण कराये।

संवत् १८२० से १८२५ तक सूरजमल का ज्येष्ठ पुत्र जवाहर सिंह भरतपुर की राजगद्दी पर आसीन हुआ। वह वीर और साहसी तो बहुत था पर नीति निपुण उतना नहीं था। फिर भी उसके राज्य में काव्य, वास्तुकला आदि की पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। भूधर, रंगलाल, मोती राम आदि कवि उसके आश्रित कवि थे। छटावा के प्रसिद्ध कवि देव भी उनके दरबार में उपस्थित हुए थे। जवाहर सिंह ने फिदा का बदला चुकाने के लिए दिल्ली पर आक्रमण किया था। वहाँ से लूट में जो धन मिला था, उससे उसने डींग, गोवर्धन और भरतपुर में निर्माण कार्य कराया था। कुसुम सरोवर, उस पर सूरजमल की स्तुति, चन्द्र सरोवर कुण्ड उसी की निर्मित है।

संवत् १८२५ में जवाहर सिंह की मृत्यु हो गयी। इसके बाद जाट राज्य का हास होने लगा था। संवत् १८२६ में जवाहर सिंह का शोटा भाई रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। वह वृन्दावन में आकर नृत्य गान

कराने का ऐसा शौकीन हो गया था कि वहाँ के एक तार्किक ने उसकी हत्या कर दी थी। उधर मरतपुर में गृह कलह प्रारम्भ हो गया था। इसका लाभ उठाने के लिए मरहठों की सेना ब्रज क्षेत्र पर अपना सौया प्रभाव जमाने के लिए चल पड़ी। संवत् १८३२ से लेकर जाट राज्य धीरे धीरे क्षीण होतगया। कभी मरहठों से कभी मुगलों से जाटों को लड़ना पड़ा। ज़ान्तारिक कलह से वे जर्जर थे। संवत् १८१४ से १८३२ तक का लगभग दो दशब्दों का काल ब्रज के लिए संकटपूर्ण रहा। बार-बार यवनों के आक्रमण होते थे। मठ, मन्दिर नष्ट भ्रष्ट कर दिये जाते थे। भक्तों और संतों को ब्रज छोड़कर बाहर जाना पड़ जाता था। चाचा हित वृन्दावनदास ने संवत् १८३१ में कृष्णगढ़ में रहकर 'श्रीकृष्ण विवाह बेलि' का रचना को और अपने समय के कष्टों का मार्मिक वर्णन किया है। 'भारति पत्रिका' उनकी इसी विषय की द्वितीय रचना है। इसमें भी पीड़ित होकर भगवान् से कष्ट निवारण की प्रार्थना की गयी है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने इस रचना के ऐतिहासिक महत्व की प्रशंसा की है।^१ इन दिनों ब्रज की दुर्दशा करने वाला मुगल दरबार का वजीर मिर्जा नजफ़साँ था जो संवत् १८३६ में आकर मरा।

ब्रज प्रदेश और उसके आस पास की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्र तब तक अधूरा रहेगा, जब तक माधव जी सिंधिया की गतिविधियों का आकलन न कर लिया जाय। माधव जी उत्तर भारत में मरहठा शक्ति की पुनः स्थापना के लिए नियुक्त हुआ था। पर संवत् १८३६ के बाद वह दिल्ली को राजगद्दी का भी संस्पर्क बन गया था। उन दिनों माधव जी सिंधिया का बड़ा प्रभुत्व था। वह बड़ा वास्तविक और भक्त था। उसके काल में ब्रजभूमि में बड़ा सुख चैन रहा। न किसी का आक्रमण हुआ और न मंदिरों की तोड़ फोड़। इसके विपरीत मथुरा वृन्दावन के लोग पूर्णतः आश्वस्त होकर

वफा वफा धर्म साधना में लग गये ।

माधव जी सिंधिया हरिदासी संप्रदाय के विरक्त सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धावान् थे । टट्टी संस्थान और श्री रसिक बिहारी मंदिर के महन्त ललित मोहन जी और गोवर्धन दास जी का वह विशेष भक्त था । "ललित प्रकाश" रचना में इस बात का भी उल्लेख हुआ है कि माधव जी भक्ति प्रवण होकर वृन्दावन में रास लीला कराया करता था । संवत् १८५२ में प्लेग ने उसकी मृत्यु हो गयी ।

विश्राम की उन्नोसवौं शती का ढलान आते आते राजनीतिक परिस्थितियों ने दूधरी और कखट ली । पहले देशी राजा वापस में लड़ते थे । अंगरेज यह सब देखते रहते थे । पर शासकों की इस दुर्बलता को देखकर उनके हाँकते बढ़ गये । सिंधिया के विरुद्ध उन्होंनेैनैनिक अभियान छेड़ दिया । संवत् १८६० में अंग्रेजी सेना ने मथुरा की अपने अधिकार में कर लिया । उन दिनों मरतपुर में रणजीत सिंह का शासन था । यशवंतराव होल्कर ने वहाँ भागकर शरण ली थी । जनरल लेक के आग्रह करने पर भी जाट राजा ने अपनी शरण में आये होल्कर को जब अंग्रेजों के हाथों में सौंपने से मना कर दिया तो अंग्रेजी सेना ने मरतपुर पर चार बार आक्रमण किया । पर चारों बार वह हार कर पीछे हट गयी । ब्रज के लोक कवियों और लोकगायकों ने जाटों की वीरता और अंग्रेजों की पराजय का बड़ा जीजपूर्ण वर्णन किया है। उनमें से कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं :

- १- "चढ़े हैं फिरंगी, भयी भारत मरतपुर में ,
तोफ़ तरपि कै हलान पे हलान की ।
काली करी तृप्त , फिरंगी सो कुरंगी भये ,
स्क हू कला न चली, पथर कलान की ॥ (प्रेम कवि)

- २- ' मच्छी घमासान, कोस तीब्र लगि लोथ परी ,
मर गर सूर सौचि, मोहरा वगाह तैं ।
कहे ' जसराम 'अंगरेज जंग हार गये ,
जीति जदुवशी सूर, लहत उझाह तैं ॥ (जसराम)
- ३- ' तेरे तेज तत्ता तैं, चकत्ता में रहो न सत्ता ,
लता से उझाये, सब गोरे कलकत्ता के ॥ (भागमल्ल)
- ४- ' फिरफा फिरंगिन के फारिफे फतूह करे ।
जीत के नगारे रणजीत के बजत हैं । (गंगाधर)
- ५- ' मेजी फोरि फटक-पशार खात खैन राँ ।
लेडी जंगरेज की रोवें कलकत्ता में । ' (प्रसिद्ध कवि) १

संवत् १८८३ तक जाते जाते अंगरेजों का प्रभुत्व इस क्षेत्र में और बढ़ गया । भरतपुर राज्य भी उनके अधिकार में आ गया । रणजीत सिंह के पुत्र बलदेव सिंह की भी जब मृत्यु हो गयी तो राज्य का उत्तराधिकारी बलवंत सिंह केवल ६ वर्ष का बालक था । अंगरेजों ने उसे राजा स्वीकार कर लिया था । परन्तु उसके चचेरे भाई दुर्जनसिंह ने विद्रोह कर दिया । वह स्वयं राजा बनना चाहता था । उनके जाट सरदार भी उसके साथ ही गये । बलवंत सिंह को नजरबंद कर दिया गया । इस पर अंग्रेजों ने बलवन्त सिंह का साथ दिया । सर डेविड वाक्टर लौनीने भरतपुर पर आक्रमण कर दिया । लगभग षेड मास तक युद्ध चला । अंगरेज इस बार जीत गये । दुर्जन शास को बन्दी बना कर इलाहाबाद भेज दिया । राजमाता अमृत कौर के अभिभावकत्व में बलवन्त सिंह

को ही राजा बना दिया गया। अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट बनकर भरतपुर में रहने लगे। इस उपकार के बदले में गोवर्धन का परगना भरतपुर राज्य से कटकर अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया था।

एजेंट के जाने पर भरतपुर का राज कास अंग्रेजों की सलाह से चलता था। वह इस कारण विशेष उल्लेखनीय है कि बलवन्त सिंह के पुत्र यशवन्त सिंह का राज्यकाल सन् १६१० से १६५० तक ४० वर्ष रहा। सन् १८५७ का सैनिक विद्रोह इन्होंने के समय हुआ था। इस समय तक ललित किशोरी जी वृन्दावन भेजा गये थे। विद्रोहियों को मथुरा के सेठों ने सहायता दी थी।

इसका कारण यह था कि मथुरा वृन्दावन के लोग मुगलकाल में धर्मान्ध मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित हुए थे। उन्हें जाट शासन में शान्ति और सुरक्षा का सुख मिला था। विद्रोह की अशान्ति से वे भयभीत हो गये। साथ ही अंग्रेजों के मिशनरी लोग ईसाई धर्म का प्रचार करते थे और लोगों को ईसाई धर्म में जाने के लिए आकर्षित करते थे। इससे ब्रजवासियों को भय लगा कि ये लोग भी मुसलमानों की भाँति धर्म प्रवृत्त करने वाले हैं। अतः अंग्रेजों शासन से मुक्ति दिलाने वालों के ये लोग सहायक बन गये।

मथुरा में १६ मई को विद्रोही हलचलों का समाचार पहुँचा था। मथुरा के कलेक्टर थार्नहिल ने भरतपुर से अंग्रेजी सेना की सहायता मँगवाई। उसमें भारतीय सैनिक बहुत थे। उन्होंने आकर सरकारी खजाना छूट लिया और सैनिक अफसर वर्ल्डन को मार डाला। तीर्थ स्थान सम्भ्रम कर मथुरा के निवासियों को इन्होंने कोई कष्ट नहीं दिया। मथुरा के सेठों ने

इनकी आर्थिक सहायता भी की थी। इस प्रकार कोसी, हाता, कोटन, शेरगढ़ वादि स्थानों में लगभग दूँ पास तक अंगरेजी सत्ता समाप्त हो गयी थी।

दो मास के पश्चात् जुलाई में फिर एक दौर विद्रोहियों का नोमच, नसीराबाद और मुरार की ओर से आया। ये लोग मथुरा और आगरा भी आगये। इसी समय अलीगढ़, हाथरस वादि स्थानों पर भी उपद्रव बढ़ने लगा था। इन लोगों की एक ठुकड़ी सूबेदार हीरा सिंह के नेतृत्व में वृन्दावन पहुँच गयी थी। हीरा सिंह स्वयम् धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति था। उसने वृन्दावन में लूटमार नहीं होने दी। शाह कुन्दन लाल जी ने इन लोगों के खान पान की व्यवस्था भी की थी। इससे भी ये लोग उपकृत अनुभव करते थे। शाह जी की बाद में अंगरेजों की अदालत में दिल्ली उपस्थित होना पड़ा था। उन्हें फाँसी का दण्ड देने का निर्णय भी हो गया था, परन्तु शाह जी ने अपनी निपुणता से अपना बचाव कर लिया।

धार्मिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

ब्रज प्रदेश धार्मिक क्षेत्र होने के कारण इस्लाम के धर्मान्धों का कोपमाज्ज चिरकाल तक रहा है। बीच बीच में इसी जो अनुकूल समय मिला, उसी में यहाँ की धार्मिक गतिविधियाँ बढ़ी और उनका प्रसार हुआ। सम्राट् अकबर से पहले मुसलमान सरदारों के बीच प्रतिबन्ध यहाँ लगे थे। हिन्दुओं पर जजिया कर लगता था। कोई नया मकान, मंदिर या मठ बनाने पर प्रतिबन्ध था। तीर्थ यात्रियों पर कर लगता था। गोवध होता था। अकबर

१- देखिये- द्वितीय अध्याय में जीवन वृत्त प्रसंग

ने ये सब प्रतिबन्ध हटा दिये थे। उसकी नीति धर्म के सम्बन्ध में विशेष उदार थी। वह सब धर्मों का आदर करता था। उसकी इस भावना का लाभ उठाकर वैष्णव सन्तों और जैनचार्यों ने यहाँ निर्बाध साधना की। धर्म प्रेमी धनाढ्य लोगों ने प्राचीन धर्मस्थलों का जीर्णोद्धार कराया और नये स्थानों का भी निर्माण कराया।

गोस्वामी विट्ठल नाथ जी ने अकबर से सुविधा पाकर गोकुल की नयी बस्ती बसायी थी। तमो गौपालपुर (गौवर्धन) के श्रीनाथ मंदिर में 'मणि कोठा शैया मंदिर' का निर्माण कराया था। बाबर के राजा भगवानदास ने गौवर्धन में श्री हरिदेव जी का और राजा मानसिंह ने वृन्दावन में श्रीगोविन्द देव जी का मन्दिर बनवाया था^१। कविराज नरहरि बंदिजन के हृष्य पर अकबर ने गोवध बन्द कर दिया था। यह इतिहास का सत्य बहुत प्रसिद्ध है। नरहरि गोवध से अत्यधिक दुःखी था। उसने नीचे लिखा हृष्य तस्ती पर लिखकर उसे गाय के गले में बांध दिया। गाय को उस मार्ग पर रुद्ध कर दिया था जिधर से सम्राट् अकबर निकलते थे। इसमें बोरबल की सलाह थी। हृष्य की व्याख्या भी बोरबल ने ही की थी। व्याख्या सुनकर सम्राट् ने सम्पूर्ण राज्य में गो हत्या बन्द कर दी थी। उन दिनों सम्राट् पर जैन धर्माचार्यों का भी प्रभाव था। प्रसिद्ध हृष्य इस प्रकार है :

वरिष्ठ दन्त तुन धरहिं, ताहि मारत न सबल कोइ ।

हम संतत तुत चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ ॥

वमिय कोर नित प्रवहिं, बच्छ महि थमन जावहिं ।

हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुलकहिं न पिबावहिं ॥

“कहै कवि” नरहरि” अकबर सुनौ, बिनवत गउ जोरै करन ।

वपराध कौन मोहि मारियत मुएहु बाम सेवहिं चरन ॥” २

१- प्रभु दयाल मीतल- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास पृ० ४५६

२-

..

..

पृ० ४६१

अकबर की आज्ञा हो गयी थी कि जी गाय का वध करेगा उसे मृत्यु दण्ड दिया जाएगा । गीसाईं विट्ठल नाथ जी का अकबर विशेष सम्मान करता था । इसके दो फरमान ऐसे मिलते हैं जिनमें गी० विट्ठल नाथ जी और उनके वंशजों की जतीपुरा गाँव, जहाँ " गौवर्धन नाथ जी का मंदिर " मकानात, बागात व गायों के खिरक थे " और गोकुल गाँव जहाँ विट्ठलनाथ जी सपरिवार निवास करते थे माफ़ी में दिये गये थे ।

परन्तु इस समय ऐसे सन्त महात्मा भी आँक थे जिन्होंने अकबर को इस उदारता का कोई लाभ उठाना तुच्छ समझा और उसके प्रति उपेक्षा भाव हो रहा । कृष्णदास, तुलसीदास आदि का नाम इस वर्ग में आता है। इससे वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा और बढ़ी थी।

जहाँगीर के सिंहासीन होने पर मथुरा-वृन्दा-वन पर हुसैन बेग ने आक्रमण कर दिया था और लूटमार की थी । इससे वहाँ का धार्मिक जीवन सँकट ग्रस्त हो गया । जहाँगीर ने स्वयं इसका उत्त्थेस किया है। उसने एक घटना का और उत्त्थेस किया है। एक बार मथुरा के निकटवर्ती ग्रामीणों ने राज्य को कर देना बन्द कर दिया था । जहाँगीर ने सुरम की सेना के साथ विद्रोहियों को दबाने के लिए भेजा था । इसमें बहुत से ग्रामवासी मारे गये थे । उनमें कुछ विरक्त भी बीपेट में आगये थे ।

प्रौढ़ावस्था में आकर जहाँगीर ने शराब पीने पर पाबन्दी लगा दी थी । वह कलापारसी ती अकबर से भी अधिक बताया गया है। चित्रकला और स्थापत्य कला से उसे विशेष लगाव था । सिकिरी में शैल सलीम चिश्ती का संगमरमर का सुन्दर फरबरा उसी ने बनवाया था ।

प्रमुदयाल पीतल ने लिखा है कि " हिन्दुओं की सुविधा के लिए सम्राट् अकबर ने जो व्यवस्था की थी वह जहाँगीर के काल में भी बनी रही थी और ब्रज में मन्दिरों के निर्माण का जो सिलसिला चला था वह इस कालमें भी जारी रहा । उसने अधिकतर अपने पिता की उदार धार्मिक नीति का अनुसरण किया था । अतः उसके काल में ब्रज मण्डल में प्रायः धार्मिक शान्ति और व्यवस्था रही ।^१"

संवत् १६८३ में जहाँगीर ने अपनी ५७ वीं वर्षगांठ मथुरा में मनायी थी । उसने अपने बराबर भार का सुवर्ण दान में दिया था । एक घटना इस सम्बन्ध में वल्लभ सम्प्रदाय की वार्ता परम्परा में बड़ी प्रसिद्ध है। शाही आज्ञा से मथुरा-वृन्दावन माला धारण करने और तिलक लगाने पर रोक लगा दी गयी थी । इससे दुःखी होकर बहुत से वैष्णव अन्यत्र चले गये थे । आस पास के कुछ दासियों ने इसका विद्रोह भी किया था । गोसाईं गोकुलनाथ इसके लिए जहाँगीर से मिलने काश्मीर गये थे और अपनी निपुणता से इस निषेधाज्ञा को निरस्त करा लाये थे । यद्यपि इतिहास ग्रंथों में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता पर काव्य ग्रन्थों, वार्ता पुस्तकों और किंवदन्ती में यह बहुचर्चित है। अब ये लोग इसे विश्वसनीय मानते हैं ।

" नामूलतातु जनश्रुति : " संवत् १६७५ में बीदर के नरेश वीरसिंह ने कृष्ण जन्मभूमि में केशव राय जी का मंदिर बनवाया था ।

शाहजहाँ के शासनकाल में ब्रज की धार्मिक स्थिति न अधिक बिगड़ी और न अधिक सुधरी । शहशाह व्यक्तिगत रूप से

साम्प्रदायिक अमिहृचि का था । उसकी नीति सुन्नियों के लिए सहानुभूति-पूर्ण और शियाओं के लिए क्रुदार थी । फिर वह हिन्दू धर्म के लिए नयीं कर उदार बनता । परन्तु पूर्वजों की राजनीति हिन्दुओं के प्रति उदारता की थी । अतः उसने भी क्रुदारता का कोई वापत्तिजनक प्रदर्शन नहीं किया । उसने एक बार मंदिरों के पुनरुद्धार पर रोक लगाने की आज्ञा दी थी । इससे ब्रजवासियों में बड़ी खलबली मच गयी थी । परन्तु इस आज्ञा के पालन पर अधिक बल नहीं दिया गया । उस समय मुगल शासन में अनेक हिन्दू बड़े प्रभावशाली पदों पर कार्य करते थे । उन्होंने इसका विरोध किया होगा ।

मथरा का परगना दारा शिकोह की जागीर में आ गया । दारा उदार दृष्टि का सूफी प्रकृति का युवक था । हिन्दू दर्शन में उसकी बड़ी आस्था थी । उसका वह विद्वान् भी था । उसके काल में ब्रज की धार्मिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ था । दारा ने एक संगीन कटहरा श्री केशवराय जी के मंदिर को भेंट किया था । ब्रज के हिन्दुओं में विशेषतः धार्मिकों में वह बड़ा लोकप्रिय बन गया था ।

इसके बाद ब्रज की जन्मपट्टी में शनिश्चर की दशा आयी । औरंगजेब शहशाह बना वह कट्टर धर्मान्ध था और अपने को इस्लाम का प्रचारक देवदूत मानता था । उसने हिन्दुओं को काफिर समझा था । इसलिए मंदिर-देवालयों के निर्माण पर पाबन्दी लगा दी । मूर्ति पूजा निषिद्ध कर दी गयी और देवस्थानों को नष्ट करने की आज्ञा प्रचारित की । इससे ब्रज में हाहाकार मच गया था । लोग होली, दिवाली और दशहरा जैसे त्यौहार भी नहीं मना सकते थे । राजा यशवन्त सिंह ने मिर्जा राजा जयसिंह का स्मरण करते हुए कहा था :

“ घंट न बाजे देहरा, शक्ति न माने शाह ।

स्फुण हई फिर आवजो, माहूरा जय शाह ॥ ”

मथुरा का प्रसिद्ध केशवराय जी का मंदिर वृन्दावन का कलापूर्ण गौ विन्ददेव जी का मंदिर, मदन मोहन जी का मंदिर, गोपीनाथ जी, जुगलकिशोर जी और राधावल्लभ जी का मंदिर ये सब देव स्थान नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये । अनेक देवस्थानों की जगह सराय, मक़तब और कसाई साने बना दिये गये । लोगों को इस काल में बलपूर्वक मुसलमान भी बनाया गया था । इससे भयभीत होकर अनेक धर्माचार्य और भक्त यहाँ से भाग गये थे। वे अपने साथ अपनी उपास्य देवमूर्तियाँ भी ले गये । गोवर्धन-गिरिराज के मंदिर से वल्लभ संप्रदाय के परमोपास्य श्रीनाथ जी का विग्रह इसी समय मेवाड़ राज्य के सिहाड़ नामक स्थान पर ले जाया गया था । वही आज प्रसिद्ध ‘श्रीनाथद्वारा’ कहलाता है।

ब्रज के नामों में भी उसने परिवर्तन किया था । व्यक्तियों के अतिरिक्त स्थानों का भी यह मुसलमानिकरण था । उसने मथुरा को इस्तामाबाद , वृन्दावन को मोमिनाबाद , पारसीली को मुहम्मदपुर कहने की घोषणा की थी । परन्तु ये नाम उस समय के शाही कागज़ों तक ही सीमित रह गये ।

औरंगजेब के धर्मान्ध, अत्याचारी शासन की सब इतिहासकारों ने निन्दा की है। दिनकर ने लिखा है कि “उसके अत्याचारों के कारण जनता में रौख का ऐसा तूफान उठा कि उसने साम्राज्य के दुर्गों की ही ढाह दिया था ।” महावन के निकट के हिन्दुओं ने गोकुला जाट के नेतृत्व में बड़ा शक्तिशाली और संगठित विद्रोह किया था ।

व्यथित ही चाहे समाज, सुख और दुःख जीवन में गाढ़ी के पहिये को भाँति घुमते हैं। दुःख के बाद सुख और सुख के पश्चात् परचात दुःख। बठारहवीं शती का अवसान ब्रज वृन्दावन के जीवन में निरुपद्रव शान्ति लेकर आया। दिल्ली में मुहम्मदशाह बादशाह था। वह नृत्य गान और भोग विलास में डूबा रहता था। शत्रुओं के क्वाव की उसमें शक्ति नहीं थी। जाटों से अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए उसने सवाई राजा जयसिंह की अपना सूबेदार बना लिया था। बागरा प्रान्त उसी के सूबे में था। उस नाते से मथुरा-वृन्दावन भी उसी का ^{भाग} सारा था। वह धार्मिक प्रकृति का विद्वान् पुरुष था। उसने बादशाह से अनेक सुविधाएँ धार्मिक लोगों के लिए ले ली थीं। जजिया कर मुक्त करा दिया था। इसके काल में जयपुर में एक धर्म सम्मेलन हुआ था। इसमें वैष्णवों ने अपने अपने मतों को वैद सम्मत सिद्ध किया था। इसके लिए वे पुरस्कृत हुए थे। संवत् १७८० में इसने अपनी लड़की का विवाह मथुरा से किया था। मथुरा-वृन्दावन की सड़क पर जो जयसिंह पुरा है, वह सवाई महाराज की छावनी थी। वृन्दावन में "जयसिंह का घरा" उनकी कचहरी बतायी जाती है। शाह कुन्दन लाल जो ने अपने मन्दिर के लिए भूमि जयपुर राज्य से ही ली थी। यह उसी के अधिकार में थी। मंदिर के लिए सारा पत्थर भी जयपुर स्टेट से बिना मूल्य शाह जो को मिला था।

ब्रज प्रदेश मुगली शासन से भीतर-भीतर अत्यन्त क्रुद्ध था। शाहजहाँ के समय से ही जहाँ तहाँ जाटों के विद्रोह होते रहते थे। यह प्रदेश प्रकृत्या धार्मिक रहा है। कृष्ण प्रेम, भक्ति और धार्मिक निष्ठा इस प्रदेश के जन जीवन का अंग बन गया है। उसे आधे दिन मुसलमान लोग छेड़ते और पाति पहुँचाते रहे हैं। उसकी प्रतिक्रिया में दिल्ली शासन का विरोध और ब्रज संस्कृति की रक्षा का भाव जनमानस में फैला। इसका संगठित रूप जाट शक्ति का इसदौत्र में उदय था। इसे ऊर्जस्वित मूर्त रूप सूरजमल ने दिया

था। परन्तु इससे पहले मथुरा वृन्दावन में अब्दाली के आक्रमण से जो मठ मन्दिरों, धन जन और पूजा सेवा को भयंकर आघात लगे थे, उसने ब्रज के धार्मिक जीवन को जड़ से हिला डाला था। अहमद शाह ने अपने सरदारों को यह आदेश दिया था-

“ मथुरा नगर हिन्दुओं का पवित्र स्थान है। उसे पूरी तरह नष्ट प्रष्ट कर दो। आगरा तक स्त्री भी इमारत खड़ी न दिखाई पड़े। जहाँ कहीं पहुँचो, कत्ले आम करो और लूटो। लूट में जिसको जो मिलेगा वह उसी का होगा। सिपाही लोग काफिरोंका सिर काट कर लायें और प्रधान सरदार के सिर के सामने डालते जायें। सरकारी खजाने से प्रत्येक सिर के लिए पाँच रुपया इनाम दिया जाएगा।”

ये लोग तीन दिन तक मथुरा में लूटमार करते रहे। वहाँ मंदिरों का नष्ट प्रष्ट किया। मूर्तियाँ तोड़ी और पण्डे पुजारियों को मौत के घाट उतार दिया। स्त्रियों की भी मान मर्यादा लूटी थी।

अब्दाली के आक्रमण में न तो कोई मर्यादा थी और न राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा/बर्बरतापूर्ण संहार का दुर्दान्त प्रदर्शन था। इससे मथुरावासी भयाक्रान्त हो गये। इस्लाम धर्म के प्रति उनके मन में बड़ी गहरी घृणा मोड़ बैठ गयी। आस पास का संपूर्ण ब्रज प्रदेश दिल्ली शासन/मुसलमानों का मन-मन में शत्रु बन गया था। ऐसी भयावह आतंककारी घटनाओं से वास्तिकों के मन ईश्वर के प्रति और अधिक उन्मुख हो गये। दानियों ने मुक्त हस्त होकर नये मंदिर खड़े कर दिये और प्राचीनों का जीर्णोद्धार किया।

मुसलमानों के अत्याचारों की प्रतिक्रिया में

जाट शक्ति ब्रज प्रदेश में जो संगठित हो गयी थी उसका धर्म साधना पर बड़ा अनुभूत प्रभाव पड़ा । जाट लोग भगवान् कृष्ण के भक्त थे । मुसलमानों ने उन्हें और अधिक भक्त बना दिया था । इसलिए ब्रज और वृन्दावन के पुनर्निर्माण में सभी ने कुछ न कुछ योगदान दिया ।

सूरजमल की रानियों में हंसारानी प्रबन्ध में बड़ी पट्ट और राजकाल की जानकारी महिला थी । सूरजमल की बड़े युक्तियुक्त परामर्श दिया करती थीं । वह वास्तविक कृष्ण भक्त थी । मथुरा नगर के सामने यमुना पार का एक घाट , गंज और बाग उसी के नाम पर क्रमशः हंसिया घाट, हंसगंज और हंसियारानी का बाग कहलाते थे ।^१

सूरजमल के ज्येष्ठ पुत्र जवाहर सिंह बा ब्रज के निर्माण कार्य में बहुत बड़ा योगदान है। दिल्ली को छूट में उसे जो सम्पत्ति मिली थी वह सब उसने इसी कार्य में व्यय कर दी थी । हींग, गोवर्धन , भरतपुर में उसने अनेक निर्माण कार्य कराये । कुसुम सरोवर ब्रज के यात्रियों के लिए आज भी एक भव्य दर्शनीय स्थल है। यह जवाहर सिंह का ही बनवाया हुआ है । गोवर्धन में चन्द्र सरोवरनाम का कुण्ड वष्टदल कनल के आकार में उसने बनवाया था । कुसुम सरोवर के निकट जमी फिता और माता का सुन्दर स्मारक उसी ने बनवाया था । ये सब आज स्थापत्य कला के रमणीय और स्थायी निदर्शन माने जाते हैं ।

समसामयिक परिस्थितियाँ

उन्नीसवीं शती के मध्य का काल ललित किशोरी जो की समसामयिक परिस्थितियों की धारा का विलुप्त पूर्ववर्ती भाग है । इन दिनों उत्तर भारत की राजनीतिक, और सामाजिक^{प्रार} धार्मिक परिस्थितियाँ

अव्यवस्थित और अनिश्चित थी। अनुकूलता और प्रतिकूलता बढ़ी जल्दी जल्दी बदल रही थी। जाटों की शक्ति विरूषलित हो गई थी। मुगल शासन के संध्या-काल में नज़फ़ खाँ दिल्ली में बड़ा प्रभावशाली सरदार बन गया था। वह अफ-गानिस्तान का रुहेला सरदार था। इसके साथी बड़े दुर्दान्त और अत्याचारी सैनिक थे। इन्होंने वृन्दावन में आ जाकर अनेक बार आक्रमण, लूट और हत्याएँ की। राधावल्लभ सम्प्रदाय के सन्त चाचा हित वृन्दावन दास जो इन उपद्रवों से दुःखी होकर किशनगढ़ चले गये थे। उन्होंने अपनी एक रचना 'श्री कृष्ण विवाह बेलि' में इस संकट का मार्मिक वर्णन किया है।

“यवन लोगों से आशंकित होकर ब्रज के लोग सिन्न हो गये। इन लोगों से ऐसे कष्ट भोगने पड़े जैसे यमराज के ही कष्ट हों। कवि प्रार्थना करता है कि अब वह प्रभु के घर में हो रह रहा है। अतः उसे अपना लें। वह कपिला गाय को तरह काँप रहे हैं। कहीं में लज्जा लगती है। अब तो ब्रजराज ही इस कलियुग रूपी सिंह से ब्रज की रक्षा कर सकते हैं। पिछले बीस वर्षों से (संवत् १६१५-३५) ब्रज के ऊपर विपत्ति का भँडार हो खल गया है। ब्रज के प्रसिद्ध सुख सब समाप्त हो गए हैं।”

इस संकट के एकदम बाद में माधव जी सिंधिया का दिल्ली और ब्रज में जो प्रभाव बढ़ा था उसका ब्रज प्रदेश को बढ़ावा लाभ हुआ। वह भगवान् कृष्ण का भक्त था। मथुरा में आकर रहा भी करता था। उसने अपनी प्रभाव से दिल्ली शासन की वे सब आज़ातियाँ निरस्त करा दी थी जो हिन्दू धर्म और संस्कृति के विरुद्ध थीं। अतः इस काल में वैष्णव धर्म की प्रगति हुई।

उसने स्वयं भी कुछ धार्मिक स्थलों पर निर्माण

१- डा० विजयेन्द्र स्नातक - राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य

पृ० ५५० में उद्धृत पंथों के आधार पर

कार्य कराया था। श्रीकृष्ण जन्मभूमि पर पीतरा कुण्ड " इसी का बनवाया हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म स्थान पर वह एक विशाल मंदिर बनवाना चाहता था। परन्तु पंडितों में जन्म स्थान के विषय में मतभेद नहीं था। इसलिए वह विचार छोड़ना पड़ा। टट्टी संस्थान के सन्त महात्माजी में उसकी बड़ी श्रद्धा थी। वृन्दावन में आकर वह रासलीला कराया करता था। इसमें अन्य भक्त जन भी उपस्थित हुआ करते थे। ब्रजभाषा में कुछ पद्यों की उसने रचना भी की थी। "माधव विलास" नाम से उनका संग्रह प्रकाशित हुआ है।

सूरजमल, जवाहर सिंह और माधव जी सिंधिया ये तीन महापुरुष विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे आये जिन्होंने ब्रज की संस्कृति और धर्म की बहुत रक्षा की। ये महानुभाव एक और वीर, साहसी और कुशल राजनैतिक संगठन कर्त्ता थे तो दूसरी ओर भगवान् के भक्त थे। ब्रज प्रदेश में रहने वाले कथा इससे सम्बन्ध रखने वाले राजे- महाराजे, सेठ साहूकारों में उन दिनों बड़ी बहिष्कृत मन्त्रित थी। हिन्दू धर्मविशेष कर ब्रज - संस्कृति की यवन कथाचारी से बचाना इनके लिए एक पुण्य कार्य था। विधर्मियों द्वारा हिन्दू धर्म का जो इस काल में बराबर उत्पीड़न हुआ था, यह इसकी प्रतिक्रिया का फल था।

विक्रम की १६ वीं शताब्दी का अवसान मथुरा वृन्दावन की धर्म संस्कृति के लिए विशेष उपकारी रहा है। मुसलमान, जाट और मरहठों के आये दिन के विग्रह, मुसलमानों द्वारा ब्रज पर आक्रमण और लूटमार समाप्त होगयी थी। अंग्रेजी शासन स्थापित हो गया था। धार्मिक श्रद्धा का भाव लोगों में और बढ़ गया था। क्योंकि इससे पहले उन्होंने धर्म-साधना के कष्ट विशेष रूप से सहे थे।

१- नाम महाजी सिंधिया वृन्दावन बिच जाय।

श्री गुपाल लीला करी, परम प्रीति दासाय ॥ (निर्बार्क माधुरी पृ० ६५५)

इस समय दो सेठ घरानों ने मथुरा और वृन्दावन में विशाल देवालयों का निर्माण कराया । पहला मथुरा में दारुका-धीश जी का मंदिर है। इसका निर्माण बाणाद कृष्णा ८ संवत् १८७१ की ग्वालियर के श्री गोकुलदास पारिस ने कराया था । गोकुलदास ग्वालियर राज्य का कर्मचारी था । वह दौलतराउ सिंधिया का विश्वास पात्र सजाची था । उस समय उज्जैन में नागा साधुओं ने बड़ा उपद्रव कर रखा था । वे राज्य की आजाओं की हूली व्यवहलना करते थे । सिंधिया ने गोकुलदास की सेना के साथ उन्हें दबाने के लिए भेजा । गोकुलदास अपने कार्य में सफल हुआ । नागा साधुओं को उसकी दबा दिया । संघर्ष में अनेक नागा मारे गये । जो बचे वे भाग गये । उनकी लाशों की संपत्ति गोकुल दास के हाथ लगी थी । उसे लाकर जब उसने सिंधिया को सौंपो तो वह राजकीय कौण में सम्मिलित नहीं की गयी । साधुओं का धन अपना बनाने के कार्य को सिंधिया ने धर्म विरुद्ध माना । फलतः वह धन गोकुलदास के नाम से पृथक् राजकौण में रख लिया गया ।

बृद्धावस्था आयी तो गोकुलदास सिंधिया राज से सेवा निवृत्त हो गया और अपना अंतिम समय भक्ति साधना में बिताने के उद्देश्य से मथुरा आने को उद्यत हुआ । सिंधिया ने वह सारा धन उसी को सौंप दिया । पारिस वल्लभ संप्रदाय के दीक्षित भक्त थे । ग्वालियर में अपने घर में ठाकुर जी की मूर्ति रखते थे । नियमपूर्वक उसकी पूजा अर्चा होती थी । मथुरा आते समय ठाकुर जी को भी साथ लाये । अपने दल के साथ संवत् १८७० में उन्होंने 'भतरीद' में आकर डेरा डाल दिया । यह स्थान मथुरा-वृन्दावन के बीच मार्ग पर अवस्थित है। वहाँ एक बाग में सेवा-पूजा की अस्थायी व्यवस्था की गयी । वह बाग आज भी 'श्रीदारुकाधीश जी का बाग' कहलाता है। मथुरा में फिर विशाल मंदिर बनवाकर उसमें अपने उपास्य देव दारुकाधीश जी की स्थापना की । वही आज मथुरा का ही नहीं भारतवर्ष का प्रसिद्ध 'दारुका-धीश जी का मंदिर' कहलाता है। इसकी सेवा पूजा वल्लभ संप्रदाय की मर्यादाओं के अनुसार होती है।

गोकुलदास निःसंतान थे। उन्होंने अपनी सुनीम मनोराम के ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीचंद को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। लक्ष्मीचंद ने मथुरा में बड़ी प्रतिष्ठा अर्जित की। मंदिर की सेवा पूजा की पूरी व्यवस्था की। इसके साथ ही कारीबार भी किया। 'मनोराम लक्ष्मीचंद' नाम से अपना व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित किया। अपने समय में सेठ लक्ष्मीचंद लक्ष्मी का साक्षात् पुत्र माना जाता था।

लक्ष्मीचन्द के पिता मनोराम दिगम्बर जैन थे। फिर भी उन्होंने गोकुलदास जो के धर्म कार्य में बड़ी निष्ठा से सहायता की थी। बाद में मथुरा के प्राचीन सिद्ध क्षेत्र 'चौरासी' में उन्होंने जैन मंदिर बनवाया। ब्रज मण्डल में जैन धर्म का यह सब से प्रसिद्ध मंदिर है। इसमें श्री चन्द प्रभु और श्री अजितनाथ की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

सेठ लक्ष्मी चन्द्र के विषय में ब्रज क्षेत्र और उसकी संस्कृति के विद्वान् ग्राउस महोदय ने लिखा है :

“ फिक्ले और वरणाँ तक मथुरा जिले का सर्वाधिक प्रभावशाली पुरुष 'मनोराम लक्ष्मीचन्द' की बड़ी गद्दी का सुलिया रहा है। इस गद्दी की व्यापक और प्रचुर प्रतिष्ठा इस प्रान्त के किसी अन्य व्यापारिक संस्थान से अधिक ही नहीं है, वरन् समस्त भारत में भी उसके समान शायद ही कोई दूसरी गद्दी हो। इसकी शाखाएँ दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई के साथ ही साथ अन्य बड़े व्यापारिक केन्द्रों में भी हैं, जहाँ सर्वत्र उनकी प्रसिद्धि है। हिमालय से कन्या कुमारी तक कहीं भी मथुरा के सेठों की कितनी ही बड़ी हुंडी का भुगतान वैसे ही सासु से होता है, जैसा इंगलैंड के बैंक नोट का लन्दन या पेरिस में किया जाता है।^१ ”

श्री प्रमुदयाल मीतल ने भी लक्ष्मीचंद की प्रशंसा उनके सांस्कृतिक कार्यों के लिए की है। वे लिखते हैं :

“ सेठ लक्ष्मीचन्द ने अपनी यश वैभव की वृद्धि करते के साथ ही साथ ब्रज के सांस्कृतिक और जनोपयोगी कार्यों की प्रगति में बड़ा योग दिया था । उस काल में यहाँ इस प्रकार के जितने कार्य किये गये , उनमें प्रमुख प्रेरणा सेठ लक्ष्मी चन्द की थी । क्या धार्मिक, क्या सांस्कृतिक , क्या राजनीतिक सभी क्षेत्रों में उसकी उदारता की धूम थी ।

संवत् १९१४ (सन् १८५७) में जब अंग्रेजों के विरुद्ध जन विद्रोह हुआ था तो सेठ लक्ष्मीचंद ने एक और आर्थिक सहायता देकर विद्रोहियों को शान्त कर दिया था और दूसरी ओर अंग्रेजों की भी सहायता की थी । विद्रोहियों ने छावनी जला दी थी और अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया था । सेठ लक्ष्मीचन्द ने कलकट्टर थॉर्नहिल और उसके साथियों को कई दिनों तक अपनी हवेली में छिपाये रखा था । उन्मुख के समय दोन हस्त्रियों की सभी प्रकार की सहायता भी करते रहे थे । इस प्रकार अपनी उदारता और निपुणता से उन्होंने मथुरा नगर को धन जन की कालि से बचा लिया था ।

सेठ लक्ष्मीचन्द अपने पिता के समान जैन धर्म के अनुयायी थे । पर उनके सगे छोटे भाई राधाकृष्ण और गोविन्ददास रामानुज संप्रदाय के वैष्णव भक्त थे । इन्होंने बड़े भाई से छिपाकर अपने व्यापार में से ही कुछ धन पृथक् कर लिया और उससे वृन्दावन में रामानुज संप्रदाय का एक विशाल मंदिर बनाने का संकल्प किया । संवत् १९०२ में उन्होंने श्री रंग जी का विशाल मंदिर वृन्दावन में बनवाना प्रारम्भ कर दिया । पर कार्य पूरा

न हो सका और धन समाप्त हो गया । निर्माण कार्य रुक गया । इसका पता लक्ष्मीचन्द्र जी को लग गया । तत्पश्चात् उन्होंने इसे पूरा कराया । यह मंदिर संवत् १६०८ में बनकर तैयार हुआ था । इसकी निर्माण विधि दक्षिण के मंदिरों की सी है और अपनी विशालता में यह ब्रज के सब देवालियों से श्रेष्ठ है। उस समय इसके निर्माण में ४५ लाख रुपये व्यय हुए थे ।

ध्यान देने की बात है कि हमारे विवेच्य कवि श्री ललित किशोरी जो संवत् १६०६ में पहले पहल वृन्दावन आये थे । उन्होंने अवश्य इस मंदिर के निर्माण का समाचार सुना होगा । संभव है निर्माण कार्य भी देखा हो । इससे कुछ हो वर्ष पहले द्वाकाधोशजी का मंदिर बना था । हो सकता है कि इनके शाह जी के मन में भी यह उमिलाखा जगी हो कि वे भी एक स्मरणीय, दर्शनीय देवालय बनवायेंगे ।

वृन्दावन में ऐसा ही एक दानी सेठ कृष्णचन्द्र सिंह था जो 'लालबाबू' नाम से प्रसिद्ध था । उसके पूर्वज बंगाल और उड़ीसा में व्यापार करते थे । मुर्शिदाबाद जिले के निवासी थे । उन्होंने वहाँ के नवाबों की सेवा की थी और कंगरेजों की सहायता से प्रचुर संपत्ति अर्जित कर ली थी । ये लोग वहाँ भी दानी धर्मात्मा का जीवन बिताते थे । नदियाँ एवं अन्य स्थानों पर धर्मशाला, मंदिर, संस्कृत पाठशाला आदि बनवा कर समाज का उत्कार करते रहते थे ।

कृष्णचन्द्र सिंह ने संवत् १८६७ में वृन्दावन में एक विशाल मंदिर बनवाया था और उसके साथ अपनी सारी संपत्ति लगा दी थी । मंदिर के साथ धर्मशाला और अन्य चीजें भी हैं। यह लालाबाबू का मंदिर आज भी कहलाता है। राधाकृष्ण के फूँके घाट बनवाने और वहाँ के अन्य कृष्ण-सरोवरों को ठीक कराने में भी उसने बड़ा व्यय किया था । ग्राउस ने लिखा है कि इस सबमें लाला बाबू ने २५ लाख रुपया व्यय किया था । उसने मंदिर

और अन्त दोत्र से जो जमींदारी सहीदकर लगा दी थी उससे २२ हजार रुपये वर्ष की आय होती थी ।

लालाबाबू ने अन्त में अपना सब कुछ त्याग कर विरहित जीवन बिताने का व्रत ले लिया था । वह ब्रज में ही जागया था । वह गोवर्धन के गौड़ीय महात्मा कृष्णदास (सिद्धबाबा) का शिष्य बन गया । गुरु की सेवा के उद्देश्य से अपना अधिक समय गोवर्धन में ही बिताया करता था । वह इतने विरहित भाव में रहने लगा था कि ऐसा धनी सेठ होकर भी अपनी उदरपूर्ति मिट्टा से करता था । उसकी मृत्यु गोवर्धन में ही घोंद की लात लगने से ही गयी थी ।

लालाबाबू और सेठ गोकुलदास पारिस अपनी समय के मधुरा-वृन्दावन के लोक विस्तृत धनी धर्मात्मा पुरुष थे । परन्तु भाग्य की बात कि इन दोनों की मृत्यु बड़ी दुःख और करुणाजनक रूप से हुई थी । सेठ गोकुलदास की मृत्यु का कारण एक विषैला फोड़ा बना था जिसमें अन्त में कीड़े पड़ गये थे । इन दोनों की मृत्यु को लेकर ब्रज में भाग्य की निरक्षुब्धता पर बड़ी चर्चा होती थी । यह दोहा इस विषय में देहात में बहुत सुना जाता था :

“ लाला बाबू मर गये , घोंदा दोष लगाय ।
पारिस के कीड़ा पड़े, विधि सों कहा बसाय ॥ ”

ऊपर जिन धर्मात्मा महानुभावों का परिचय दिया गया है वे ही एक और सेठ नंद कुमार वसु थे । यह बंगाल के समृद्धि-शाली भवत थे । चैतन्य सम्प्रदाय में दीक्षित थे । जब वह ब्रज की यात्रा में वृन्दावन

जाये तो उन्होंने मंदिरों की बड़ी दुर्दशा देखी। औरंगजेब के शासनकाल में अधिकतर देवस्थान नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये थे। उनकी प्रतिमाओं को फेंक - फुकारी बाहर ले गये थे। नंद कुमार ने इसके लिए नये मंदिर बनवाये और उनमें प्राचीन देव मूर्तियों के प्रतिमूर्तिग्रह स्थापित करा दिये। इस प्रकार सन् १८७७ में श्रीगोविन्द देव जी, श्री मदनमोहन जी और श्री गोपीनाथ जी के नये मंदिर प्राचीन गौडीयमंदिरों के पास बने। आजकल वृन्दावन में वहीं पूजा होती है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि विक्रम की १६ वीं शती का उत्तरार्द्ध विशेषकर उसका अंतिम चरण ब्रज-वृन्दावन में भगवद्-भक्ति और देव स्थान बनाने के लिए बड़ी प्रेरणादायक अनुकूलता लेकर आया था। बड़े बड़े सेठ लोग सुदूर प्रान्तों से आ आकर यहाँ अपना पूर धन मंदिर-देवालयों के निर्माण में व्यय करते थे और स्वयं धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। शाह कुन्दनलाल जी जैसे भावुक भक्त के लिए यह स्वाभाविक था कि वह इससे वृन्दावन में रह कर समर्पित भक्त का जीवन बिताने और एक भव्य देवालय बनवाने की प्रेरणा लें। उन्होंने ऐसा ही किया।

शाह जी जिस समय वृन्दावन जाये थे उस समय रास लीला का यहाँ बड़ा प्रचार था। पहले यह दिसाया जा चुका है कि माधव जी सिंधिया जितने दिन वृन्दावन में रहता था, रास कराया करता था। वृन्दावन और उसके बाहर लोक रास मंडलियाँ बनी हुई थीं। टाह जिसने राजस्थान का इतिहास लिखा है १० वर्ष तक दौलत राव सिंधिया के दरबार में रहा था। उसने ब्रज की रास लीलाओं का बड़ी भावुकतापूर्ण भाषा में वर्णन किया है। इसी प्रकार माधव जी सिंधिया के शिविर में ब्रिटिश रेजीडन्सी के अंगरेजक ब्राटन ने भी इसका विस्तृत वर्णन किया है। उसका कथन है -

“ जिस शामयाने में हमें बिठाया गया था वह १५० फीट लम्बा था । जॉर्जों और बत्तियों पर रंगीन कागज चढ़ा कर एक बाढ़ लड़ी कर दीगयी थी, जिन पर दीप्ति जल रहे थे । सामने दो फीट ऊँचा रंग मंत्र था । उसके मध्य में फूल डोल था । फूलडोल में पुष्प, हीरक , रत्न और बहुमूल्य मणियाँ सुसज्जित थीं । पण्डितों ब्राह्मणों का समुदाय जमना कर रहा था । कुछ व्यक्ति फंसा खींच रहे थे । शामयाने का मध्य भाग नर्तकों के लिए छोड़ दिया गया था । शेष दोनों ओर का स्थल दर्शकों से परिपूर्ण था । इसमें भाग लेने वाले प्रायः ब्राह्मण होते थे । वे मथुरा में शिक्षा पाते थे । ”

इसके अतिरिक्त राज लोला की परंपरा स्वामी हरिदास जी और हितहरिवंश जी के समय से ही चली आ रही थी । इस समय इसका लोक प्रियता विशेष रूप से बढ़ गयी थी । शाह जी को रास लोलारं लिले की प्रेरणा प्राचीन और समधामयिक परंपरा से मिली । यहाँ प्रतिष्ठित लोगों में यह सात्विक मनोरंजन और भक्ति रस के प्रत्यक्ष आस्वादन का एक उपाय था । शाह जी अपनी लिखी रास लीलाओं का अपनी निर्देशन में अभिनय करवाया करते थे । इसका वातावरण उस समय वृन्दावन और समूचे ब्रज में विद्यमान था ।

शाह जी के स्वभाव की यह विशेषता थी कि वे अन्तर्बाह्य सर्वत्र भक्त थे । एक समर्पित भक्त का जीवन बिताते थे । उनकी दिनचर्या का बहुत सारा भाग भगवद् भजन और पूजा-अर्चन में ही व्यतीत होता

था। इतना होते हुए भी उन्होंने अपनी संपत्ति और सेठों की मान मर्यादा का लोप नहीं होने दिया। उनके पास हीरे, फना, मोती आदि रत्नों का प्रचुर भण्डार था। धनाढ्यता उनकी तदवस्था बनी रही थी। उसी का परिणाम है कि आज भी वृन्दावन में शाह परिवार प्रतिष्ठा का संपन्न जीवन व्यतीत कर रहा है। शाह जी द्वारा जो सेवा विधि चलायी गयी थी वह ज्यों की त्यों चल रही है।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

ललित किशोरी जी का जन्म विक्रम की १६ वीं शती के सन्ध्याकाल में हुआ था। जाफ़ा कार्य काल बीसवीं शती का पूर्वार्ध सैवत् १६१३ से १६३० तक है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इसी समय से आधुनिक काल का निर्धारण किया है (सैवत् १६००-१६८०) ।

साहित्यिक परिस्थिति को समझने के लिए इस शती के प्राथमिक भाग की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं जो ललित किशोरी जी के संदर्भ में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं :

१- भाषा के क्षेत्र में सही बोली का आविर्भाव इस काल की सर्वप्रमुख विशेषता मानी जाती है। पर उसका प्रयोग पहले गद्य में ही हुआ था। पद्य में उसका अवतार द्विवेदी युग से हुआ। प्रथम चरण में पद्य रचना ब्रजभाषा में ही की जाती थी। आचार्य शुक्ल ने ब्रज भाषा काव्य परंपरा का परिचय देते हुए लिखा है कि "

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पं० रामचन्द्र शुक्ल- पृ० ४०३

(संशोधित और परिवर्धित सं०)

गद्य के आविर्भाव और विकास काल से लेकर अब तक (शुक्ल जी के समय तक) कविता की वह परंपरा भी चलती आ रही है जिसका वर्णन भक्ति काल और रीतिकाल के भीतर हुआ है।^१ यह परंपरा भाव के क्षेत्र में भक्ति , शृंगार , अलंकार विधान , नायिका भेद , नीति और राज स्तुति की थी । इनमें से राज स्तुति की भाव परंपरा रीतिकाल के राजाश्रित कवियों के साथ समाप्त हो गयी थी । शेष सब भाव धाराएँ थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ यथापूर्व चलती आ रही थीं । भक्ति भाव की परंपरा का सीधा सम्बन्ध ललित किशोरी जी से है ।

प्राचीन ब्रज भाषा काव्य परंपरा में रीवा नरेश महाराज रघुराज सिंह , बिहारी सतसई के प्रसिद्ध टीकाकार और काशी नरेश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के आश्रित कवि सरदार ब्रज भट्ट कवि लखिराम गुजराती कवि गोविन्द गित्ताभाई , मथुरा के नवनीत चौबे आदि उल्लेखनीय कवि हैं । इन्होंने के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हमारे आलोच्य कवि ललित किशोरी जी का अपने इतिहास ग्रन्थ में उल्लेख किया है।^२ भक्ति काव्य की भाव धारा विशेषतः कृष्ण भक्ति - काव्य की परंपरा आगे भी बहुत दिनों तक चलती रही । सदी बौली के प्रवर्तक भारतेन्दु जी की ब्रजभाषा में लिखी भक्ति भाव की कवितारें बड़ी मार्फिक और हृदयग्राही मानी जाती हैं।

‘ भारतेन्दु जी के शृंगार रस के कवित्त, सर्वेथे

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पी० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ५७७

२- उपरिचत् पृ० ५७८

बड़े ही सरस और मर्मस्पर्शी होते थे। उनके शृंगार रस के कवित्त सवैयाँ का संग्रह 'प्रेम माधुरी' में और मक्ति एवं शृंगार के पदों का संग्रह 'प्रेम फुलवारी', 'प्रेम मालिका', 'प्रेम फलाप' आदि पुस्तकों में है। उनका अधिकतर काव्य कृष्ण भक्त कवियों के अनुकरण पर रचे पदों के रूप में है। नारतेन्दु जी ने ललित मिश्रों और ललित माधुरी जी दोनों माध्यों की प्रशस्ति में एक एक शृंगार अपने भक्तमाल में लिखा है।

मक्ति भाव की यह परंपरा आधुनिक काल के बिल्कुल पूर्ववर्ती काल खण्ड में अर्थात् विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी समाप्त होते तक यथापूर्व तो बनी ही रही थी, उसमें एक परिवर्तन भी आ रहा था। वह परिवर्तन था प्रेमरस प्रधान भक्त कवियों की प्रचुरता का। मक्ति भावना के साथ ज्ञान वैराग्य, नीति आदि का जो संयोग मक्ति काल में मिलता है और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक वह परंपरा बनी रही थी वह उत्तरार्ध में आकर लुप्त होने लगी। उसका स्थान स्थान्तिक प्रेम रस की मक्ति ने ले लिया था।

रीतिकाल के उत्तरार्ध में जो ब्रजभाषा के उल्लेखनीय भक्त कवि इतिहास प्रसिद्ध हैं उनमें ये नाम परिगणित किए जाते हैं :

१- रसिकवर आनन्दधन जी जो सखी भाव के उपासक थे और नागरीदास जी के अभिन्न मित्र थे। आनन्द ग्रन्थावली में उनके ११०० से अधिक पद संग्रहीत हैं। इनका सखी नाम बहुगुनी माना जाता है। पदों में प्रेम, शृंगार और सखी भाव की अभिव्यक्ति

१- संपा० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - प्रकाशक वाणी विमान, ब्रह्माल,
वाराणसी

हुई है ।

२- बख्शी हंसराज वृन्दावन के महात्मा विजय सखी के शिष्य थे । इनका सम्प्रदायप्रदत्त नाम प्रेम सखी था । 'सनेह सागर' इनकी सर्वोत्तम रचना है जिसमें सखी भाव के प्रेम की बहि-व्यक्ति हुई है। लाला भगवानदीन ने इसे सम्पादित कर प्रकाशित किया था ।

३- चाचा हित वृन्दावनदास (रचना काल सं० १८००- १८५०) राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त कवि थे । विपुल साहित्य के प्रणेता के रूप में इनकी रखाति है। कहा जाता है कि सूरदास जी की भांति इन्होंने भी सवा लाख पदों की रचना की थी । राधाकृष्ण की कृम लोलाओं का इन्होंने बड़ा विण्द वर्णन किया है ।

४- भगवत रसिक (रचनाकाल संवत् १८३०- १८५०) टट्टी सम्प्रदाय में दीक्षित थे जो सखी भाव की उपासना का ही दूसरा नाम है। इन्होंने प्रमत्त पूर्ण अकण्ठ, कवित्त, कृण्ड लिया, कृष्ण आदि की रचना की ।

५- श्री हठी जी हितहरिश्च जी की शिष्य परंपरा में दीक्षित थे । संवत् १८३० में इन्होंने 'राधा सुधा शतक' की रचना की जो राधा वल्लभ कव्य सम्प्रदाय में बड़ी आदर प्राप्त रचना है। हठी जी के काव्य में सरस प्रेम के साथ साथ काव्य सौष्ठव भी कूठा मिलता है।

६- ब्रजवीसीदास वल्लभ सम्प्रदाय के दीक्षित

भवत थे । इन्होंने संवत् १८२७ में 'ब्रज विलास' ग्रन्थ की रचना की ।

इसका भवतों में आज भी बड़ा आदर है। यह रचना तुलसीदास जी के अनुकरण पर ब्रजभाषा के दोहे और लोपाइयों में लिखी गई है। श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर मथुरागमन तक की कथा इसका विषय है।

इस प्रकार ललित किशोरी जी से ५० वर्ष पहले ब्रज वन्दान में प्रेमरस पूर्ण भक्ति भावना की सुदृढ़ परंपरा बन गयी थी । इसका सूत्रपात तो ब्रज में गौरांग महाप्रभु के आगमन से हुआ था पर अस्त होतो हुई सामन्ती परंपरा का वि^{ला}स परायण सामाजिक जीवन भी इसके लिए वातावरण बना रहा था । विलासमय जीवन का ही उन्नीति रूप राधाकृष्ण की प्रेमरस के लियोंने वर्णित हो रहा था ।

भाव के समान भाषा के लिए भी परिवर्तित वातावरण बन रहा था । रीतिकाल के कवियों ने कविता के लिए ब्रजभाषा को ऐसी रूढ़ परंपरा से बना ली थी कि उसका न लोक जीवन की व्यावहारिक भाषा से कोई सम्बन्ध था और न व्याकरण की संगति उसमें होती थी । जो शब्द जिन्हें बोलचाल से उठे कई सौ वर्ष हो गये थे, कवित्तों और सबैयों में उनका प्रयोग हो रहा था । इसका फल यह था कि उत्तरवर्ती रीतिकाल के पद्यों की ब्रजभाषा जन साधारण से दूर पड़ गयी थी । 'चक्कवे', 'मुवात', 'ठायी', 'दोह', 'झौ', 'लीय', 'वादि' शब्द प्राकृत और अपभ्रंश और अपभ्रंश की परंपरा के चले आ रहे थे । इनके कारण कवित्तों का स्वारस्य समझना ब्रजभाषियों के लिए भी दुश्कर हो गया था । इसलिए भाषा की इस दोषपूर्ण प्रणाली में परिवर्तन आ गया । विष्णु की बीसवीं शती के ब्रजभाषा कवियों ने फिर से बोल

बाल की साफ सुथरी भाषा का प्रयोग प्रारंभ किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को दिया है। पर यह गुण उनके पूर्ववर्ती अन्य कवियों में भी मिलता है, विशेष कर मवत कवियों में। उसका कारण ^{भी जन} भक्ति गया था। अंगरेजी, उर्दू भाषाओं का जन प्रयोग में प्रवेश हो रहा था। उसी भाषा की कृत्रिम परंपरा उपेक्षित हो गयी। कवि लोग अपनी प्रतिभा और रुचि के आधार पर भाषा का प्रयोग करने लगे थे। मवत कवि विशेष रूप से पूर्ववर्ती कवियों की भाषा परंपरा से अनमिल थे। इन लोगों ने लौकिक ब्रज भाषा काव्य का अनुशीलन नहीं किया था। अपने भक्ति भावों को अपने अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्वानुभूत भाषा में व्यक्त कर रहे थे। उनका ब्रज प्रान्त के लोक जीवन से जितना निकट का सम्बन्ध था उतना पूर्ववर्ती रीतिकाल के ब्रज साहित्य से नहीं। इस उसके कारण ब्रज भाषा प्रयोग के एक स्वरूप सहज रूप की परंपरा विकसित हो गयी थी। तलित किशोरी जी ने काव्य में वही ब्रज-भाषा दिखायी पड़ती है। कहे जाय साथ उड़ी जीली का जो गद्य में प्रवेश हो गया था और अन्य उर्दू फारसी के कवियों में उन भाषाओं का सर्वत्र प्रयोग हो रहा था उनका भी आश्रय तलित किशोरी जी ने किया। वे फारसी के अच्छे ज्ञाता थे।

इस प्रकार अन्तिमों शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भाव और भाषा के प्रयोग का वातावरण परिवर्तित हो गया था। रीतिबद्ध कवियों की प्रणाली टूट गयी थी। कवि लोग अपनी भाषा का स्वरूप अपने आप गढ़ रहे थे। उनका आधार था जन जीवन। तलित किशोरी जी ने समसामयिक साहित्यिक परिस्थिति के अनुरूप भाव और भाषा का प्रयोग किया। उनकी ज्ञान सम्पत्ति और भाव सम्बन्धी मानसिकता भी इसके अनुरूप थी।

द्वितीय अध्याय

सलित किशोरी जी का जीवन परिचय

विषय प्रवेश

जीवन परिचय

बाह्य साध्य

पूर्वजों का लक्षण आगमन

वंश परिचय , जन्म स्थान एवं जन्म संवत्

पूरा नाम , उपास्य, गोत्र व जाति

शिक्षा, वृन्दावन की लालसा ,

पारिवारिक परिस्थिति में परिवर्तन

वृन्दावन की प्रस्थान, वृन्दावन में

प्रकृत साधना

सन् १८५७ और शाह जी

शाह जी का वाद्व्यय

वृन्दावन के प्रति प्रेम, निष्ठा एवं आदर

दिनचर्या, व्यक्तित्व एवं स्वभाव : बाह्य व्यक्तित्व

अन्तिम समय

सलित माधुरी (एक संक्षिप्त परिचय)

ललित किशोरी जी का जीवन परिचय

विषय प्रवेश

कृष्ण महापुरुष अपने वंश की प्राचीन परंपरा के प्रतिकूल अपने वैशिष्ट्य के कारण इतिहास बना जाते हैं। कभी वे अपनी वंशगत परम्परा में ही इतने विशिष्ट और स्मरणीय गुणों से मंडित हो जाते हैं कि उनसे उन्हीं का नहीं, वंश का भी इतिहास और अधिक प्रतिष्ठित हो जाता है। कालिदास ने रघुवंश में ऐसे ही महामानव राजाओं को वंश-परम्परा का गान किया है। जैसे पाटल के उद्यान में कृष्ण पौधे अपने पुष्पों के आकार, रूप, रंग और सुगन्धि के कारण विशिष्ट होते हैं और द्रष्टा की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। उसी प्रकार किसी प्रशस्त परंपरा वाले वंश में कृष्ण ऐसे महापुरुष जन्म लेते हैं, जिनसे उनका वंश ही नहीं अपितु उनके वंश की प्रतिष्ठा चिरस्थायिनी हो जाती है। हमारे चरित नायक कवि शाह कुन्दन लाल जी जिन्हें सम्प्रदाय में ललित किशोरी जी कहा जाता है ऐसे ही महापुरुष थे। उनका वंश भक्तों का प्रतिष्ठित वंश था। शाह कुन्दन लाल जी इस मणिमाला में सुमेरु पर्वत के समान सूर्यन्य और सर्वोपरि दिव्य/सम्पन्न उत्पन्न हुए।

जीवन परिचय

ललित किशोरी जी के वृत्त को जानने के दो प्रमुख बाधाएँ हैं। वन्तःसाध्य के रूप में उनकी कृतियाँ तथा बाह्यसाध्य के वन्तर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं उनके वंशज स्व० ^{श्री}मोहन गौर शरण गुप्त

द्वारा प्रकाशित 'अमिलाषमाधुरी' की भूमिका। शाह जी ने अपनी सम्बन्ध में स्पष्टता से कहीं कुछ नहीं लिखा है। उनकी रचनाओं का संकलन और उनका प्रकाशन भी उनके अनुज ने किया था। ऐसे पक्ष अवश्य उन्होंने लिखे हैं जो उनके स्वभाव, आस्था, मान्यता और धार्मिक घटना का संकेत देते हैं। उनका यथा स्थान प्रयोग करते हुए कवि का जीवन वृत्त, स्वभाव, गुरु-परम्परा आदि का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

बाह्यसाध्य

ललित किशोरी जी के सम्बन्ध में चर्चा तो अनेक लेखकों ने अपनी अपनी कृतियों में की है परन्तु वह आनुषंगिक है। उदाहरणार्थ ब्रज मण्डल के इतिहास के संदर्भ में उनके जीवन, काव्य और मन्दिर निर्माण पर विचार किया है तो किसी ने ब्रज साहित्य के इतिहास अथवा सभी सम्प्रदाय के इतिहास को परम्परा के परिचय देते हुए उनको केवल एक भक्त के रूप में उल्लेख मात्र किया है। बाह्य एवं आन्तरिक साध्यों को समन्वित करते हुए उनके सम्बन्ध में मिलने वाली कतिपय किंवदन्तियों का परीक्षण करते हुए प्रमुखता के साथ समग्र जीवन का वृत्त किसी ने नहीं दिया है। वस्तुतः श्री ललित किशोरी उन विद्वानों की विषय-सीमा में समाहित भी नहीं होते थे।

'अमिलाषमाधुरी' जी शाह जी की एक मात्र प्रकाशित रचना कही जाती है, उसकी भूमिका में उनका जीवन-वृत्त व्यवस्थित रूप से विस्तार के साथ मिलता है, इस पुस्तक का प्रकाशन और उसकी भूमिका का प्रणयन शाह गौर शरण जी ने कराया था। शाह गौर शरण जी गत वर्ष ही (१९७६) सितम्बर ५ को स्वर्गवासी हुए। उन्हें

शाह जी की रत्नावी का, उनके जीवन वृत्तान्तों का व्यवस्थित ज्ञान था । उन्होंने बड़ी रुचि के साथ शाह जी का जीवन-वृत्त दिया है । वे हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे । उन्होंने की कृपा से मुझे अल्प सामग्री मिली और प्रीति-हर्ष में । शाह जी के जीवन-वृत्त के विषय में 'अमिताभ माधुरी' की भूमिका के अतिरिक्त उनके पास भी कुछ नहीं था । परन्तु धनाढ्य और प्रतिष्ठित परिवार होने के कारण शाह जी के जन्म, उनका वृन्दावन आगमन, ललित निवृत्त का निर्माण, स्वर्गारोहण आदि के सन्, संवत् प्रामाणिक रूप से आज भी सुरक्षित हैं। अतः जीवन-वृत्त की प्रामाणिकता में विशेष कठिनाई नहीं होती ।

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने शाह जी की प्रशस्ति में अपने भवतमाल में एक कृष्ण लिखा है। कृष्ण इस प्रकार है :

“ प्रथम लखनऊ बसि, श्रविन सौं नेह बढ़ायी ।
तहँ श्री जुगल-स्वरूप था पि, मंदिर बनवायी ।
दापर की सुतरास, रास कलयुग में कीनी ।
सोई भजन-वानंद-भाव, सहचरि रंग भीनी ।

लखनऊ पद ललित किशोरि की, नाम प्रगल्लित बिचै नये ।

कुल अग्रवाल पावन-करन, कुन्दन लाल फाट भये ॥ १

उपर्युक्त कृष्ण से इतना ही स्पष्ट है कि शाह कुन्दनलाल जी लखनऊ के निवासी थे परन्तु वृन्दावन के प्रति उनके मन

में स्वाभाविक प्रेम था । राधाऔर कृष्ण का विग्रह स्थापित कर उन्होंने एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया । वे रास के प्रेमी थे । अतः द्वापर का सा आनन्द इस युग में लिया करते थे । वे सहचरी भाव में निमग्न रहते थे । उन्होंने लाखों पदों की रचना की और अपने जन्म द्वारा अग्रवाल वंश को विभूषित कर दिया । उपर्युक्त कृष्ण्य में सन् संवत् १०१० नही किन्तु शाह जी के जीवन की प्रायः सभी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख हो गया है। यह भी प्रमाणित होता है कि वे जाति से अग्रवाल वैश्य थे ।

राधाचरण गौस्वामी ने भी एक कृष्ण्य में दोनों भाई कृन्दनलाल और कुन्दन लाल की प्रशस्ति प्रस्तुत की है। भाव प्रायः वही है, जो भारतेन्दु के उपर्युक्त कृष्ण्य में है। कृष्ण्य निम्नलिखित है :

हाँदि बादसाही बैभव, लक्ष्मणपुर त्याग्यौ ।
श्री वृन्दावन वास वृद्ध व्रत, अति अमुराग्यौ ॥
"ललित निकुंज" बनाय, राधिका रम्य बिराजै ।
रास- बिलास फ़रास, लच्छ पद रचना प्राजै ॥

ब्रजराज मध्य समाधिलिय, जुगल प्रात निर्भय निपुन ।
श्री ललित किसीरी, ललित माधुरी, प्रेममूर्ति वृन्दाबिम्बि ॥ १

डा० सत्येन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में शाह जी का जीवन वृत्त प्रामाणिकता और पूर्णता के साथ दिया है। उसमें उनके गुरु का नाम, शिक्षा-दीक्षा, साहित्य-सृष्टि,

१- प्रमुदयाल मीतल- चैतन्य मत और ब्रज साहित्य पृ० ३२५

२- डा० सत्येन्द्र- ब्रज साहित्य का इतिहास पृ० २०३

वृन्दावनवास, मृत्यु आदि का उल्लेख किया है। ललित किशोरी जी, उनके अनुसार गायन, वाद्य, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं के ज्ञाता थे और रत्नों के (हीरे, जवाहरातों) विशेष पारंगत थे । इनके पास रत्नों का भण्डार भी विपुल था ।

प्रमुदयाल मीतल ने अपने ग्रन्थ " चैतन्य मत और ब्रज साहित्य " में भी इनका संक्षिप्त परिचय दिया है। भारतेन्दु जी और राधाचरण गोस्वामी जी की उपर्युक्त कृप्य उद्धृत की हैं, बाद में ललित किशोरी स्व ललित माधुरी जी के उदाहरण स्वल्प कुछ पथ उद्धृत किए हैं^१।

इसी प्रकार डा० शरण बिहारी गोस्वामी ने अपने शोध ग्रन्थ " कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव^२ " में इनका परिचय पदों के साथ दिया है और इन्हें सखी भाव का प्रमुख भक्त माना है।

जहाँ तक जीवन-वृत्त का सम्बन्ध है, उपर्युक्त ग्रन्थों में ऐसा कोई नवीन तथ्य प्रकाश में नहीं आया जो " अमिलाष-माधुरी " की भूमिका में न हो । इसका कारण यह है कि इन सभी लेखकों ने इस सम्बन्ध में सूचनाएँ शाह परिवार से ही प्राप्त की हैं । शाह गौर शरण जी ही उपर्युक्त सभी लेखकों के मुख्य आधार रहे होंगे । उनके सौजन्य और कृपा का उपयोग जीवन वृत्त के लिए सभी ने किया है।

१- चैतन्य मत और ब्रज- साहित्य पृ० ३२४- ३२७

२- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव पृ० ६४०-६४२

पूर्वजों का लखनऊ आगमन

शाह परिवार मूलतः फर्रुखाबाद नगर का एक प्रतिष्ठित, लक्ष्मों का कृपा-पात्र, वैभव-संपन्न परिवार था। व्यवसाय जोवन था और भक्ति साधना परमार्थ साधना की वस्तु। व्यवसाय की निपुणता और चरित्र की साख के कारण यह परिवार शास्त्र वर्ग में सम्मानित था। इसीलिए शाह बिहारीलाल जो नवाबों के केन्द्र स्थान लखनऊ में जा बसे थे। 'शाह' पदवी इन्हें नवाबों से मिली थी। ललित किशोरी जी के पितामह शाह बिहारी लाल जी को लखनऊ के नवाब के जाहरी और वहाँ के सर्वाधिक धनाढ्य रहस्यों में गणना की जाती थी।

वंश-परिचय

शाह बिहारी लाल जी के ज्येष्ठ पुत्र शाह गौ विन्द लाल जी थे। ये अधिक समय तक जीवित न रह सके। गौस्वामी राधा गौ विन्द जी के दीक्षांत शिष्य थे। शाह गौ विन्द लाल के चार पुत्र हुए जिनमें से दो भक्ति-भावना के विशेष संस्कार लेकर जाये। वे थे हमारे ज्येष्ठतम्य भक्ति कवि शाह कुन्दन लाल और उनके अनुज शाह कुन्दन लाल। इन्होंने भी गौस्वामी राधा गौ विन्द जी से ही दीक्षा ली थी।

कुन्दन लाल जी के कोई सन्तान न थी।

शाह कुन्दन लाल जी के दो पुत्र हुए - शाह किशोरी शरण जी और शाह माधुरी शरण जी। किशोरी शरण जी पाँच वर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गये। शाह जी के नवीन मंदिर में बाहर के बरामदे में पूर्व की ओर फर्श में शाह कुन्दन लाल जी, कुन्दन लाल जी, इनकी दोनों पत्नियाँ और दो

पुत्र बाज भी वर्णित हैं। ये दो पुत्र शाह किशोरी शरण और शाह माधुरी शरण ही हैं। माधुरी शरण जी के गुरु थे, गौस्वामी वैष्णवदास जी। शाह माधुरी शरण जी भी निस्संतान रहे। इन्होंने शाह गौर शरण जी को गोद लिया। ये उच्च शिक्षा प्राप्त, योग्य, निष्ठावान् व्यक्ति थे। इन्होंने गौस्वामी वैष्णवदास जी से दीक्षा ली थी शाह गौर शरण जी के दोष पुत्र हैं - शाह कृष्ण शरण और शाह वमिताल शरण। कृष्ण शरण जी अग्रज होने के नाते मंदिर के सेवा-कार्य की देखभाल करते हैं। इन्होंने राधा रमण जी के मंदिर के अधिकारी गौस्वामी विश्वम्भर गौस्वामी जी से दीक्षा ली है। उनके दो छोटे पुत्र हैं - शाह प्रशान्त कुमार और शाह प्रफुल्ल कुमार।

इस प्रकार शाह परिवार की सन् १९७६ तक तीन पीढ़ियाँ जोड़ित थीं। जब वर्तमान समय में दो विद्यमान हैं। मरित, प्रेम और अभिजात्य की प्राचीन वंश परंपरा यथापूर्व अवस्थित है।

जन्म स्थान एवं जन्म संवत्

श्री ललित किशोरी जी का जन्म कार्तिक कृष्ण द्वितीया संवत् १८८२ में लखनऊ में हुआ था।^१

मूल नाम

ललित किशोरी जी का मूल अर्थात् वास्तविक नाम शाह कृष्णलाल था।

उपनाम

संस्कृत नाम

सका कव्योपनाम ललित किशोरी था।

१- वमिताल माधुरी की भूमिका पृ० २

गौत्र व जाति

ये अग्रवाल वैश्य थे । यह उनके वंशजों से ही जात होता है जो वर्तमान समय में शाह जी के मन्दिर में पूर्व की ओर स्थित भवन में आज भी निवास कर रहे हैं।

शिक्षा

शाह कृन्दनलाल जी ने एक समुद्र परिवार में जन्म लिया था । प्रदिष्टित परिवार के बच्चों की शिक्षा दीक्षा उस समय बाहर नहीं हुआ करते थे । वैसे भी शिक्षा का कोई व्यवस्थित रूप उस समय तक नहीं ही ^{पा}या था । साधारण बालक गुरुजों के पास और अभिजात कुल के बालक अपने ही घरों में पढ़ा करते थे । वहीं जाफ़ी साथ हुआ । घर पर ही जाफ़ी शिक्षा दीक्षा हुई । नवाबों युग होने के कारण उस समय फारसी पढ़ने को व्यापक परंपरा थी जिस प्रकार अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजों पढ़ना शिक्षा का प्रमुख अंग बन गया था, उसी प्रकार मुगल काल में फारसी का अध्ययन उच्च शिक्षा का परिनायक और सरकारी कार्यों में सहायक होता था तथा शासकों में उठने बैठने और उनसे व्यवहार करने के लिए यह आवश्यक भी था ।

इसलिए शाह बन्धुजों की शिक्षा भी फारसी से प्रारम्भ हुई । दोनों भाई तीक्ष्ण बुद्धि के थे अतः शीघ्र ही फारसी में अच्छे प्रवीण हो गये ।

“ अनिलाश माधुरी ” की भूमिका के लेखक ने उल्लेख किया है कि “ युवक कृन्दनलाल संस्कृत पढ़ना चाहते थे परन्तु हर

प्रकार से साधन सम्पन्न होते हुए भी वे संस्कृत का अध्ययन न कर सके, क्योंकि उस समय संस्कृत विद्या के एक मात्र अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण ही हुआ करते थे। वे अपनी मान्यताओं में इतने सखीर्ण और अनुदार थे कि किसी ब्राह्मण को, भले ही द्विज ही, देव भाषा पढ़ाने की उचित न होते थे।

संस्कृत न पढ़ने का कुन्दनलाल जी की जीवन पर्यन्त दायम रहा। उन्हें परम्पराओं और बन्ध-विश्वासों की यह जटिलता अच्छी न लगी। ब्राह्मणों के इस हठधर्मिता और अविवेक की अच्छा नहीं समझता। इसीलिए कुछ उदार विद्वानों से सहायता लेकर उन्होंने 'चातुर्वर्ण्य विवेक' नामक पुस्तक लिखी। वह आज उपलब्ध नहीं है। मुद्रित भी नहीं हो सकी।

कविता लिखने में शाह जी की रुचि बाल्य-पन से ही थी। सम्बन्धियों, मित्रों आदि की पत्र भी वह प्रायः कविता में लिखा करते थे। आपने उस समय दो तीन छोटे-छोटे ग्रन्थ कविता में लिखे। वे सब प्रकाशित न हो सके हैं न ही हस्तलेख के रूप में आज उपलब्ध हैं। लेखक की मनोवृत्ति आत्म प्रदर्शन के प्रतिकूल वात्सर्य होने की थी। 'अमिताभ माधुरी' की भूमिका में लिखा है -

“ बाह्याहम्बर के उपासक न होने के कारण वे कितने सावधानी से न रखी गयीं, अतः नष्ट भ्रष्ट हो गईं। ”

~~“ सुखी ” का अर्थ सुख, देखने वाले का अर्थ ।~~

~~आहुत आने का अर्थ है, देखने वाले के अर्थ । ” २~~

१- अमिताभ माधुरी की भूमिका पृ० ३

~~२- श्रीमान् श्री सुखीययस्य - श्रीमान् श्री श्रीमान्~~

इसके साथ साथ हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली आदि भाषाओं का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनके परिवार में लेन-देन और क्रय-विक्रय का कार्य होता था। उसका भी शाह जी की व्यावहारिक ज्ञान था। "अमिलाब्ध माधुरी" के निम्नलिखित पथ में हुँडी परचे के कार्य में प्रयुक्त शब्दावली का प्रयोग करते हुए राधा जी से प्रार्थना की गयी है कि वह भवत की भूल चूक क्षमा करें और विनय स्वीकार करें अन्यथा लोक हँसाई होगी। पथ की भाषा मारवाड़ी है क्योंकि मारवाड़ी सेठ व्यापारी समाज का प्रतीक आज भी माना जाता है :

गुण औगुण की लेखी म्हारी लाडिली निहारी ना ।
जाणगे महाजन सारे सौखी सौटी कोठी म्हाकी
जो पै थजी हुँडी पै डारोगी स्फारीना ॥

०

०

साती ड्योढी करि काहे जो ब्रज वसवा की मुहरां दोजे
हा हा म्हारी मानां वरजी वाकी को विचारी ना ॥ १

आप गान, वाद्य, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं के उत्कृष्ट ज्ञाता थे।

रागों के जो शताधिक प्रयोग आपने किये हैं उससे आपकी इस दिशा में विशिष्ट रुचि और प्रवीणता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। रागों के नाम ललितकिशोरी जी के ही दिए हुए हैं किसी ने उनका परिवर्तन नहीं किया है। किंवदन्ती भी है कि आप गायकों

और रासधारियों के लिए उनकी रुचि और प्रयोग के अनुसार विविध राग रागनियों में निबद्ध पद लिखा करते थे और उनके गायक का निर्देशन भी करते थे। इस सबसे उनके संगीतज्ञ होने का पक्का प्रमाण मिलता है। नृत्य का भी काफी पूरा ज्ञान था। रासलोला में नृत्य का निर्देशन भी किया करते थे। इसी प्रकार वायुर्वेद में भी उनको अच्छी गति थी।

प्रमुख रूप से ललित किशोरी जी भक्त थे कवि नहीं थे। वे भक्त होने के कारण, भक्ति के आवेश में कवि बन गये थे। इसीलिए उनका काव्य उनके ज्ञान और शिक्षा का सहो अनुपात नहीं है। विद्वत्ता या ज्ञान का उत्कर्ष उनके जीवन का आदर्श भी नहीं था। वह तो प्रेमीपासक थे। प्रेम की तुलना में ज्ञान का उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व न था। वह कहते हैं कि यदि राधाकृष्ण के रूप और रस का छुट नहीं लगा तो पढ़ना लिखना सब व्यर्थ है, यदि सुन्दरी अपनी प्रियतम को प्रसन्न नहीं करती तो उसकी चतुरता धूल के बराबर है :

पढ़ि पढ़ि सब पानी में बोरी ।

जो पै जुगल किशोर रूप रस चूर चूर कर नित ना घोरी ॥

चतुराई अति धूर कूर अलि जो निज प्रीतम नाहिं निहोरे ।

ललित किशोरी विन दिलदारै बोर अकारण जीवन जोरी ॥ १

वृन्दावन की लालसा

संवत् १६०६ में जब ललित किशोरी जी २४ वर्ष के युवक रहे थे, उनके जीवन में एक घटना घटी। पितामह बिहारीलाल

जी ने वृन्दावन में राधारमण जी का जी मन्दिर बनवाया था उसे देखते , उसकी व्यवस्था की जाँच परस करने के लिए इन दोनों भ्राताओं की भेजा गया । परिवार में संभवतः ये ही विशेष रूप से भक्ति- प्रवण समझे गये होंगे । मन्दिर का निर्माण इससे पहले ही हुआ था । प्रतिष्ठा के समय परिवार के अन्य सहस्रस्य आये होंगे । परन्तु यह सौभाग्य ललित बन्धुओं को नहीं मिला था । संभवतः इसीलिए भी इस बार इन्हें अवसर दिया गया । बालकपन से ही आप दोनों भक्त थे । ललितकिशोरी जी में तो कवि सुलभ भावुकता भी विशेष थी । इस अवसर को पाकर दोनों भाई अत्यधिक प्रसन्न हुए । ठाकुर जी की सेवा के लिए एक सुवर्ण का सिंहासन भी अपनी साथ लाये थे । वह आज भी राधारमण जी के मन्दिर में विद्यमान है । रागाष्टमी के दिन उसी से युगल मूर्ति का शृंगार किया जाता है । मन्दिर पहले से ही शाह जी के गुरु परिवार के अधिकार में उन्हीं की सेवा के साथ चलता है।

शाह जी की वृन्दावन, वहाँ का प्रेम- प्रधान भक्तियोग वातावरण, भक्तों के साथ सत्संग करने की सुविधा, यह सब अधिक अच्छा लगा । इच्छा ही गयी कि यहाँ रहा जाय, लखनऊ वापस जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर तब तक आप बालक ही थे, अपने अग्रिजों के आज्ञाकारी और उनके स्नेहपात्र शाह जी के पिताजी ही नहीं पितामह भी तब तक जीवित थे । अतः शाह जी चाहते हुए भी मन मार कर रह गये । परिवार में जाकर अपना मुँह न खोल सके । ब्रज में छ्धर उधर एक मास तक घूम कर अन्य-मनस्क भाव से लखनऊ लौट गये ।

परन्तु इस ब्रजयात्रा ने शाह जी के अन्तःकरण में बाल्यकाल से फाफो हुए राधाकृष्ण प्रेम के कँठर को सिंचित पल्लवित कर

दिया । हृदय में अवस्थित स्थायी भाव, आलम्बन और उद्दीप्त के बल से
 इस दशा तक पहुँच गया । मन में ^{कर भाजना} रहे रहे उठने लगी कि कब वृन्दावन
 जाया जाय और वहाँ शृंगार के लिये मैं मग्न राधाकृष्ण के अनवरत दर्शन किये
 जायँ । इस भाव के अनेक पद दोहे शाह जो की लेखनी से लिखे गये हैं। यथा -

जुगल विहारी विरह में, नाहिँ अब अवकास ।
 ललित किशोरी दीजिए, श्री वृन्दावन वास ॥
 यही कर्म यहि धर्म है, यही उपासन ज्ञान ।
 कै ब्रज सुख इन दृग लहाँ , कै कृति पहुँचै प्रान ॥
 मुकुट चन्द्रिका शिर धरे , चन्द्रहार बनभाल ।
 वृन्दा विपिन बसाइये , ललित किशोरी लाल ॥
 वटशृंगार बसाइये , करुणा सिन्धु कृपाल ।
 श्रीबन मंदिरवर लखौं , ललित किशोरी लाल ॥ १

नीचे लिखे पद में स्पष्ट रूप से ऐसा भाव
 व्यक्त किया है कि वह वृन्दावन एक बार ही जाये हैं। दुर्भाग्य ने उन्हें वहाँ
 से बाहर निकाल दिया । अब वहाँ फिर जाने को लालायित हैं। पद इस
 प्रकार है :

रखी नाहिँ उचित ही प्यारी ।
 कादि दई ज्यों दूध की माँसी वृन्दावनतें कीनी न्यारी ॥
 जिहि रसना षटरस नहिँ भावत जुगल नाम रस की अधिकारी ।
 ताकी काल कटत अब राधे निसिदिन बातें वक्त लवारी ॥
 जे बसियाँ रसरूप माधुरी पीपी लकी रहत मतवारी ॥

१- कमलाञ्ज माधुरी पृ० ११ दो० ६८, ६९, १०० और १०१

२- कमलाञ्ज माधुरी पृ० १०६ । ४४

पगों रहत नि शिवासर तै जगि कागद-कलम दवाति मँकारी ॥
 जे कर पग अरविन्द फलीटत भानकृवरि नंदलाल बिहारी ॥
 तै विमुक्त के काज संभारत ललितकिशोरी दुःख महारी ।
 कृपा दृष्टि देखी ओ स्वामिनि पुजवौ प्यारी आस हमारी ॥
 अखंड वास वृन्दावन पावौ परी रहौ हौं सरण तिहारी ॥

पद से स्पष्ट हो जाता है कि कवि वृन्दावन में से इस प्रकार निकाल दिया गया है जैसे दूध में से मक्खन को निकाल देते हैं। वृन्दावन में वह युगल मूर्ति का नाम संकीर्तन करता करता छोट्टरस व्यंजन को भी तुच्छ समझता था । अब वह व्यर्थ की बातें करता हुआ समय बिता रहा है। वृन्दावन में अखंड युगलमूर्ति के रूप रस को पी पी कर तृप्त होतो थो अब वे दिन रात कागद कलम दवात में डूबो रहते हैं। (संभवतः परिवार में व्यापार का हिसाब किताब देखने की काम शाह जी को करना पड़ता था) हाथ वृन्दावन में तो श्री राधा जी के चरण कमलों की सेवा में लगते थे । अब वे उन लोगों का कार्य पूरा करने में लग रहे हैं जो राधा कृष्ण के भक्त हो नहीं, भक्ति के विमुख हैं । अन्त में कवि प्रार्थना करता है कि उसे वृन्दावन में अखण्डवास मिले , वहाँ से फिर वापस लखनऊ न जाना पड़े ।

समय चक्र बदला शाह जी के परिवार में प्रभावकारी परिवर्तन आया । पहले फिदायह शाह बिहारी लाल जी का स्वर्गवास हुआ । तत्पश्चात् फिदाजी का और उसके कुछ दिन पश्चात् माता भी परलोकवासिनी बन गयीं । परिवार में कोई ऐसा वयस्क न रहा जो उसे अनुशासन के सूत्र में बांधि रहे और परिवार का प्रत्यक्ष व्यभिचर अपनी अर्भक पद्धति पर चलकर विकास की ओर बढ़ सके । यों तो समस्त परिवार ही

गौड़ीय सम्प्रदाय की मन्त्रित साधना की परंपरा में रहता आया था । इसके फलस्वरूप विनय, परमार्थ साधना और प्रेम सद्भाव आदि का वातावरण उसमें भरपूर था । पर ये आदर्श पालन करना परंपरा का कार्य नहीं होता । व्यक्तिगत रुचि और चारित्रिक संगठन इसके मुख्य कारण बनते हैं । जिस व्यक्ति में ये गुण स्वतः होते हैं वह इस आदर्श मार्ग पर चलने का प्रयास करता है । ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। सर्वसाधारण तो आहार, निद्रा, भय, मैथुन के आवर्त में ही पड़े समय के धक्के खाकर आगे पड़े होते रहते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ साधना जनसाधारण का जीवनादर्श होता है।

पारिवारिक परिस्थिति में परिवर्तन

शाह जी के परिवार में भी वयोवृद्धों के चले जाने पर सात्विकता का व्यवहार समाप्त हो गया । सम्पत्ति बहुत थी । उस पर अपना अपना अधिकार अधिक अधिकार जमाने की लालसा जग गयी । शाह कुन्दन लाल और उनके छोटे भ्राता कुन्दन लाल प्रमुख रूप से भवत थे । उनका सम्पूर्ण समय मन्त्रित साधना में ही व्यतीत होता । भावुकता और कवित्व का बीज उनकी प्रकृति में थे उस कारण से भी यथार्थ चिन्तन और लोक व्यवहार की उपेक्षा उस समय शाह बन्धुओं के स्वभाव में रहो होगी , इससे परिवार के लोगों ने इनके प्रति निरादर और ज्वहेलना का बर्ताव प्रारंभ कर दिया । हो सकता है, इनके सरल, प्रेमो स्वभाव का वे लोग अनुचित लाभ उठाने चाहते हों । विभिन्न प्रकार से उन लोगों ने शाह जी को कष्ट देने प्रारंभ कर दिए । संभव है यह दुर्भाग्यना भीतर भीतर काम कर रही थी कि शाह जी विरक्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। तरंग में आकर थोड़ा बहुत ले देकर पुष्क हो जायेंगे । सम्पत्ति का पुष्कल भाग उन्होंने लोगों के अधिकार में रहा आयेगा ।

परन्तु शाह जी ने विपत्ति को इस बेला में बड़े धैर्य से काम लिया । यही ब्रह्मपूज्य का आदर्श है कि विपत्ति में धैर्य से काम लिया जाय । अपने हित-अहित को, दूसरों को कष्ट नीति और कूरता को समझने के लिए स्थिर चित्तवृत्ति अपेक्षित होती है। वह भीरु पुरुष के ही पास होता है, अधीर के नहीं । भगवद् भजन स्व ठाकुर जी की सेवा-पूजा आफ्ना संबल धो । उसे आपो/नहीं शौदा ।

“ सौ लगो रहें पर ली लगो रहे ” का आदर्श आफ्ना समझा रहा । “ इन कारणों से आप उन सब कष्टों को कृष्ण परवाह नहीं करते थे । ”

“ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महती भयात् । ” १

अतः मानसिक वेदनाओं और कठिनाइयों के काल में हो गोस्वामी राधा गोविन्द जी का लक्ष्मण जाना हुआ । गोस्वामी जी शाह परिवार के गुरुकुल के ही प्रधान आचार्य थे । वे कृष्ण समय तक लक्ष्मण ठहरे । शाह कुन्दन लाल जी ने उनसे “ गोपाल चम्पू ” नामक संस्कृत ग्रन्थ का श्रवण किया । इन्हीं दिनों में गोस्वामी परिवार के ही एक और विद्वान् कवि श्री गल्लू जी महाराज भी लक्ष्मण पधारे और वे भी शाह परिवार के साथ रुके । ये बड़े विद्वान्, कवि और अच्छे प्रभावशाली व्याख्यानदाता थे । इनका उपनाम “ गुणमंजरी दास ” था । इसी नाम से वे कविता लिखा करते थे । ये प्रसिद्ध कवि श्री राधाचरण गोस्वामी के पिता थे । वर्तमान शाह जी के मन्दिर के पूर्व में राधारमण धरा के पश्चिमवाली गली में जी “ णड्मुज महाप्रभु ” का मंदिर है, वह उन्हीं का स्थापित किया हुआ है। मूर्ति को कै मुजारे है। इसमें राम

१- अभिलाष माधुरी भूमिका पृ० ३
२- श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४०

कृष्ण और चैतन्य महाप्रभु की समन्वित शक्ति को कल्पना की गयी है। इसी-
लिए दो मुजाबों में धनुष बाण, दो में सुरली और दो नृत्य को भाव मुद्रा
में ऊपर उठों हुई हैं।

इन्होंने अपनी व्याख्यान उपदेश शाह परिवार
में दिये। इनका शाह कुन्दन लाल जी पर विशेष प्रभाव पड़ा। "अमिलाष
माधुरी" में कई पद गल्लू जी की प्रशस्ति में लिखे गये हैं। गल्लू जी से मिलते
रहने का आनन्द कवि ने वृन्दावनवास का फल माना है। निम्नलिखित पद
में ललित किशोरी जी गल्लू जी के आगमन पर अपना हर्षाश्लास प्रकट करते
हैं :

गोस्वामी आज यहाँ गल्लू जी लगे हैं, वाह वाहे अजी वाहवा है।
स्वामिनी कृपा से भये मेरे मन भागे हैं, वाहवा है अजी वाहवा है ॥
वृन्दावनवास हूँ है धियरा हलासये हैं, वाहवा है अजी वाहवा है।
ललित किशोरी मानी बी लिवे पठाये हैं, वाहवा है अजी वाहवा है ॥ १

उपर्युक्त पद से प्रतीत होता है कि गल्लू जी
के आगमन के कुछ समय बाद ही शाह जी ने लखनऊ छोड़ दिया था। और
वृन्दावन में निवास करने के लिए चल दिये थे।

इससे मन का भगवत्प्रेम और अधिक उदीप्त
हो गया। मन दुःखी और पीड़ित तो था ही। प्रत्यक्षा रूप से प्राप्त आध्या-
त्मिक अवलम्ब 'हूबते को तिनके का सहारा' बन गया। शाह जी ने दृढ़
निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, कोई भी बाधा आये, वृन्दावन जाना है

और वहीं सदा के लिए निवास करना है। अभिलाष माधुरी में उन्होंने इस भाव के अनेक पद्य लिखे हैं। निम्नलिखित पद्य स्पष्टतः इसकी अभिव्यक्ति करता है। यथा-

वृन्दावन को जाना है तो वृन्दावन को जाना है ।
 रसिक रंगोले राधामोहन तिनसाँ दिल लहिराना है ॥
 ललित किशोरी ने वृद्ध कर जब ये ही मन में ठाना है ।
 ललित लता नि धुवन के नीचे हवाई ठोके ठिकाना है ॥ १

पद्य में आया वाक्य " हवाई ठोके ठिकाना है " स्पष्ट करता है कि परिवार के दमघोट वातावरण में वह क्लृप्ता रहे थे । उन्हें वृन्दावन काशान्त प्रेममय वातावरण ही यहाँ लिए शरण दीप्त लगा ।

गीता में अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण ने बताया है कि भगवान् का भजन करने वाले चार प्रकार के पुण्यात्मा लोग होते हैं- आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी अर्थात् प्रयोजन के अभिलाषी और अज्ञानी ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
 आर्ता जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १२

शाह जो आर्त भक्त थे भौतिक जीवन का सुख समृद्धि भरा जीवन उनके लिए भड़भूजे की भाँड़ बन गया था । उसमें चतुर्विध व्यथा और क्लेश था । इसकी तुलना में वृन्दावन का प्रेममय जीवन और इसमयी साधना समस्त उन्हें ब्रास से बाणदायक लगी होगी । आर्ति सामान्य

१- अभिलाषमाधुरी पृ० १८२ स्त०

२- श्रीमद्भगवद्गीता अ १६

व्यक्ति को भी भगवद्भक्ति की ओर मोड़ लेने में सफल होती है। शाह जी तो पहले से ही भक्त थे। वार्तिक ने उनकी वास्था को दृढ़ से दृढ़तर बना दिया। शाह जी के जीवन मार्ग का यह बड़ा उत्प्रेक्षणीय मोड़ था। हो सकता है, यदि परिवार में शाह जी को मोहव्यथा न मिली होती और उसी अन्तराल में गौस्वामी राधा गौविन्द जी वहाँ न गये होते तो शाह जी के जीवन का वह रूप न बना होता जो आज जगत् के समक्ष है। ऊँहुर को समय पर साद और पानी का सिंचन मिल जाय तो उसका वृद्ध के रूप में परिणत होना निश्चित हो जाता है।

अभिलाष माधुरी के शिष्या पत्रिका प्रकरण में तीन दोहे और हैं जो इसी बात को पुष्ट करते हैं।

कृपा बिना कहु बने ना कहौ लोके भुलाय ।
 निज बीती कहु कहौ सौ सुन हिय श्रवन लगाय ॥
 चिन्तामनि गुरुचरन शुचि श्रीराधा गौविंद ।
 सुमिरत ही अंतस फुर्यौ वृन्दावन आनंद ॥
 पद सरीज गौपाल भट भजतिहैं भजत अरूप ।
 हियै माँझ विकसित भयो वृन्दावन की रूप ॥ १

शाह जी ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि वृन्दावन जाना है परन्तु इस दिशा में भी वह सावधान रहे कि उन्हें "कौरा भगत जी" सम्भर कर कोई ठग न सके। अपनी सम्पत्ति का बटवारा कराया। कूटुम्बियों के बटवारे से वह संतुष्ट नहीं हुए। उसमें हेर फेर^{१५१} होगा। न्यायपूर्ण ढंग से इनका जितना भाग बनता था उतना इन्हें नहीं मिलता होगा। इसलिए उन्होंने

१- अभिलाष माधुरी - भूमिका पृ० १८७ दोहा सं० १५, १७, १७

न्यायालय की शरण ली। लखनऊ तब तक अंग्रेजी सरकार का कोई शासकीय केन्द्र नहीं बना था। नवाबी मुख्य स्थान अवश्य था। पर नवाबी के दिन तो लड़ गये थे। उसका सूर्य अस्त हो गया था और अंग्रेजी सरकार का बाधिपत्य पैर जमा रहा था। इसलिए उचित न्याय प्राप्त करने के लिए शाह जी को स्वयं कानपुर और कलकत्ता जाना पड़ा था। अन्ततः उन्हें विजय मिली। जितनी सम्पत्ति उनके भाग में आती थी उतनी उन्हें मिल गयी। कहना चाहिए उन्होंने ले ली। यह विशेष उल्लेखनीय है कि ऐसे कलह और जाल में फँसे रहने पर भी शाह जी की प्रेम-साधना रुकी नहीं। उनका रचनाक्रम बराबर चलता रहा। संभवतः उन्हें विश्वास हो गया था कि संसार में अशरण की शरण देने वाला, बेसहारा का सहारा परमेश्वर ही है। भूमिका में लिखा है कि "अमिलाष माधुरी" उसी काल की रचना है। "रसकलिका" की तुलना में "अमिलाष माधुरी" की अभिव्यक्ति अधिक प्रभावपूर्ण और परिमार्जित लगती है। इसका कारण कवि की युवावस्था का कल्पना वैग और इस पर पड़ा कठिनाह्वय का दबाव हो सकता है। निम्नलिखित पद्य में उसकी गन्ध आती है-

जुगल भजन विन आयु सिरानी ।

सौवत सात जात निशि वासर विषयि संग नसानी ।

अब लागी अबसेर दरस की मन मुसकयान न समानी ।

ललित किशोरी श्रीवृन्दावन देह वास वनरानी ॥ १

वृन्दावन की प्रस्थान

संवत् १६१२ (सन् १८५५) के चैत्र मास के

१- अमिलाष माधुरी पृ० १०२ । १८

कृष्ण पक्ष में शाह जी दोनों माहें सप्तमिक सेवकों के साथ लखनऊ छोड़कर वृन्दावन की चल दिये। वैशाख शुक्ल त्रयोदशी संवत् १६१३ को लगभग एक वर्ष में आप लोग वृन्दावन आ गये। आपने परिवार द्वारा बनवाया हुआ जी राधारमण जी का मंदिर वृन्दावन में था उसी के समीप पटनोपल वाली कुंज में आपने रहना प्रारम्भ कर दिया। कुछ सेवक परिवार के साथ रहते थे। वधियों का यमुना के किनारे पर तंबुओं में रहने का प्रबन्ध कर दिया गया। 'अमिताभमाधुरी' की भूमिका में लिखा है कि चार हजार सेवक आपकी साथ लखनऊ से आये थे। संभवतः यह सुनी हुई बात रहो होगी। सर्वथा प्रामाणिक नहीं लगती।

वृन्दावन में भक्ति-साधना

रास श्रीड़ा का सही सम्प्रदाय में विशेष महत्त्व है। इसको परम्परा का प्रवर्तन भी सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक हरिदास जी ही बताये जाते हैं। इसी परंपरा की बुद्धि में रखकर शाह जी ने रासलीलाओं का प्रणय प्रारम्भ किया। वृन्दावन की आपकी साहित्य साधना यही है। आपने ८१८३ पथों में लगभग २६६ लोलाओं का वर्णन किया है। इसका विवरण 'रसकलिका' के विषय प्रतिपाद के परिचय वाले अगले अध्याय में दिया गया है। 'रसकलिका' इन्हीं लोलाओं के वर्णन का नाम है। 'अमिताभ माधुरी' की भूमिका में 'लघु रस कलिका' नाम भी इसी रचना/की दिया गया है। इस विषय में शाह जी के वंशजों से पूछताछ करने पर कि कहीं इस नाम की कोई और रचना तो नहीं है। उन लोगों ने बताया है कि जी कुछ शाह जी का साहित्य सुरक्षित है वह 'रस कलिका' ही है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। रचनानिधि के प्रारंभ में 'लघु रस कलिका' का पूर्ण विवरण दिया जाएगा।

सन् १८५७ और शाह जी

शाह जी एक साधक अभिजात व्यक्ति का जीवन वृन्दावन में जीते थे। अपनी सम्पत्ति और व्यापार की देखभाल करते हुए भी मन से भक्ति भावना में ही लीन रहते थे। संवत् १६१४ अर्थात् सन् १८५७ में देश में अंग्रेजी सरकार के प्रति विद्रोह बढ़क उठा। यह मूलतः था तो विदेशी सरकार के प्रति लोगों के असन्तोष का सामूहिक उफान पर कहीं कहीं ऐसे लोग भी इसमें कूद पड़े थे जो किसी उच्च आदर्श से प्रेरित नहीं थे। उस चतुर्विध बढ़कती आग में ^{ऐसे लोग} केवल अपनी दो रोटियाँ सँक लेना चाहते थे। ऐसे ही एक ठाकुर हीरा सिंह अपने साथ कुछ शस्त्र सज्जित लोगों को लेकर वृन्दावन की सीमा पर आ लगे। उन्होंने भी धा कि यहाँ जो मन्दिरों में सम्पत्ति है और कुछ सम्पन्न भक्त लोग यहाँ निवास करते हैं उन्हें लूटेंगे। इससे प्रचुर धन की प्राप्ति होगी।

शाह जी के पास सेवकों की पर्याप्त संख्या थी। लगभग एक छोटी मोटी फौज ही थी। 'अभिलाष माधुरी' की भूमिका में मिलता है कि संयोगवश उसी समय शाह जी को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। उस हर्षान्तिरेक में बंदूकें छोड़ी गयीं। गोले भी छोड़े गये। धमकानों से विस्तारकारियों ने समझा कि वृन्दावनवासियों ने प्रतिरोध किया है। फलतः उन्होंने आक्रमण का विचार छोड़ दिया। उधर ठाकुर हीरा सिंह शाह जी के पास मैत्री का भाव लेकर पहुँचे। शाह जी ने भी उनका सत्कार किया, उनके संगी साक्षियों को भोजन आवास की सुविधा दी। एक दो दिन बाद ये लोग स्वयं ही वापिस चले गये। शाह जी से उन्होंने धन की याचना भी की पर उन्होंने अपनी सन्दूकड़ी से एक सुन्दर राधा कृष्ण का चित्र और चरणामृत की गीली निकाल कर उन्हें दे दी। साथ ही यह कहा कि मेरे पास

इससे बड़ा धन नहीं है। होरासिंह भी चित्र की सुन्दरता और शाह जी की भक्ति निष्ठा से इतने प्रभावित हुए कि उसी में संतोष करके वापिस चले गये।

कुछ समय पश्चात् जब देश में शान्ति स्थापित हो गयी और अंगरेजी सरकार का शिकंजा अच्छी तरह कस गया तो शाह जी के नाम वारंट जारी किया गया। उन्हें दिल्ली कोर्ट में बुलाया गया। उन पर अभियोग लगा कि उफ्फवियों को उन्होंने अपने यहाँ शरण दी है। वह उनसे मिले हुए थे। शाह जी ने अपने को निरपराध सिद्ध करने का प्रयत्न किया। बताया कि उन्होंने ब्रज और वृन्दावन को बचाने के लिए ऐसा किया था। अंग्रेज न्यायाधीश को इस पर विश्वास नहीं हुआ। अशान्ति और विद्रोह का काल था। अंग्रेज भय और आतंक जमाना चाहता था। झूठे झूठी बात पर लोगों को फाँसों पर लटका दिया जाता था। शाह जी को भी मृत्यु दण्ड सुना दिया गया। वे बेचारे क्या करते? उस समय कोई भी कुछ नहीं कर सकता था। विवश ही शाह जी ने दण्ड स्वीकार कर लिया। साथ ही न्यायाधीश से प्रार्थना की कि उन्हें मृत्युदण्ड वृन्दावन में ही दिया जाय। वह जीवन का अन्त वृन्दावन से बाहर नहीं चाहते। इनकी इस गहरी धार्मिक निष्ठा से अंग्रेज न्यायाधीश की धारणा बदल गयी। उसकी समझ में आ गया कि यह कोई धार्मिक व्यक्ति है, उफ्फवी षड्यन्त्रकारी नहीं। फलतः शाह जी को राज भवन को रहने का आदेश देकर मुक्त कर दिया। शाह जी ने भी अपनी ओर से ^{उसे} विश्वस्त कर दिया। "अमिताभ माधुरी" की भूमिका में वह वातालाप उल्लिखित है जो अंग्रेज न्यायाधीश और शाह जी के बीच हुआ था। "भूमिका" में तो स्मृत दिया है कि शाह जी के बुद्धिमत्तापूर्ण वचनों को सुन कर मजिस्ट्रेट द्विविधा में पड़ गया। शाह जी साहब ने सत्य, विद्वत्ता साहस

और वात्मबल से अपनी जाने वाली आपत्ति की बात की बात में दूर कर दिया। भूमिका लेखक का मन्तव्य है कि शाह जो अपनी वचन चातुरी (बुद्धि-मत्तापूर्ण वचन) से बच गये। पर वस्तुस्थिति यह है कि वे अपने वृन्दावन प्रेम और भगवन्निष्ठा के कारण बच सके। अंग्रेज की विश्वास होगया कि शाह जो कोई भक्त व्यक्ति हैं। सब भी यही था। " धर्मा रक्षाति रक्षितः । "

एक दो वर्षों इस प्रकार वृन्दावन में अवस्थित होने और देश के राजनीतिक सामाजिक वातावरण के शान्त होने में लग गये। सन् १८५७ के बाद शाह जो फिर अपनी भक्ति साधना और काव्य प्रणयन में लग गये। इस बार उन्होंने रासलीलाओं को काव्यबद्ध करने का संकल्प लिया और पूजा सेवा से बचे अपने समय को इसमें व्यय करने लगे। " रसकलिका " इसी प्रयास का फल है।

शाह जो का वाङ्मय

शाह जो के संपूर्ण वाङ्मय में हर फेर कर निरंज लोला का वर्णन हुआ है। सखा सम्प्रदाय में इसी का सर्वोपरि महत्त्व है। दूसरे शब्दों में हम इसे " निरंज-सम्प्रदाय " भी कह सकते हैं। " रसकलिका " का प्रणयन करते समय शाह जो के मन में यह कल्पना उठी कि भगवान् को रास लीलाओं के लिए एक अपना ही निरंज तैयार कराया जाय और उसी में ये रास लीलारं सली जायें। इसी संकल्प को लेकर उन्होंने उस समय चार पाँच लाख रुपया व्यय कर यमुना तट पर संगमरमर का भव्य मन्दिर बनवाया जो आज " शाह जो का मन्दिर " टेटे खर्मा का मन्दिर " आदि नामों से विख्यात है। कहते हैं इसकी भूमि महाराजा जयपुर ने बिना कोई मूल्य लिए शाह जो को दी थी और जितना पत्थर इसमें लगा वह भी

जयपुर राज्य की ओर से मिला था । इस मन्दिर का नाम शाह जी ने 'ललित निरुज' रखा । ललित अर्थात् ललित किशोरी शाह श्री कृन्दन लाल जी । इस मन्दिर का निर्माण कार्य माघ शु० ५ संवत् १६१७ से प्रारम्भ हुआ था । निर्माण कार्य समाप्त हुआ संवत् १६२५ में । उसी वर्ष माघ शु० ५ (वसन्त पौर्णमी) को बड़े समारोह के साथ भगवान राधारमण जी का विग्रह जो पहले पुराने मंदिर में स्थापित था उसकी प्राण प्रतिष्ठापूर्वक इस मंदिर में स्थापना की गयी । शाह जी पहले से ही उनकी सेवा में रहते थे । अब और अधिक उत्साह एवं समर्पण भाव के साथ सेवा अर्चा में संलग्न हो गये । 'ललित निरुज' से सटा हुआ ही पूर्व दिशा में शाह परिवार का आवास भवन है । सब मिलाकर भवन का समष्टिगत बिंब ऐसा लगता है मानों मंदिर का पुजारी भगवान् के सान्निध्य में सर्वात्म्या समर्पित भाव से रह रहा है । बारहसड़ों के एक दोहे में शाह जी ने कहा है कि भक्त कहकर भी यदि अपनी संपत्ति को भगवान् की सेवा में व्यय न किया जाय तो शाह और एक बराबर है। शाह होने का क्या लाभ हुआ ?

सस्त्रा संपत्ति पायें, दंपति के उत्साह ।

स्व न कीनी हर्ष तौ, कहाँ एक कह साह ॥ १

वृन्दावन के प्रति प्रेम निष्ठा एवं वादर

शाह जी को वृन्दावनवास अत्यन्त प्रिय था । इसा सुखा भोजन करने के पश्चात् भी वे वृन्दावनवास चाहते थे । 'अभिलाष माधुरी' में वृन्दावन पर दो शतक आपी लिखे हैं। इनके दोहे बड़े मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं। निम्न लिखित दोहे इसका साक्ष्य देते हैं -

१- अभिलाषमाधुरी - पृ० ८७ रु

दूजे तीजे चना की, स्सीहू मिलि जाय ।
 वृन्दावन बसिये सदा, साक जलीनों साथ ॥
 साही सब संसार पै, करि दीजै पिय पीक ।
 वृन्दावन की गली की, जली गदाहं नकि ॥
 जान देश की हमरती, सुनितिहु मुख करवाय ।
 वृन्दावन की रज अजी, मिसिरिहु ते मिठियाय ॥ १

शाह जी की वृन्दावन के समझा वैकुण्ठ भी
 तुच्छ लगता है।

" ब्रह्म लोक वैकुण्ठ हू, वृन्दावन सम नाहिं ।
 तेन दिवस विहरत जुगल, जाकी तरवर झांहि ॥ " २

विनय अर्थात् प्रार्थना में भी उन्होंने यही
 याचना की है, कि राधा रानी की कृपा से वृन्दावन का वास और वहाँ
 पर राधाकृष्ण की शृंगार कैलियाँ के साक्षात्कार का सौभाग्य मिले । सखी
 ललित किशोरी " ज्वरा फसार कर " यह वरदान मांगती हैं।

शाह जी की वृन्दावन धाम में बड़ी अडिग
 और अटूट निष्ठा थी । वे वृन्दावन में रहकर जूते नहीं पहनते थे । नंगे
 पैरों ही सर्वत्र जाते जाते थे । लखनऊ में हुक्का पीते थे परन्तु जब वाप वृन्दावन
 आये, वृन्दावन की सीमा पर आकर आपने पड़ाव डाला वहाँ सेवक ने हुक्का
 भर कर आपकी समझा रखा तो उन्होंने लात मार कर उसे गिरा दिया और

१- अभिलाष माधुरी पृ० १२, १३ दोहा सं० १४, १५, १६

२- उपरिक्त पृ० १३ दोहा सं० १८

फिर कभी भी उसका नाम न लिया । वृन्दावन में आप कभी मलमूत्र त्याग नहीं करते थे । बागरे से कृण्डे मंगवाकर शौचालय में रख दिये जाते थे और प्रयोग के पश्चात् उन्हें ब्रज चौरासी कोस की परिधि से बाहर फिकवा दिया जाता था । श्रीधाम में आपकी ऐसी अप्रतिम निष्ठा थी कि वे एक बार वृन्दावन में आकर फिर वृन्दावन की सीमा से बाहर नहीं गये । यहाँ तक कि आपकी आज्ञा थी कि हमारा चित्र भी कभी वृन्दावन से बाहर न भेजा जाय ।^१

१८५७ के विद्रोह में विद्रोहियों से सहानुभूति रखने की शंका कम्पनी के अधिकारियों को आप पर हो गयी थी । उस संदर्भ में आपको दिल्ली जाना पड़ा । जब उन्हें मृत्यु दण्ड का निर्णय सुनाया गया तो शाह जी ने यही प्रार्थना की कि यह दण्ड हमें वृन्दावन में ही दिया जाय । इस पर उन्हें नैष्ठिक मन्त्र समझकर झौड़ दिया गया । ऐसी ब्रज मन्त्र की तन्मयता और तपोव्रता अन्य व्यक्ति में मिलना कठिन है।

प्रसाद में भी शाह जी की अतिशय श्रद्धा थी। प्रसाद का लघुतम अंश भी नष्ट नहीं होने देते थे । दानि की सीकें निकाल कर उसे चाट कर साफ करते थे । इसमें उनकी श्रद्धा ही कारण थी ।

दिनचर्या

शाह जी की दिन चर्या बड़ी सुन्दर थी । आप प्रातः चार बजे उठकर शौच स्नान से निवृत्त होकर श्री जी की मंगला की सेवा करते थे । तत्पश्चात् बाल भोग रखकर नित्य नियमभजन वादि करते थे । शृंगार वादनी के पश्चात् जब ठाकुर जी राजभोग में विराजते तब आप सब कमल के साथ रंजितन करते हुए श्री राधारमण जी के दर्शन करने के लिए

जाते थे और दर्शन करने के पश्चात् अपनी गुरुजी श्री राधा गोविन्द जी से कुछ शिक्षा ग्रहण करते हुए वापस आ जाते थे ।

दोपहर को प्रसाद लेकर कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् कुछ काव्यशास्त्र विनोद, रचना इत्यादि करते थे । सन्ध्या को ^{रना} स्नान कर एक बार श्रीजी की सेवा में जाते थे । सन्ध्या का सेवा कार्य शीटे शाह जो करते थे, आप योगाभ्यास करने के लिए यमुना किनारे बारहदारी में आजाते थे और दो तीन घण्टे योगाभ्यास करने के पश्चात् व्यास करते थे । तत्पश्चात् १२, १ बजे तक मजन में लगे रहते थे । वे रात्रि में तीन चार घण्टे सोते थे ।

व्यक्तित्व एवं स्वभाव

कवि, लेखक, मन्त्र अधिकारी अन्तर्मुखी वृत्ति के होते हैं। व्यावहारिक जगत् में स्वभावतः बहिर्मुख होते हैं। केवल उनकी रचनाओं के आधार पर ही उनके स्वभाव का अनुमान किया जा सकता है। यह तर्क सम्भव है जब उनको रचनाएं विविध विषयों पर रची गयी हों । पात्रों के माध्यम से अथवा घटनाओं की प्रतिक्रियाओं की दृष्टि में लेकर कवि के स्वभाव का अनुमान दिया जा सकता है। ललित किशोरी जी के व्यक्तित्व की उनकी रचनाओं के आधार पर फहना दुष्कर हो गया है। वे नितान्त भक्ति-निष्ठ, आत्माराम में रमण करने वाले और अपने भगवान् को समर्पित स्वभाव के प्राणी थे । उच्च कोटि के मन्त्र कवि गायक होते हुए भी अभिमान उनमें लेशमात्र भी नहीं था । उनके स्वभाव में विविधता और अनेकरूपता का अनुमान उनके काव्य के आधार पर नहीं लगाया जा सकता ।

अतः 'अमिताभ माधुरी' की भूमिका पर

ही निर्भर होना पड़ता है। इस सम्बन्ध में जो संकेत मिलते हैं उनके अप्रामा-
णिक होने के कोई कारण नहीं हैं। क्योंकि 'अभिलाष माधुरी' के प्रका-
शन के समय उनकी पुत्र वधू विद्यमान थी। उन्होंने के आग्रह पर पुस्तक का पुनः
प्रकाशन कराया गया था। वे शाह जो को प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में आते हैं।
उन्होंने स्वभाव के विषय में जो संकेत दिये, वही भूमिका में लिखा गया है।

उच्च कोटि के भक्त हों अथवा जानें उनकी
जीवन पद्धति साधारणता से हटकर होती है। उनके स्वभाव एवं व्यवहार में
असाधारणता होती है। इसे आस्तिक विखासी लोग दिव्यता कह कर उनके
प्रति निष्ठापय ही जाते हैं। भगवदभिमुख लोग कट्टे आलोचना से विचलित नहीं
होते उन्हें अपनी साधना पर वृद्धता होती है। इसी को 'मस्ती' या माँज
क़ारा जाता है। कव्यात्म में इसे ही आत्मरमण कहा गया है।

“नहिस्वात्मारामं विषयं मृगतृष्णा भ्रमयति ।” १

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कवितावली में
अने फलकद्वय का परिचय इस प्रकार दिया है :

‘माँगि- के सैबो, मसीति- को चीहबो ,
सैबेठ को स्ख न दैबेठ को दीऊ ॥’ २

तुलसी का उक्त कथन उनकी अपनी कट्टे आलोचना का उत्तर था और अपनी
मस्ती का प्रमाण था। ललित किशोरी जो के स्वभाव में भी यह मस्ती थी।
सखी भाव से साधना करना आलोचना का विषय रहा होगा। अतः उन्होंने
बेधदक होकर घोषित कर दिया हम अपनी साधना मार्ग पर खड़े हैं। दूसरों को

१- शिवमहिम्नः स्तोत्र श्लोक ८

२- गो० तुलसीदास - कवितावली १०६

हम दोन या उपहास्य लगते हैं उसका हमें कोई भय नहीं है । हम राधा जी के द्वार पर उपस्थित हो गए हैं फिर हमें किसी अन्य संस्कार का भय क्यों हो ?

श्रीविन वीथिन के प्यादे हम दबते नहीं सवारों से ।
मिहतर हूँ से कमतर यद्यपि बेहतर शाह हजारों से ॥
मेरा मोह निशाने वदि क्या डरना तलवारों के वारों से ।
ललित किशोरी दर पर हाजिर खतरा क्या संस्कारों से ॥ १

शाह जी जिस प्रकार उच्च कोटि के मन्त्र थे, उसी प्रकार अपनी व्यापार और धन सम्पत्ति की सार संभार में पूर्ण सजग भीथे । आज भी उनका परिवार सम्पन्न और सुखी है। साधना और लोक-यात्रा में किसी प्रकार का विरोध शाह जी ने नहीं जाने दिया था ।

उन्होंने कहा है कि ठूराई और सिक्काई को बराबर बाँट लिया है। प्रीति और व्यवहार मानों एक साथ भगवान् ने उन्हें दिये हैं। यह उनके व्यक्तित्व का संतुलित रूप अत्यन्त प्रशंसनीय था ।

‘ ठूराई प्यारो लई, सिक्काई पो बाँट ।
प्रीति रीति एक सार ससि दई मनो एक साँट ॥ २

बाह्य व्यक्तित्व

वे अत्यन्त सुन्दर, गौर वर्ण के दृष्ट-पुष्ट

१- अमिताभ माधुरी पृ० १७६ । २७६

२- उपरिबत् पृ० २२६ । ७०

बलिष्ठ निरोग और हंसमुख थे । वे केवल धोती पहनते और दुपट्टा ओढ़ते थे । जाड़े के मौसम में बगलबन्दी आदि पहिन लेते थे । उनका रहन सहन अतीव साधारण था । लासतोन कुन को बैठ हमे जेमे खोले हो जेचो में पदो मेश मूषाये ।

अन्तिम समय

शाह जी का जीवन अधिक समय तक नहीं चला । संवत् १६३० में दशहरा के पश्चात् आप बीमार हो गये । साधारण मलेरिया ज्वर था । दिन प्रतिदिन आपका शरीर क्षीण होता गया । कार्तिक शु० प्रतिपदा के दिन आपको ज्ञात ही गया कि अब शरीर आगे नहीं चलेगा । उनकी यहों निर संचित अभिलाषा थी कि राधाकृष्ण का नाम संकीर्तन करते हुए वृन्दावन में शरीर छोटे । ऐसा ही अवसर उपस्थित हो गया । अतः आपने आतुर संन्यास ले लिया और सबकी गद्दश दिया कि मेरे प्राण ब्रज रज में शरीर त्याग करें । छोटे शाह जी ने यमुना की कोमल स्वच्छ बालू खनवाकर चबूतरा तैयार कराया और उस पर आपका फलंग रख दिया गया । आपको आज्ञानुसार संकीर्तन प्रारम्भ किया गया । तीनों और राधात्मण जी के चित्र रख दिये गये । 'अभिलाष माधुरी' की भूमिका में एक कृष्णली दी है और लिखा है कि 'दिन के ढाई बजे आपने एक पद रचना कर पड़ा '

वृन्दावन जवनी जली करी राधिका सौर ।

गली गली हुट राधिका नाम न दूजौ घोर ॥

नाम न दूजौ घोर और दश हूँ रंग रचि ।

जल थल पातन पात सौर राधा धुनि माचै ॥

एसी वनै समाज सदा रहिहीं जग जिन्दा ।

ललित किशोरी प्राण जाउठै बन विन्दा ॥ १

किंवदन्ती है कि प्राणान्त के समय शाह जी अति प्रसन्न चित्त थे ऊपर की हाथ उठा उठाकर नाचते हुईं सी मुद्रा में कीर्तन कर रहे थे । कार्तिक शुक्ल द्वितीया संवत् १६३० सन् १८७३ की अपराह्न साढ़े तीन बजे इस समर्पित प्रेम-निष्ठ शाह का भगवल्लीला धाम में प्रवेश हो गया । शाह जी का जन्म कार्तिक मास में द्वितीया को हुआ था । उसी मास की द्वितीया को ही प्रणान्त हुआ । इस प्रकार केवल ४८ वर्ष १५ दिन की आयु आपने भोगी ।

काल की यह सोमा साधारण हो है। इस बड़ा नहीं कहा जा सकता किन्तु इसी अवधि में शाह जी ने वृहत् साहित्य की सर्जना कर दी थी । नैष्ठिक भक्त का अनुकरणोप जिवन बिताया और अपनी संपत्ति में से ऐसा भव्य मंदिर युगल मूर्ति के चरणों में समर्पित कर गये कि वहाँ युगी तक उनके नाम की अमर बनाये रहेगा ।

अन्तिम समय का वर्णन करते हुए 'अभिलाष माधुरी' की भूमिका में लिखा है कि शाह जी की मृत्यु का समाचार बिजली की भाँति चारों ओर फैल गया, दर्शनों के लिए चारों ओर से लोग पहुँच गये । वृन्दावन की मुख्य सड़कों पर यमुना की बाजू बिक्री दी गयी थी । शाह जी का सखी रूप सजाया गया । शरीर पर केसरिया रंग की गाँतों बाँधी गयी । चरणों में कोमल वस्त्र बाँधकर धीरे-धीरे लोग आपसी ले जा रहे थे पीछे-पीछे हजारों आदमों रज में लोटते नाचते कीर्तन करते जा रहे थे । इस प्रकार मुख्य मुख्य मंदिरों का दर्शन करती हुईं शव यात्रा प्राचीन राधारमण जी के मंदिरके

समीप पहुँची। श्रीजी की ओर से प्रसादी दुपट्टा, माला और प्रसाद पार्थिव देह को समर्पित किया गया। तत्पश्चात् युगल वाटिका में उस प्रभु समर्पित सुन्दर पार्थिव शरीर को समाधिस्थ कर दिया गया। आपकी अभिलाषा थी कि आपका शरीर निधुवन के पास ही रहे। यह स्थान उससे कुछ दूर पड़ता था, अतः कुछ दिन के पश्चात् आपकी समाधि वहाँ से हटाकर निकुंज भवन के 'चंदपोल' नामक द्वार पर जो निधुवन के अति समीप है लगा दी गयी। मृत्यु से पहले संन्यास लेने के कारण शाह जी के पार्थिव देह को अग्नि को समर्पित नहीं किया गया। उन्हें भू-समाधि दी गई और इस प्रकार यह भक्त-शिरोमणि ब्रज रज में लीन हो गया।

ललित माधुरी (एक संक्षिप्त परिचय)

ललित माधुरी शाह कुन्दनलाल जी का निकुंज नाम है। आप शाह कुन्दनलाल जी से तीन वर्ष से कुछ अधिक छोटे थे। इनका जन्म माघ शुक्ला १४ संवत् १८८५ को उसी शाह परिवार में हुआ था। जन्म से ही दोनों मनोरंजी में अगाध प्रेम था। दोनों अभिन्न बन कर रहते थे। पढ़ना लिखना भी दोनों का साथ-साथ हुआ था। ईश्वर की कृपा कि दोनों ही प्रकृत्या कवि थे। बड़े भाई बड़प्पन के अनुरूप स्नेहशील थे तो छोटे भाई उनके अनन्य आज्ञाकारो। बड़े भाई की आज्ञा को प्रभु वाक्य मान कर पालन करते थे। 'अभिलाषमाधुरी' को भूमिका में लिखा है कि एक बार इन्हें ज्वर आगया। ज्वर में जब उन्होंने बार बार पानी पिया तो कुन्दनलाल जी ने इसके लिए पना कर दिया। बस उन्होंने जल ग्रहण करना बन्द कर दिया। बिना जल की बूँदें मुँह में गये १४ घण्टे बीत गये। इससे

उन्हें सुस्की (डिहाइड्रेशन) हो गयी और बेहोश होने लगे । कृन्दनलाल जी को जब पता लगा तो वह आये और इस विकार का कारण जानना चाहा पर कृन्दनलाल जो ने कोई उत्तर नहीं दिया । वैद्य बुलाया गया । उसने बताया कि जल न पीने से इनकी अवस्था हो गयी है। अन्त में उन्हें जल पिलाया गया और फिर ठीक हो गये ।

रासलीला में आफको भी बढ़ी रुचि थी , कृन्दन लाल जी उनके लिए पद- रचना किया करते थे और कृन्दनलाल जी उनका प्रबन्ध किया करते थे । जब तक रासलीला होती थी सक्रिय रूप से रासधारियों में मिले रहते थे । एक बार रास मण्डली यमुना तट की ओर जा रही थी । राधा और कृष्ण आगे आगे नृत्य करते जाते थे । गायक पद गा रहे थे और पोंछे हजारों नर नारी कीर्तन करते जा रहे थे । राधा कृष्ण का जल केलि विहार होना था । राधारमण जी के मन्दिर के पास बगल की गली से दो छाँड आ गये । बाजों और कीर्तन के कोलाहल के कारण वे बिगड़ गये । आफको में लड़ने लगे और जिकर कर राधा कृष्ण जी को और मागे । जनसमूह में मगदड़ मच गयी । आर्तक साँफल गया । ललिता माधुरी साथ में हो थे । उन्हें तनिक भी हिच नहीं हुई । साड़ों के सामने आ गये । उनके माथों पर हाथ फेरा , पुकारा और उनके सोंग फूँड कर एक ओर मोड़ दिया । सब लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ और आश्चस्तता भी । मंडली यथापूर्व आगे बढ़ गयी । भगवन्निष्ठा ने उनके मन में दृढ़ता उत्पन्न कर दी थी :

‘ अहिंसा प्रतिष्ठायै तत्संनिधौ वैर त्यागः । ’ १

सारा जीवन आफका बढ़े माई के अनुगमन

और वाशाकारित्व में व्यतीत हुआ । श्यामा की भाँति उनके साथलगे रहते थे । ललित किशोरी जो राधा जी की सेवामें और ललित माधुरी जो ललित किशोरी जी की सेवामें । मानी उन्हें अपने कोई चिन्ता हो नहीं थी । निष्काम नि-
द्वन्द्व । कलियुग में उन्होंने लक्ष्मण का आदर्श निभाया । भारतेन्दु बाबू हरिश्-
चन्द्र ने आपकी विषय में एक कृप्य लिखा है जिससे आपकी चरित्र, स्वभाव ,
कवि सामर्थ्य आदि गुणों पर प्रकाश पड़ता है :

प्रेता में जो लक्ष्मण करी सो इन कलियुग माँहि किय ।
वृज कृन्दनलाल सदा दैवत सम मान्यौ ।
परम गुप्त हरि-विरह-अमृत सो हियरौ सान्यौ ॥
वैतरंग सखि भाव कबहुँ काहू न लखायो ।
करम जाल विर्व्वसि प्रेम-पथ छुट्टा चलायो ॥

श्री कृन्दनलाल उदारमणि नैतु भगति अति तारि हिय ।
प्रेता में जो लक्ष्मण करी सो इन कलियुग माँहि किय ॥१

ललित किशोरी जी की भाँति ललित माधुरी
जी भी कवि थे । उनका हृदय भी प्रेम के सान्निध्य से भरित और प्रेमाकुली
में तरंगित रहता था । पर वह मान का पर्दा अपने स्वभाव पर डाले रहते
थे । स्वयं भी कविता किया करते थे । परन्तु उन्होंने कभी अपने को प्रकट
नहीं किया । 'रसकलिका' और 'अभिलाष माधुरी' दोनों रचनाओं
में 'ललित माधुरी' नाम के पद, सँकेत, कवित्त आदि संग्रहीत हैं । ऐसे पद
भी हैं जिनमें आप 'ललित किशोरी' की हैं पर सखी के रूप में 'ललितमाधुरी'

भी उसमें उल्लिखित हैं। यह विशेष उल्लेखनीय है कि "ललित माधुरी" का प वाले पद्यों की भाषा शैली "ललित किशोरी" जी के पद्यों की शैली से कुछ भिन्नता लिए हुए है। इनमें सुरत शृंगार का सुलापन कम है और भाषा स्वभावों में अपेक्षाकृत अधिक प्राणिलता प्रतीत होती है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि इन्होंने बहुत कम लिखा है। इसलिए इनकी रचनाओं के पोके अधिक परिश्रम और सुविचारितता आगयी है। "रस-कलिका" का एक पद जो ललित माधुरी जी की रचना है नीचे उद्धृत है :

"मिथुन सेज रस रंग रये ।

देखत सुरति स्वप्न जगि जीवक हाय जान कहि लपट गये ।

पौवन लगे अर्धो अधरन को पुनि कर सरकि उरौज गये ।

उमरि उमरि चाउर चाउर अंग उरु अरु सौं मोंचि लये ।

ललित माधुरी लागि सुरति ~~कर~~ त्रिपित न तबहुँ बूंद तये ।

चातक प्राण अघात न अलिगन पान करत न बारि दये ॥ १"

इसो प्रकार "अभिलाष माधुरी" का

निम्न सबैया भी देखिए -

"शृंजन कृंज प्रमो सुख पुंज रंगीली रंगोले रंग रंग रासा ।

नेक चितै हितसौं इत लाडिलो भरे तो एक है तेरिही आसा ॥

जाचत और न बात कहुँ रस प्रेम मई बन देहु निवासा ।

माधुरी नैन निहारि तुहँ चित वायरहो पदपंज सुपासा ॥ २

ललित किशोरी जी के निधन के पश्चात् उनकी

१- रसकलिका दल २३। २१

२- अभिलाष माधुरी पृ० १५०। १८३

रचनाओं का संग्रह और संभार आपने ही की। यदि उनके बाद यह न बने रहते तो उनका कितना काव्य परिवार में बच रहता - यह कहना कठिन है।

बड़े शाह जी की मृत्यु के पश्चात् आप बाहर वर्ण और जीवित रहे। मंदिर और परिवार के कारीबार को देखभाल आपने ही की। ज्येष्ठ शु० ५ संवत् १९४२ को आपने भी नश्वर देह त्याग कर दिया। इनकी पक्षाघात हो गया था। चलने फिरने में असमर्थ हो गये थे। मृत्यु के समय भी आपने बड़े भाई का अनुसरण किया। जमुना जी का रेत मँगवाया गया। उसका बड़ा चबूतरा बना और उस पर कुर्सी रख दी गयी। उस कुर्सी पर आप विराजमान हो गये। कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते-करते वे भगव-ल्लोला में प्रवेश कर गये। "ललित निकुंज" के द्वार के निकट बड़े भाई के समीप ही दूसरी ओर आपको समाधिस्थ कर दिया गया।

...

तृतीय अध्याय

ललित किशोरी जी की रचना ! और उनकी प्रामाणिकता

अमिलाबायी - प्रकाशित प्रति

अमिलाबायी - हस्तलिखित प्रति

अमिलाबायी में प्रकरण क्रम से पद्यों की संख्या

रसकलिका - लघु रसकलिका प्रथम और द्वितीय भाग

लघु रसकलिका तृतीय भाग

लघु रसकलिका चतुर्थ भाग

रसकलिका एवं लघु रसकलिका के पद्यों की संख्या

में अन्तर

रसकलिका - अप्रकाशित

ललित किशोरी वृन्दावन वाली प्रति

वृन्दावन शोध संस्थान वृन्दावन वाली प्रति

ब्रज अकादमी वृन्दावन वाली प्रतियाँ

श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय ग्वालियर वाली

प्रतियाँ

रसकलिका का सामान्य परिचय - भाषा

ललित किशोरी जी की रचनाएँ और उनकी प्रामाणिकता

भवतवर ललित किशोरी जी का बाहुल्य मात्रा मैविशाल है, परन्तु उस समस्त का पुस्तक रूप दो में संकलित हो गया है। एक 'अमिलाष माधुरी' है, दूसरी 'रस-कलिका' है। अमिलाषमाधुरी प्रकाशित है, यद्यपि इसका हस्तलिखित रूप भी 'ललित निवृज' वृन्दावन में विद्यमान है। प्रकाशित और हस्तलेख में कोई अन्तर नहीं है। हस्तलेख ही अविकल रूप में प्रकाशित किया है।

१- अमिलाषमाधुरी- प्रकाशित प्रति

'अमिलाष माधुरी' का प्रकाशन दो बार हुआ है। प्रथम प्रकाशन संवत् १९३५ में और फिर संवत् १९५८ में अर्थात् २३ वर्ष बाद। प्रथम संस्करण का प्रकाशन शाह फुन्दनलाल जी (ललित माधुरी) के जीवन काल में हुआ था। वे संवत् १९४२ में नित्य लीलाधाम में प्रविष्ट हो गये। द्वितीय संस्करण शाह गौर शरण जी ने प्रकाशित कराया। भूमिका में उन्होंने सूचित किया है कि यह संस्करण उन्होंने अपनी माता जी की इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से कराया। उनके शब्द इस प्रकार हैं :

“आफ़ी (माता रामदेवी जी) बहुत दिनों से इच्छा थी कि शाह जी साहब के ग्रन्थ फिर छपाये जायें। किन्तु तब से निविध प्रकार के फौफटों के कारण आफ़ी अमिलाष पूर्ण नहीं हुई। इधर बहुत से मित्रों के अनुरोध और माता जी की आज्ञा से उन्होंने भी अमिलललित 'अमिलाष माधुरी' को पुनर्मुद्रित कराकर हम प्रकाशित कर रहे हैं।”

इस पुस्तक की मूल रचना शाह जी ने वृन्दावन आने से पहले अपने लखनऊ निवास काल में की थी। इसका संकेत भी श्री गौर शरण जी ने अपनी भूमिका में दिया है।

“ इसी समय वृन्दावन से आपके गुरु श्री राधा गोविन्द गोस्वामी लखनऊ पधारे। उनके आने से आपकी चित्तवृत्तियाँ दूसरी ओर लग गयीं। उनसे आपने बहुत सी शिक्षाएँ ग्रहण कीं और श्री गोपाल चम्पू नामक ग्रन्थ श्रवण किया। जब वे वृन्दावन वापिस जाने लगे तो आपने निज सेव्य श्री राधारमण जी का निग्रह उनके साथ वृन्दावन भेज दिया और कहा कि आपकी देखरेख में उनकी सेवा पूजा का प्रबन्ध करा दीजियेगा। हम शीघ्र वृन्दावन आकर अपना निवास स्थान निर्माण करेंगे। हमारे इस ग्रन्थ का प्रणयन काल यही है।”

प्रथम संस्करण जी संवत् १९३८ में प्रकाशित हुआ, वह श्री रामनारायण सम्पतराग शुक्ल के ग्रन्थालय में रखा था। यह प्रति श्री राधार्णव विश्वनाथ पुस्तकालय में मिली है। इसका आकार २५. ५ १७. २ से० मी० है। इस ग्रन्थ में पृष्ठ संख्या १ से २४१ तक है। पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर निम्न लिखित लेखित है -

“ रामनारायण वा सम्पतराग शुक्ल यन्त्रे संवत्
१९३८ अष्टादश कृष्णा त्रयोदश्याम् मुद्रणित्वा सः । ”

यह ग्रन्थालय किस नगर में था - इसका कोई संकेत नहीं दिया गया है।

पुस्तक के अन्त में यह सूचित है कि यह रचना साह कृन्दनलाल जी की है । उन्होंने सन् १९१७ में प्रारम्भ कर सन् १९२५ में "ललित निरुज" मंदिर का निर्माण पूरा कराया और उसके ५ वर्ष बाद सन् १९३० में "नित्य निरुज निवास" पाया । अर्थात् उनका स्वर्गवास हो गया । यह इस प्रकार है :

“ ज्ञातव्य है कि श्रीकृष्ण चैतन्य वरुण उपासी श्री गोपाल भट्ट गोस्वामि परिवार गोस्वामि श्री राधा गोविन्द जी महाराज श्री राधारमणी के कृपापात्र श्री गोरश्याम महाउज्ज्वल रसाधि-कारी साह कृन्दनलाल लखनऊ सीहर के रहने वाले उन्होंने सन् १९१३ को श्री वृन्दावन में वास किया और रास लीला द्वारा अति गुह्य उज्ज्वल भावना रस को प्रगट दर्शाया और माघ शुक्ल ५ सन् १९१७ को अति कमिलाष संयुक्त तन धन मा^{उत्पन्न}करिके श्री जी के मंदिर को आरंभ करायी सो मन्दिर संगमरमर पत्थर की अति अपूर्व वर्षा ८ में निर्माण होय कर मिति माघ शुक्ल ५ सन् १९२५ को वा में उनके नित्य निज सेव्य श्री राधा रमणीजी विराजे महोत्सव बड़े उत्साह से किया ललित निरुज मंदिर को नाम धरायी वा पीछे कार्तिक शुक्ल २ सन् १९३० के दिवस राधेश्याम नाम स्वीर्त्त धुनि आनंद में साह कृन्दनलाल ने श्री वृन्दावन नित्य निरुज निवास पायी उन्होंने यह पुस्तक रचना करी । ”

“ हस्ताक्षर केशवदेव ”

...

२- कमिलाष माधुरी - हस्तलिखित प्रति

इस पुस्तक की एक अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर

वफारों में लिखी हस्तलिखित प्रति भी "ललित निर्गुज" वृन्दावन में विद्यमान है। उसका लिपिकाल संवत् १६३७ है अर्थात् प्रथम संस्करण के प्रकाशन वर्ष से एक वर्ष ही पूर्व हस्तलेख लिपिबद्ध हुआ था। इसके अन्त में शाह कुन्दन लाल जी के हस्ताक्षर भी वर्णित हैं। इसके हाशिये पर यह भी लिखा है- "और ललित किशोरी अपनी छाप धरी। उनके पश्चात् उनके अनुज शाह कुन्दन लाल ने उनके पदादि कोष को समुच्चय करके सुबुद्धानुसार विचारि पुस्तक रूप करि लित्वाहें सो अभिलाष माधुरी चैत्र शुक्ल २ संवत् १६३७ को परियाप्त भई। अन्त में शिवप्रसाद के हस्ताक्षर वर्णित हैं।

द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण और हस्त-लेख से अनेक बातों का अन्तर आ गया है। उसे नवीन वर्णित कर रहे हैं। सुविधा के लिए प्रथम संस्करण को प्राचीन और द्वितीय को नवीन संस्करण कह कर संकेतित करेंगे।

१- नवीन संस्करण में प्राचीन संस्करण से कुछ सामग्री अधिक बढ़ा दी गयी है। "अष्टयाम उत्कर्णठा स्तवक" नामक प्रकरण प्राचीन प्रति में नहीं है। नवीन में संग्रहित है। पृष्ठ सं० ४६ से ७१ तक है। यह प्रकरण अपेक्षाकृत बड़ा भी है। इसके अनेक हस्तलेख भी मिले हैं। इसमें राधाकृष्ण के दिन रात के शृंगारिक जीवन का रू उल्लिखितों में वर्णन हुआ है। पद्य संख्या ४१६ है। शीर्षक इस प्रकार है :

क्रम संस्था -	शीर्षक	पद्य संस्था
१	अष्टयाम उत्कर्णठा स्तवक	१०

१- इसका आकार ३६ x २४ से० मी० है। प्रारम्भ में १ से ६ पन्नों में विषय सूची दी गयी है। शेष ग्रन्थ १५३ पन्नों में समाप्त हुआ है।

२	नवल निर्बुज सौ भवन गमन	११-२८
३	भवन सौ वन गमन, गीचरण जमुना स्नान	२६-३२
४	जमुना स्नान, शृंगार, कलेजु वाहती	३३-५४
५	वन सौ भवन गमन, भोजन चौपरि ग्रीष्म विहार	५५-१००
६	भवन सौ वन गमन सूर्य पूजा मिसवा वशीलीजन मिस मिलन	१०१-११२
७	होरी	११३-१३०
८	वैगमर्दन जलबिहारी, स्वल्प शृंगार, रसपान	१३१-१४४
९	वन सौ गमन, फलतोरन, पारौसिन गेह गमन	१४५-१५२
१०	मास्त चौरी वर्णन	१५३-१६२
११	फलपान वर्णन	१६३-१६८
१२	फूल खेलन वर्णन	१६९-१७०
१३	टुकाटुकी वर्णन	१७१-१७६
१४-	भूला वर्णन	१७७-१७८
१५	फूल बनिन वर्णन	१७९-१८०
१६	वन सौ भवन गमन उत्तरीणीष्ठ	१८१-१८६
१७	नैद भवन गमन वर्णन	१८७-२२२
१८	भवन सौ वन गमन, शृंगार व्याक वर्णन	२२३-२४०
१९	रास वर्णन	२४१-२६८
२०	वाति मीचनी वा कुवाकुषी खेल वर्णन	२६९-३००
२१	जल विहार	३०१-३०६

२२	आर कपल शृंगार रस वचनानुसृत सहित	३०६-३४४
२३	मान	३४५-३५८
२४	मेवा, भोजन, मधुपान वा वलसानयुक्त निर्बुज गमन	३५९- ३८०
२५	क्षीर पान, पर्यंक स्थिति, आरती वर्णन	३८१-३९१
२६	चरण फलौटन	३९१-३९८

नोट- ३९१ संख्या भूल से दो बार वीकित कर दी गयी है

२७	शयन	३९९-४१४
२८	स्वप्न निरीक्षण	४१५-४१६

नवीन प्रति में पृष्ठ २४२ पर एक कुँडली अधिक है। यह प्राचीन में नहीं है।

यमक यंत्री प्रकरण समाप्त होने पर १५ पद्य नवीन संस्करण में और बढ़ाये गये हैं। शिखा पत्रिका (पृ० १८८) में पद्य २४ के बाद ८ पद्य बढ़े हैं। इन पद्याँ पर संख्या भी पृथक् से डाली गयी है।

पद्याँ पर संख्या वीकित करने में नवीन संस्करण में भूलें हुई हैं। विनय शीर्षक के अन्तर्गत पद्य संख्या २४४ के पश्चात् ३९ पद्याँ पर संख्या वीकित नहीं हुई है। इससे बागे की संख्याएँ भी अशुद्ध होती चली गयी है। इसी प्रकार पद्य संख्या २५८ (पृ० १७३) के बाद २ पद्याँ पर, २६२ के बाद (पृ० १७५) एक पद्य पर संख्या नहीं डाली गयी है। इस प्रकार ४५ पद्य बिना संख्या के छप गये हैं। पुरानी प्रति में प्रारम्भ में से अन्त तक क्रम संख्या बढ़ती

जाती है। नवीन में अनेक नये सिरे से पुष्प संख्या डाल दी गयी है।

शिक्षा पत्रिका प्रकरण में जिज्ञासु और शिक्षक के वार्तालाप की योजना प्राचीन प्रति में नहीं है। केवल पद्य संकलित हैं। यह नवीन प्रति में ही बढ़ाया गया है।

पृष्ठ १६८ पर- 'गोपाल भट्ट गोस्वामी पूजन' शीर्षक बढ़ाया गया है। आगे के पद्य में इस शीर्षक की कोई संगति नहीं है।

इसी प्रकार दो एक स्थलों पर पाठ भेद कर दिया गया है। इसी प्रकरण में पद्य संख्या २५ में 'विहरे' के स्थान पर 'केलें' और 'कुंजन' के स्थान पर 'कुंजी' प्रकाशित हैं। प्राचीन का पाठ अधिक उपयुक्त लगता है।

प्राचीन प्रति में अन्त के गजल देवनागरी में, और फारसी लिपि में साथ साथ छपे हैं। नवीन में वे छपे तो दोनों में हैं परंतु पुष्प - पुष्प हैं। पहले देवनागरी में तत्पश्चात् फारसी लिपि में।

इस प्रकार मुद्रित प्रतियाँ में समानता नहीं रही है। नवीन में अनेक प्रकार की भूलें हैं। तुलनात्मक दृष्टि से प्राचीन का संपादन और मुद्रण अधिक युक्तियुक्त है। मूल हस्तलेख का यथातथ्य मुद्रण।

फिर भी 'अभिलाषा माधुरी' की व्यवस्थित रूप से संपादित करने और तृतीय संस्करण प्रकाशित करने की आवश्यकता है। यह कृति तल्लिह किशोरी जी के भक्ति भाव के साथ साथ कवि स्वर्ग विचार रूप की भी साक्षी है।

इसके अतिरिक्त दो हस्तलेख कटरपुर पुस्तकालय में ऐसे मिले हैं जिनमें 'अमिलाष माधुरी' के अंश पृथक् से लिपित हैं। उनका परिचय इस प्रकार है :

(क) पुस्तक संख्या अ० ३०।८० २ । नं० ३७५

इस पुस्तक के ऊपर 'अष्टयाम ललित किशोरी जी' शीर्षक चिपका है। यह गीता के आकार की उसी प्रकार खुलने वाली १४८ पृष्ठों की पुस्तक है। इसमें दो खनारें लिपिबद्ध हुई हैं। इनमें से प्रथम 'अष्टयाम' नामक 'ललित किशोरी जी' की 'खना' है और द्वितीय कवि 'पद्माकर' की 'पद्माभरण' खना है। 'अष्टयाम' खना के पृष्ठों की संख्या ७५ है।

इसका प्रारम्भ 'श्रीगणेशाय नमः ॥' से होता है। प्रत्येक पृष्ठ पर ६ पैक्तियाँ लिखी गयी हैं। लिपि सुवाच्य, सुन्दर और शुद्ध होने के साथ साथ आधीपान्त स्क भी है। शीर्षकों के नाम लाल स्याही से लिखे गए हैं। हा शिर पर लाल स्याही से रेखाएँ खींची गयी हैं (पृ संख्या ४०८ है । अधिकतर प्रत्येक पंक्ति की प्रत्येक पैक्ति पर संख्या डाली गयी है) वन्त में इस प्रकार पुष्पिका लिखी है :

“ फ वीरासि संपूर्ण ”

खना के वन्त में हस्ताक्षर 'जगन्नाथ' के हैं ।

लिपिकाल संवत् १९५६-५७ है ।

2607

(आ) पुस्तक संख्या अ० ६।द० २। नं० १०१

इसका नाम 'ललित किशोरी जी के पद' है। यह हस्तलेख ३३ X १६ से० मी० में रजिस्टर के आकार का जिल्द में बंधा हुआ है। परन्तु हस्तलेख हितहरिवंश जी के चरित्र वर्णन से प्रारम्भ होता है। अन्त के ३१ पन्नों में ललित किशोरी जी के पद संग्रहीत हैं। जिनमें दोहे, कवित्त, सवैये और पद हैं। पन्नों की संख्या ८२ है। रचना के अन्त में ८२ के स्थान पर २२ संख्या डाली गई है। तत्पश्चात् ॥ इति श्री० ॥ लिखा है। ये पद प्रायः अमिता-लाल माधुरी में मिलते हैं।

इस हस्तलेख ब्रज अकादमी वृन्दावन में ऐसा देखने को मिला है जिसमें ललित किशोरी जी की दोनों रचनाओं के कुछ भाग संग्रहीत हैं। पुस्तक संख्या अ० ६। द० ३। नं० १२६ है। इसमें अमितालाल माधुरी के निम्नलिखित प्रकरण संग्रहीत हैं - अष्टयाम उत्कण्ठा स्तवक, वारामासी, वारासरी, द्वितीय वारासरी, युगल शृंगार, यमक चालीसी (अमितालाल माधुरी में इसका नाम यमक जैत्री दिया है) राधापदाष्टकी, माधुरी अष्टक, कृष्णष्टक, दोनों वृन्दावन शतक।

इसके साथ ही इस कलिका की कुछ लीलाएँ और प्रसंग भी इसी में संकलित हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं- हरी लीला, रंगमान लीला, अटारी लीला, रंग कुण्ड लीला, रंगदान लीला, रंग पणिघट लीला, सावित्री मेख लीला, माखन चोरी लीला, दरफाहीरी लीला, सांझी लीला का फूल बोनन, मोहन बाग लीला, सावित्री मिसन लीला, जादू लीला, पुरतानी लीला, विसासिन लीला, अंतर्यामी लीला, चीपर लीला, पाशाकेलि लीला और पाशाकेलि राजभोग लीला। इसके बाद बाठ प्रसंग और दिए हुए

हैं। इसकी कुल पद संख्या १४४ है। वृन्दावन शतक प्रकरण के अन्त में लिपि-
काल संवत् १६३२ दिया गया है। लिपिकार के हस्ताक्षर कहीं भी नहीं हैं।

अमिताभ माधुरी में प्रकरण क्रम से पद्याँ की संख्या

१- विनय शृंगार शतक - १०२

इस शीर्षक के अन्तर्गत ६ निम्न लिखित उप-

शीर्षक हैं :

- | | | | |
|--|---------|---------------|-----------------|
| १- विनय | २- डोरी | ३- उनीस नेत्र | ४- नेत्रोन्मीलन |
| ५- वृत्त्य | ६- कूला | ७- कर्ण | ८- मान और |
| ९- उत्कंठा इन सभी में कुल १०२ दोहे लिखे गये हैं। | | | |

२- वृन्दावन शतक

इसमें दो शतक हैं। पहले में कोई उपशीर्षक नहीं है। द्वितीय में "अन्तपाद ध्रुवदास" उपशीर्षक भी दिया है। इसी के अनुसार द्वितीय शतक के प्रत्येक दोहे के अन्तिम पद ध्रुवदास जी का है। पहले दोहे में उसका संकेत भी कवि ने स्पष्टतः किया है :

राधा गोविन्द पद सुमिरि सतक रचन की जास ।

तीनि चरन नव वरनि के अंत पाद ध्रुवदास ॥

दोनों शतकों में कुल २०० दोहे हैं। कवि का कवित्व सामर्थ्य दूसरे शतक में विशेष रूप से प्रकट होता है। उसने अन्तिम पद ध्रुवदास जी का जोड़कर भी अन्य दोहों के समान ही सरस और सारगर्भित दोहे लिखे हैं।

३- युगल विहार शतक - २०१

यह प्रकरण भी दो शतकों में पूर्ण हुआ है। पहले में १०० और दूसरे में १०१ दोहे हैं। मात्र और विचार दोनों दृष्टियों से यह प्रकरण 'अमिताभ माधुरी' का सर्वश्रेष्ठ भाग है। ललित किशोरी जी के साधनापरक विचारों की अभिव्यक्ति भी इस प्रकरण में पर्याप्त हुई है। इसकी पूर्ण पद्य संख्या २०१ है।

४- अष्टयाम उत्पत्ति स्तवक- ४१६

इस शिर्षक के अन्तर्गत २८ प्रकरण हैं। इनमें मिलाकर ४१६ पंक्तियाँ लिखी हैं।

५- हव्यष्टक - ८

इसमें राधाकृष्ण के वन विहार करते समय की हवि का ८ सवैया कुन्दों में वर्णन हुआ है।

६- माधुरी अष्टक - ८

राधाकृष्ण की शृंगार माधुरी का ८ सवैया में वर्णन है। प्रत्येक सवैया में यह माधुरी नैन तहाँ नित हों, नित लाय रहीं फल ही विवसों के साथ समाप्त होता है।

७- वाराखरी - ६७

दो वाराखरियाँ क्रमशः ३३, ३४ दोहों में हैं।

पहली में शृंगार और दूसरी में भक्ति के भाव हैं। वर्णों में से पहले व्यंजनों को और अन्त में स्वरों को आधार बनाया गया है।

८- चारमासी - २४

दो चारमासी हैं। पहली में १३ और दूसरी में ११ मास प्रसंग दिये हैं। दूसरी के एक एक प्रसंग में १० से १५ तक पद्य हैं।

९- विनय - १६०

इस शीर्षक के अन्तर्गत विविध रागों में १६० गेय पद लिखे हैं। यहाँ शृंगार भाव पदों में बहुत कम हैं। शान्त भाव के ^{अधिक} पद हैं।

१०- शिखा - १४१

शिखा शीर्षक के अन्तर्गत शान्त, विनय, ^{स्य} दास्य आदि भावों के पद संकलित हुए हैं।

११- विनय स्तुति - ६

जैसा शीर्षक से स्पष्ट है, राधा जी से भक्त ने ६ विभिन्न इन्द्रों में कृपा करने का विनय व्यक्त किया है।

१२- शिखा पत्रिका - ५

इसमें शिखा और जिज्ञासु के संवाद के रूप में ५ पद्य संकलित हैं। जिज्ञासु भक्ति सम्बन्धी प्रश्न करता है। शिखा उत्तर

देता है। उत्तर सही भाव की साधना के ही है।

१३- वंदना - २५

यह प्रकरण ५ वृत्तों के २५ पयों में पूर्ण हुआ है। वंदना, संकीर्तन, चैतन्य महाप्रभु पूजन, निकुंज द्वार पूजन आदि प्रकरण दिए हैं।

१४- फुटकर पद- १४०

इस प्रकरण में विविध भावों के विविध कन्वों का संकलन है। कुछ प्रकरण भी इसके अन्तर्गत लिखे हैं जैसे - राधाष्टमी, अखतीज, जन्माष्टमी और विविध समारोहों की वास्तविकता।

१५- सुकरी - १८

श्रीकृष्ण, राधा आदि और अप्रस्तुत में प्रेमर मना आदि को लेकर सुकरी लिखी हैं।

१६- यमक जंत्री- ५८

यमक उत्कर्ष के प्रयोग के साथ ५७ दोहे भक्ति और शृंगार के लिखे हैं। काव्य सौंदर्य की दृष्टि से यह प्रकरण विशेष उल्लेखनीय है।

१७- शीर्षकहीन - १५

बिना शीर्षक १४ पय और एक कूडली संग्रहित

है। १४ पंक्तियों में प्रत्येक का अन्त 'कान्ह कान्ह गुहरावति ही' से होता है।

१८ - गजल - २७

शृंगार भक्ति के २७ गजल हैं। पहले देवनागरी लिपि में और बाद में फारसी लिपि में।

इस प्रकार 'अमिताभमाधुरी' में विविध भावों और विविध कन्दों में लगभग १६४६ पद्य संग्रहीत हैं।

३- रसकलिका

रस कलिका शाह जी की सबसे विशाल रचना है। इसकी रचना उन्होंने वृन्दावन में जाकर ही की थी। इसका वर्ण्य विषय विभिन्न रासलीलाओं का वर्णन है जिसका विषय विवेचन आगे किया जाएगा। यह दो रूपों में प्राप्त हुई है- प्रकाशित - अप्रकाशित।

प्रकाशित रूप का नाम 'रस कलिका' न देकर 'लघु रस कलिका' दिया गया है।

व- लघु रस कलिका

इसकी चार भागों में विभक्त किया है, प्रथम और द्वितीय भाग का प्रकाशन ललित किशोरी जी के कुंज शाह फुन्वन लाल जी (ललित माधुरी) ने संवत् १९३५ में समरहिन्द्य यंत्रालय लखनऊ में कराया

था । इसके प्रथम और द्वितीय भाग वहीं बफर तैयार हुए थे ।

लघु रस कलिका के प्रथम भाग का केवल मुद्रित पृष्ठ 'वृन्दावन शीघ्र संस्थान' में भी प्राप्त हुआ है। सम्पूर्ण पुस्तक इसके साथ नहीं है। परन्तु उसकी एक मुद्रित प्रति श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय स्तरपुर में भी मिली है। पुस्तक संख्या अ० २४।६०२। नं० ७ है। इसमें प्रथम पृष्ठ पर कवि का परिचय और साह फुन्दन लाल जो द्वारा पुस्तक के प्रकाशन का समाचार दिया है। उसमें से उसका अन्तिम अंश यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं -

“ उन्हीं (ललित किशोरी जो) जो पुस्तक रचना करी वाकी नाम रसकलिका है। बाही में से साह फुन्दन लाल उनके लघु भ्राता ने समय समय के थोड़े थोड़े पद और कोई कोई लीला संयुक्त करि के यह पुस्तक बनाई वासी लघु रस कलिका याकी नाम रखी । ”

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि लघु रस कलिका रस कलिका का ही संक्षिप्त रूप है।

प्रथम और द्वितीय भाग उसी प्रेस में प्रकाशित हुए हैं तथा दोनों भाग 'वमिता-वमाधुरी' के साथ जिल्द में बंधे हुए हैं। दोनों का आकार २५. ५ X १७. ५ से० मी० है।

प्रथम भाग की पृष्ठ संख्या १ से २२४ है। इसमें ६७५ पद संग्रहीत हुए हैं। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है -

“ इति श्रीललितकिशोरी विरचित लघु रस कलिका
प्रथम भाग संपूर्णम् ”

द्वितीय भाग की पृष्ठ संख्या २२५ से लेकर ५६४ तक ३४० है, और इसमें ६७६ से लेकर २१२३ तक १४४८ पन्ने हैं- अन्तिम पृष्ठीका भी प्रथम भाग के समान है-

“ हतिश्री ललित किशोरी विरचित लघु रसकलिका
द्वितीय भाग समाप्तम् ”

इसकी एक हस्तलिखित प्रति भी ब्रज अकादमी वृन्दावन में मिली है। पुस्तक संख्या अ० ६।५०४ । नं० २०१ है। यह आकार में २८ X १८ से० मी० है। इसकी पत्र संख्या २३० है वे दोनों ओर लिखे हुए हैं तुलना करने पर ज्ञात हुआ है कि यह मुद्रित प्रति का ही हस्तलिखित रूप है। पाठ और सामग्री में कोई अन्तर नहीं है। लिपि का काल नहीं दिया गया है, परन्तु ये स्वाभाविक है कि यह हस्तलेख लघु रसकलिका के प्रकाशित होने से पूर्व का होगा। प्रति के अन्त में गनपति सिंह वैश्य धौलपुर के हस्ताक्षर हैं।

वा- लघु रसकलिका तृतीय भाग- पुस्तक संख्या अ० २४।५० १। नं० ३८

लघु रसकलिका का तृतीय भाग पण्डित
राम नारायण भार्गव के प्रबन्ध से संवत् १६३६ में मुद्रित कराया गया है।

इसकी एक प्रति वृन्दावन शोध संस्थान में और एक प्रति उत्तरपुर पुस्तकालय में मिली है। दोनों प्रतियाँ पृष्ठ संख्या, पत्र संख्या और आकार की दृष्टि से समान हैं। उत्तरपुर वाली प्रति लाल मसमल की जिल्द में बँधी हुई अच्छी स्थिति में है। पुस्तक का आकार २६ X १६ से०मी० है। पृष्ठ संख्या १ से १६८ है। इसमें पन्ने संख्या २१२२ से प्रारम्भ होकर २६७७ तक है। यह विशेष उल्लेखनीय है कि द्वितीय भाग के अन्तिम पन्ने की संख्या २१२३ है और तृतीय भाग का प्रथम पन्ने २१२२ क्रम संख्या वाला पन्ना है होना

चाहिए था २१२४ । यह भूल प्रकाशन की है।

३- लघु रसक लिका चतुर्थ भाग

यह मथुरा में ही दूसरे यंत्रालय में माघ शु०
३ संवत् १९३६ में छपा था । पुस्तक की ५०० प्रति प्रकाशित हुई । इसके मुद्रक
हैं लाला हर प्रसाद और मौलवी नूरुल्ला साहब । यह प्रति वृन्दावन शोध
संस्थान वृन्दावन में मिली है। इसके मुख पृष्ठ की भाषा इस प्रकार है -

लघु रस क लिका

चतुर्थ भाग

ललित किशोरी कृत

काशी समान नाम शिला

यंत्रालय में व मकान लाला

वलदेव प्रसाद साहब खजानची भावक मुहल्ला

दलक राय की लिखी ॥

स्थान

श्री मथुरा जी में ॥

लाला हर प्रसाद साहब वा

मौलवी नूरुल्ला साहब के प्रबन्ध से छपा

पहली बार ५००

मिली माघ सुदी तीज (३) सोमवार

संवत् १९३६

यह पुस्तक वाकार में २६×१७ से० मी० है।

पृष्ठ संख्या ४१३ है। पय संख्या २६७६ से ८००६ तक है। तृतीय भाग की अन्तिम पय संख्या २६७७ है इससे आगे २६७८ संख्या भूल से छूट गयी है। इस प्रकार चतुर्थ भाग का प्रारम्भ २६७६ पय संख्या से हुआ है। इसकी अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है -

“ इति श्री ललित किशोरी विरचित लघु रस कलिका
चतुर्थ भाग संपूर्णम् मिते माघ शुक्ला
३ सम्बत् १६३६ वि०

॥ हस्ताक्षर पण्डित केशव देव शर्मा ॥

तारीख ११ फरवरी सन् १८८३ ई०

है- रसकलिका एवं लघु रसकलिका के पद्याँ की संख्या में अन्तर

जैसा कि लघु रसकलिका के प्रथम भाग की भूमिका के प्रारम्भ में प्रकाशित है कि शकल कुन्दन लाल उनके लघु भ्राता ने “समय समय के थोड़े थोड़े पद और कौह - कौह लीला संयुक्त करके यह पुस्तक बनायी”।

लघु रसकलिका मूल ग्रन्थ का संचिप्त रूप है। उसके शीर्षक में आये लघु शब्द से भी यही बात स्पष्ट होती है परन्तु दोनों में अधिक पद्याँ का अन्तर नहीं है। लघु रस कलिका में कुछ ही पय संग्रहीत नहीं हुए हैं। बल्कि कुछ ही कोड़ दिये गये हैं। लघु रस कलिका में संग्रहीत पद्याँ की कुल संख्या ८००६ है जबकि रस कलिका में कुल पद्याँ की संख्या ८१८३ है। इस प्रकार अन्तर केवल १७७ पद्याँ का है।

रस कलिका २४ दलों में विभक्त है जिसका विवरण हम आगे देंगे । एक एक दल में जोक लीलाओं का चित्रण हुआ है । लघु रस कलिका में दलों का विभाजन नहीं किया गया है। स्थूल रूप से चार भागों में विभक्त कर पुस्तक तैयार हुई है। इसमें जो पद्य संग्रहीत हुए हैं उनमें रस कलिका के क्रम का भी विर्यास हुआ है। उदाहरण के लिए लघु रस कलिका के तृतीय भाग में रस कलिका के १६ वें और २० वें दल की सामग्री संग्रहीत हुई है। इसी प्रकार चतुर्थ भाग में रस कलिका के विभिन्न दलों से जो लीलाएं संग्रहीत की गई हैं उनका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है :

रस कलिका

लघु रस कलिका चतुर्थ भाग

तृतीय दल - पूर्वमगविलास माधुरी

..

..

..

..

राजपीरिया लीला

जुगलया र लीला

सोवा नौद कैलि लीला

रति विस्मरनी लीला

सैताप विचार लीला

चतुर्थदल - प्रातः वन विलास माधुरी

..

..

..

..

..

..

..

अथ पणिघट लीला

अथ नवानुराग लीला

अथ आशिक लीला

अथ रसोद्गार लीला

अथ पूर्वानुराग लीला

अथ संभ्रम वैचित्र्य लीला

अथ पणिघट दान लीला

अथ नैह प्रधान लीला

रस क लिका

पंचम दल जल कै लि माधुरी

..

..

..

..

..

..

..

..

..

..

..

लघुरस क लिका चतुर्थ भाग

अथ घटवारि लीला

अथ जल विहार लीला

अथ क्षीर सरोवर लीला

अथ वितीपात लीला

अथ जलकै लि मान लीला

अथ नौका जल विहार लीला

अथ क्षीर हरन लीला

अथ राधा कृष्ण कुण्ड लीला

अथ जल कै लि वृज्जी लीला

अथ सुप्तान्तर जल कै लि लीला

अथ लाल सिंहावनी लीला

अथ हम्पाम लीला

अष्टम दल - राज भोग माधुरी

अथ पङ्कजाई लीला

नवम दल - मध्याह्न वन विलास माधुरी

अथ माखन क्षीरी लीला

..

अथ सुनारी लीला

..

अथ सुवल वेष लीला

..

अथ क्षीर नहर लीला

..

अथ कृत्रिम कामिनी लीला

एकादश दल- रसपान सयन माधुरी

अथ जधूरी नदी लीला

द्वादश दल - उत्थापन विलास माधुरी

अथ गुटिका खेल लीला

..

अथ जुगल वैशिष्ट्य

चौदश दल- उत्तरमगविलास माधुरी

..

..

..

..

..

..

..

..

..

..

..

अथ विरह सँकिनी लीला

अथ नेह विजैनी लीला

अथ नाँक सण्ड लीला

अथ गीरी जी गिन लीला

अथ विहुर मिलीनी लीला

अथ नैनातुराग लीला

अथ मालिन लीला

अथ वनधूतिन लीला

अथ गौदा रन लीला

अथ वैश्नव लीला

अथ जीगी लीला

अथ धूम्लारिन लीला

सप्तदश दल - अमिसार माधुरी

..

..

..

..

..

..

..

..

अथ गानतान लीला

अथ कसर्मोरिन लीला

अथ रतन दला लिन लीला

अथ जादूगर विदेसी लीला

अथ कर्मद लीला

अथ शुक्ला मिसार लीला

अथ अद्वैत नट लीला

अथ जोहरिन लीला

अथ रस पुरान लिख्यते

४- रसक लिका - अप्रकाशित

“ रस क लिका ” नामक ग्रन्थ हस्त लिखित रूप

में ही प्राप्त हुआ है। इसके प्राप्ति स्थान चार हैं :

- १- ललित निरुज वृन्दावन
- २- वृन्दावन शोध संस्थान वृन्दावन
- ३- ब्रज अकादमी वृन्दावन
- ४- श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय,
क्षेत्रपुर

१- ललित निरुज वृन्दावन वाली प्रति

उपर्युक्त चारों स्थानों में से 'ललित निरुज' वाली प्रति सर्वोत्तम है। यह जिसके बड़े लाल कपड़े में बंधी हुई है। शाह जी के वंशज बड़ी सावधानी के साथ इसकी रक्षा किए हुए हैं। सर्वप्रथम शाह जी शरण जी की कृपा से उसका अध्ययन किया गया और उसी में से सम्पूर्ण सामग्री संकलित की गई। इसका विवरण इस प्रकार है :

इसके प्रथम पृष्ठ पर ग्रन्थकार का परिचय दिया हुआ है। द्वितीय पृष्ठ पर २४ उल्लो की सूची दी गई है। हस्तलेख के कितने पन्नों में कोई उल्ल लिखा गया है, उसका विवरण यहाँ है तत्पश्चात् ५ पृष्ठों में लीलाओं और प्रसंगों की पत्र संख्या क्रम से सूची दी गयी है। इसके बाद नये सिरे से पत्र संख्या १ से लेकर ३२ तक पन्नों की अकारादि क्रम से सूची बढ़ किया गया है। यहाँ लिफ्टकार ने बड़ा परिश्रम किया है। इसका लिफ्ट जैसा विशाल ग्रन्थ के समस्त पन्नों की अकारादि क्रम से परिगणित किया है। शेष ग्रन्थ ८६६ पन्नों में समाप्त हुआ है। ग्रन्थ का आकार ३५. ५ × २३. ५ से० मी० है। कागज प्राचीन होते हुए भी अच्छा और मोटा है। लिपि सुवाच्य स्पष्ट एवं

सुन्दर है। यह ग्रन्थ संवत् १६३६ में लिपिबद्ध हुआ था। इसके लिफ्टार शिव प्रसाद हैं। ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है -

“ इति श्री रसकलिका ललित किशोरी विरचित
संपूर्णम् शुभमस्तु मधुमासे गौर पद्मे विद्वीयायाम्
समाप्तम् संवत् १६३६ हस्ताक्षर शिवप्रसाद

हस्तलेख में दलों के क्रमानुसार पद्य संख्या इस प्रकार है :

दल संख्या	दलों के नाम	पद्य संख्या	पद्य संख्या
प्रथम	श्रीवृन्दावन विलास माधुरी	१-३८	३०९
द्वितीय	निर्गुण कलसान माधुरी	३९-६९	२०८
तृतीय	पूर्व मग विलास माधुरी	६९-८५	२५७
चतुर्थ	प्रातः वन विलास माधुरी	८६-१५१	७५८
पंचम	जलकैलि माधुरी	१५२-१८५	४७२
षष्ठ	शृंगार माधुरी	१८६-२१४	२३७
सप्तम	पासा कैलि माधुरी	२१४-२२९	२०४
अष्टम	राज भोग माधुरी	२३०-२३९	१४८
नवम	मध्याह्न वन विलास माधुरी	२४०-२६८	२७४
दशम	फागु माधुरी	२६९-३०९	३१६
एकादश	रसपान सयत माधुरी	३०९-३०८	८२
द्वादश	उत्थापन विलास माधुरी	३०९-३२०	१०५
त्रयोदश	हिंडीत माधुरी	३२१-३४०	२०३
चतुर्दश	पुष्प माधुरी	३४१-३५६	१३४
पंचदश	दान कैलि माधुरी	३५७-३८८	३३५

षोडश	उत्तर मग विलास माधुरी	३८६-४५८	६६२
सप्तदश	वमिसार माधुरी	४६०-५४१	६५४
अष्टादश	व्याक विलास माधुरी	५४२-५६१	२०८
उन्नीसवाँ	रास माधुरी	५६२-६४७	७४२
बीसवाँ	मान माधुरी	६४८-७८१	१३३६
इक्कीसवाँ	मधुपान माधुरी	७८२-७९४	१०१
बाईसवाँ	शृंग विलास माधुरी	७९५-८१५	१४६
तेईसवाँ	निर्गुज विहार माधुरी	८१६-८५६	२६८
चौबीसवाँ	स्वप्न विलास माधुरी	८६०-८६६	२६

८१८३

इस प्रकार पद्यों का कुल योग ८१८३ है। यह विशेष उल्लेखनीय है कि संग्रह ^{कहीं कहीं} के माव के १०, १२, १५ पद्य एक कुन्द में लिख देने के पश्चात् उन पर एक ही क्रम संख्या डाली गयी है। यदि इनकी यथार्थ संख्या की गणना की जाय तो योगिक और अधिक बढ़ जायेगा।

हस्तलेख में दलों के क्रमानुसार लीलाओं और प्रसंगों की सूची इस प्रकार है :

दल संख्या	लीलाओं के नाम	पद्य संख्या
१	वृन्दावन शोभा	२
१-	ललित निर्गुज शोभा	६
१	वरजौरी मधुपान	७

<u>पल संख्या</u>	<u>लीलाओं के नाम</u>	<u>पल संख्या</u>
१	कैलि कन्ध्रा विहार	१०
१	जल कैलि ग्रीष्म विहार	१२
१	सैभ्रम मान लीला	१२
१	यमुना कैलि वा जल कैलि भूतलन	१४
१	श्याम चरी कैलि	१८
१	जल कैलि अष्टक	२१
१	चित्र निरमान मान लीला	२२
१	तता निर्द्वज विहार	२५
१	वैशी लीला	२६
१	सुमन निर्द्वज विनोद	२८
१	काम वल्लरी निर्द्वज विहार	३२
१	फूल खेल	३४
१	फलपान	३५
१	गीष्माष्टक	३७
२	प्रथम मंगला	३६
२	द्वितीय मंगला	४१
२	तृतीय मंगला	४२
२	चतुर्थ मंगला	४३
२	पंचम मंगला	४३
२	षष्ठ मंगला	४४
२	सप्तम मंगला	४४
२	अष्टम मंगला	४७
२	नवम मंगला	४८

पद्य संख्या	लीलाओं के नाम	पद्य संख्या
२	दशम मंगला	५१
२	एकादश मंगला	५१
२	द्वादश मंगला	५१
२	त्रयोदश मंगला	५२
२	ज्वालामान लीला चतुर्दश मंगला	५४
२	जुगल विहार लीला पंच- दश मंगला	५६
२	फट फुटकर वन निर्कुंज कलसमान के	५७
२	प्रथम लीला	६२
२	द्वितीय लीला	६३
३	विपरीति ज्वाहु लीला	६४
३	राजर्षीरिया लीला	७०
३	जुगल्यार लीला	७४
३	सीमा नंदिनी लीला	७५
३	रति विस्मयनी लीला	७८
३	सीताम विहार लीला	७९
३	फुटकर फट	८१
४	फटल लीला	८६
४	नवानुराग लीला	८६
४	वाशिष्ठ लीला	८९
४	रसोद्गार लीला	१००
४	प्रीतम रसोद्गार लीला	१०२

पक्ष संख्या	लीलाओं के नाम	पक्ष संख्या
४	पूनादुराग लीला	१०६
४	संभ्रम वैचित्र्य लीला	११३
४	फण्ट वान लीला	११५
४	शंक विहार लीला	१२१
४	हिंढीस सज्जा लीला	१२२
४	मधुपान व्याहृता लीला	१२३
४	वैद लीला	१२४
४	नेह प्रधान लीला	१२८
४	दूती विहार लीला	१३०
४	मनीमई चरित्र लीला	१३३
४	फुटकर पक्ष	१३७
५	घटवा स्ति लीला	१५२
५	जल विहार लीला	१५८
५	हीर सरोवर लीला	१६०
५	धारा सता निकुंज लीला	१६३
५	वित्तीपात लीला	१६४
५	जलकैल मान लीला	१६७
५	माट निकुंज लीला	१६६
५	नीका जल विहार लीला	१७०
५	वीर हरण लीला	१७०
५	राधा कृष्ण कुंड लीला	१७४
५	जल कैल दुरजी लीला	१७६
५	स्वप्नानंतर जलकैलि लीला	१७६

<u>पक्ष संख्या</u>	<u>लीलाओं के नाम</u>	<u>पक्ष संख्या</u>
५	लाल सिखावनी लीला	१८२
५	हम्माम लीला	१८४
५	फुटकर पक्ष जल कैलि के	१८५
६	शृंगार रचना	१८६
६	शृंगार शोभा वरनन	१८६
६	युगल शृंगार वरनन	१८६
६	फुटकर पक्ष शृंगार शोभा के	१९०
६	श्री वंग शोभा	२०३
६	श्री वंग सुकुमारता	२०६
६	परिहास विलास	२१०
६	वामोद विनीद विलास	२११
६	युगल श्रुति	२१२
७	विसा तिन लीला चौपर को	२१४
७	वैतरनामी लीला चौपर को	२१६
७	चौपर लीला	२२१
७	पासा केल लीला	२२२
७	पासा केल राजगीर	२२३
७	प्रथम प्रसंग पासा कैलि का	२२४
७	द्वितीय प्रसंग पासा कैलि का	२२५
७	तृतीय प्रसंग पासा कैलि का	२२६
७	चतुर्थ प्रसंग पासा कैलि का	२२७
७	पंचम प्रसंग पासा कैलि का	२२७
७	षष्ठ प्रसंग पासा कैलि का	२२८

दल संख्या	लीलाओं के नाम	पृष्ठ संख्या
७	सप्तम प्रसंग पासा कैलि का	२२८
८	पहुनाई लीला	२३०
८	रूपामृत राज भोग	२३३
८	दुलह दुलहिन राजभोग	२३४
८	चन्द्रावली गृह राजभोग	२३६
८	परिहास राज भोग	२३७
९	माखन चौरी	२४०
९	मैना लीला	२४१
९	सुनारी लीला	२४३
९	सुवसवेश लीला	२४६
९	द्वितीय समागम लीला	२५०
९	नवीदा नितन	२५२
९	झोर नहर लीला	२५७
९	फेरु चूँज लीला	२६०
९	कृत्रिम कामिनी लीला	२६४
९	मौर कुटी लीला	२६५
१०	वैपारि लीला हौरी की	२६६
१०	हौरी लीला	२७०
१०	कटारी लीला हौरी की	२७३
१०	रंग कुण्डली लीला हौरी की	२७४
१०	रंगदान लीला हौरी की	२७५
१०	रंग फाटलीला हौरी की	२७८
१०	सावित्री वेश लीला हौरी की	२८०
१०	रंग माखन चौरी लीला हौरी की	२८२
१०	वरप हौरी लीला	२८४

दल संख्या	लीलावी के नाम	पत्र संख्या
१०	होरी के फुटकर पद	२८५
१०	वसन्तीत्सव के पद	३०१
११	ग्रीष्म रस पान सैन लीला	३०२
११	हिम रस पान सैन	३०२
११	अनवीला वीली केल	३०३
११	अधूरी नदी लीला	३०५
११	फुटकर पद	३०६
१२	जल जैत्रादि शोभा निरीक्षण	३०६
१२	रूपमूर्ति लीला	३१०
१२	फलपान	३१२
१२	गुटलासेल लीला	३१३
१२	जुगुल वैचित्र्य लीला	३१५
१२	वर्षा	३१८
१३	प्रथम प्रसंग भूतलन का	३२१
१३	द्वितीय प्रसंग भूतलन का	३२१
१३	तृतीय प्रसंग भूतलन का	३२२
१३	चतुर्थ प्रसंग भूतलन का	३२३
१३	पंचम प्रसंग भूतलन का	३२३
१३	षष्ठम प्रसंग भूतलन का	३२४
१३	सप्तम प्रसंग भूतलन का	३२५
१३	अष्टम प्रसंग भूतलन का	३२५
१३	बाहु लीला भूतलन की	३२७
१३	पुरतानी लीला भूतलन की	३३२

दल संख्या	लीलाओं के नाम	पत्र संख्या
१३	फुटकर पद भूतन के	३३४
१४	मोहन बाग लीला सांझी	३४१
१४	मालिन लीला सांझी	३४२
१४	विपरीत शृंगार सांझी	३४५
१४	सावरी मिलन लीला सांझी	३४६
१४	लीला सांझी की	३४७
१४	सांझी सिरावन लीला	३४८
१४	फुटकर पद सांझी के	३५०
१५	ग्वारिन श्रम दान लीला	३५७
१५	प्रेम दान लीला	३६०
१५	दान लीला	३६५
१५	परिहार दान लीला	३६८
१५	कलकान लीला	३७१
१५	विप्रीति दान लीला	३७५
१५	दान पीतनी लीला	३७६
१५	श्रीतन्त्रिन दान लीला	३८१
१६	विरह सैफनी लीला	३८६
१६	नेह विजनी लीला	३९०
१६	नौका खण्ड लीला	३९१
१६	गौरी जी गिन लीला	३९५
१६	गुरजन दृढीनी लीला	४१०
१६	वासक सज्जा	४११
१६	विभुर मिलनी लीला	४१४

दल संख्या	लीलाओं के नाम	पत्र संख्या
१६	जती सती लीला	४२०
१६	नैनानुराग लीला	४२२
१६	मालिन लीला	४२६
१६	अवधूतन लीला	४३०
१६	गौचारन लीला	४३७
१६	वैश्नव लीला	४४२
१६	जोगी लीला	४५०
१६	कृष्णारिन लीला	४५२
१६	किस्सा नौका लीला सह- जादो कदम	
१७	जो तिसी लीला	४६०
१७	गान तान लीला	४६६
१७	सहस्रमि रित लीला	४६८
१७	रतन अला लिन लीला	४६९
१७	जादूगर विदेशी लीला	४६४
१७	कर्मद लीला	४६७
१७	शुक्ला मिसार लीला	४६८
१७	कृष्णा मिसार चित्रानुराग लीला	५००
१७	लण्डक	५०५
१७	सलंगिनी लीला	५१२
१७	धुमद्रास लीला	५१६
१७	लक्ष्मी नट लीला	५१७

दल संख्या	लीलाओं के नाम	पत्र संख्या
१७	जौहरिन लीला	५१६
१७	रस पुरान लीला	५२५
१८	रसोत्साह लीला व्यास की	५३२
१८	चित्रसभा व्यास विलास	५४७
१८	हेमांगी गृह व्यास विलास	५५०
१८	काम कुंदला गृह व्यास विलास	५५१
१८	↑ वरणा व्यास विलास ↓	५५६
१८	शीश महल व्यास विलास	५५५
१८	निर्लिप्त व्यास विलास	५५७
१९	रासोल्लास पैवाध्याई की	
	प्रथम प्रकरण	५६२
१९	राधिका पदाष्टकी	५६७
१९	वैशिनट लीला	५६६
१९	शृंगार विलास लीला	५७३
१९	गुप्त प्रगट लीला रास पैवाध्यायई	
	की द्वितीय प्रकरण जुगुल	२०
	किशोर गुप्त लीला	
१९	वैनी शूधन वरनन	५७६
१९	जुगुल किशोर प्रगट लीला	५८२
१९	कृशनानुकरण लीला	५८२
१९	महा रास पैवाध्यायई की द्वितीय	
	प्रकरण	५८८
१९	जल विहार वा मद्युपानरास	
	पैवाध्यायई की चतुर्थ प्रकरण	
	जल विहार वरनन	५९६

पत्र संख्या	लीलाओं के नाम	पत्र संख्या
१६	मधुपान प्रसंग वरन	६०४
१६	मधुपान	६०७
१६	पहेली	६०६
१६	निकुंज विहार रास पैवाच्यार्च की प्रथम प्रकरण	
१६	जुगुल लाल लीला रास	६१६
१६	साहन साह लीला रास	६१८
१६	सितार लीला रास	६२१
१६	वैशी लीला	६२३
१६	फुटकर पद रास के	६२५
१६	वाखमीचिनी लीला	६४०
१६	प्रमाद वैचित्री लीला	६४३
२०	लली ललिता मान लीला	६४८
२०	चित्र निरमान मान लीला	६५३
२०	युद्धल मान लीला	६५६
२०	माननी रमण लीला	६६०
२०	मालिन मान लीला	६६४
२०	गुरुमान लीला	६६६
२०	मैनामान लीला	६७८
२०	चित्रमान लीला	६८३
२०	रसिक वांछित मान लीला	६८८
२०	लली वांछित मान लीला	६९२

<u>दल संख्या</u>	<u>लीलाओं के नाम</u>	<u>पत्र संख्या</u>
२०	चंपानगर मान लीला	६६७
२०	विप्रीत मान लीला	७०२
२०	मौक्त मान लीला	७०५
२०	अधांगी मान लीला	७०६
२०	सीसमहल मान लीला	७१३
२०	पैलितानी दूध मान लीला	७१५
२०	रज रसाल कलईतरिता लीला	७३१
२०	सरज कलईतरिता लीला	७३७
२०	असहन कलईतरिता लीला	७४३
२०	मान लूताप लीला	७५०
२०	वि विद्र मान लीला	७५६
२०	जमुनामान लीला	७५८
२०	नंद्रमान लीला	७६१
२०	देखत मुल्ली मान लीला	७६३
२०	विनोद मान लीला	७६८
२०	कलनी दूत मान लीला	७७१
२०	नैन के लिमान लीला	७७३
२०	मान के फुटकर पद	७७७
२१	मधुपान लीला	७८२
२१	मदन मधुपान लीला	७८४
२१	मधु विसाहन लीला	७८५
२१	वरजौरी मधुपान लीला	७८०

<u>दल संख्या</u>	<u>लीलाओं के नाम</u>	<u>पृष्ठ संख्या</u>
२२	ल्यारिया ब्रास लीला	७६५
२२	नींद परिक्षा लीला	७६७
२२	बघ कैली लीला	७६८
२२	परिहास विलास लीला	७६९
२२	पर्यंक भोजन विलास लीला	८००
२२	जलसान के पद	८०२
२२	निर्गुण चाह के पद	८०२
२२	निर्गुण गमन के पद	८०३
२२	पर्यंक विलास के पद	८०४
२२	परकाई कैल	८१२
२३	सुरति सुमिरनी निर्गुण विहार	८१६
२३	रति रंग तरंगिनी निर्गुण विहार	८२३
२४	प्रथम प्रसंग स्वप्न विलास का	८६०
२४	द्वितीय प्रसंग स्वप्न विलास का	८६१
२४	तृतीय प्रसंग स्वप्न विलास का	८६२
२४	चतुर्थ प्रसंग स्वप्न विलास का	८६३
२४	पंचम प्रसंग स्वप्न विलास का	८६३
२४	षष्ठ प्रसंग स्वप्न विलास का	८६४
२४	सप्तम प्रसंग स्वप्न विलास का	८६५-८६६

(२) वृन्दावन शीघ्र संस्थान वृन्दावन वाली प्रति

रस कलिका का यह अस्तित्व बिल्कुल में रूपा हुआ है। पुस्तक का आकार २० × २२ से० मी० है। पत्र संख्या ४०५ है। लिपि के अक्षर सुवाच्य और सुन्दर हैं। इसमें रसकलिका के प्रारम्भ के २० पद संग्रहित हुए हैं। अन्त के चार पदों को छोड़ दिया गया है। यह प्रति शीघ्र-संस्थान की पुस्तिका कृष्ण गोस्वामी से प्राप्त हुई है, अर्थात् शीघ्र संस्थान की रसकलिका के दाता है। पुस्तिका कृष्ण गोस्वामी राधारमण मन्दिर वृन्दावन ।

(३) राज दत्तादमी वृन्दावन वाली प्रतियाँ

शाह जी का सम्पूर्ण साहित्य जी आज राज दत्तादमी में विद्यमान है वह श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय अंतरपुर से प्राप्त हुआ है।

इसमें रसकलिका से सम्बन्धित ५ अस्तित्वित प्रतियाँ हैं, उनमें से प्रति रस कलिका की है। शेष प्रतियाँ में उसी के विभिन्न दो लिपिपद्धि हुए हैं। उनका विवरण निम्न प्रकार है -

१- रसकलिका की यह प्रति ५ सप्टेंटी में विद्यमान है। प्रत्येक सप्टेंटी का आकार ३० × १६ से० मी० है जिनकी पुस्तक संख्या इस प्रकार है :

- अ- अ० ५ । प० ५ । नं० १६८
- ब- अ० ५ । प० २१ । नं० ८८
- स- अ० ५ । प० ११ । नं० २९
- प- अ० ५ । प० ४ । नं० १६६
- स- अ० ५ । प० ४ । नं० २००

सण्डों में बल, पत्र और पन्नों की संख्या इस

प्रकार है -

सण्ड संख्या	संग्रहीत बलों की संख्या	पत्र संख्या	पन् संख्या
१	१ से ५ तक	१७५	२०१६
२	६ - १२	३४६	१४५६
३	१३ - १६	१५०	१२८५
४	१७-१६	१६५	१७००
५	२०-२४	२००	१८४६

इसकी अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है :

इति रस कल्पा ललित किशोरी विरचित संपूर्णम्
शुभमस्तु मधुमासे गौर पद्मी द्वितीयायां समाप्तम्
संवत् १६३६ सस्ताचार गयावस्त ।

२- पुस्तक संख्या अ० ५।४०२।नं० ८३

जिसमें रस कल्पा के प्रारम्भ के तीन बल संग्रहीत हुए हैं। इसकी पन्नों की संख्या ८७ है जिनमें कुल मिलाकर ११५३ पन् लिखे हैं। पुस्तक अत्यंत मसमल की जिल्द में बंधी हुई ३२×१६ से० मी० के आकार में है।

३- पुस्तक संख्या अ० ५।४०२। नं० ८५

जिसमें रस कल्पा के ११, १३, १४, १५ और १६ पांच बल संग्रहीत हैं। पत्र संख्या ६१ और पन् संख्या १३७१ हैं। पुस्तक का

आकार २३ × २१ से० मी० है। इसमें १४ वें, १९ वें और १६ वें इन तीन वर्तुषों का लिपि काल संवत् १६५८ दिया हुआ है।

४- पुस्तक संख्या - अ० ६। द० १। नं० ३३

आकार ३१ × २०. ५ से० मी० है। इसमें २८ पृष्ठों में विचित्र मान लीला लिपि बद्ध हुई है जो रसकलिका के २० वें वल में संग्रहीत है। लिपि अच्छी नहीं है। पुस्तक जीर्ण शीर्ण अवस्था में है।

५- पुस्तक संख्या अ० ६। द० १। नं० ५३

यह गाठ पृष्ठों की २८ × २१ से० मी० के आकार की पुस्तक है। पुस्तक का नाम "अथ श्री मान लीला" दिया है। यही उसका विषय है। प्रति के अन्त में हारी के कुछ पद्य संग्रहीत हुए हैं।

६- पुस्तक संख्या अ० ६। द० ३। नं० १२६

इसके ऊपर शीर्षक दिया है "ज्वाला दिक् मान लीला"। यह १८७ पृष्ठों की २३ × १७ से० मी० के आकार की सुवाच्य अक्षरों में लिखी हुई प्रति है। इसमें सर्वप्रथम ज्वालामान लीला लिखी गयी है तत्पश्चात् ४७ लीलाएँ और हैं जो रसकलिका के विभिन्न वर्तुषों से ली गयी हैं। लिपिकार ने छाशिए पर रस कलिका के उन वर्तुषों का कृत किया है जहाँ से वह लीला ली गई है।

(४) श्री राजर्षि विश्वनाथ पुस्तकालय छतरपुर वाली प्रतियाँ

रसक लिफा से सम्बद्ध ६ हस्त लिखित प्रतियाँ
छतरपुर पुस्तकालय में देखी की मिली हैं। उनका विवरण इस प्रकार है :

(अ) पुस्तक संख्या अ० ३०।५०२। नं० ४००

यह रजिस्टर के आकार में ३२ × २१ से०मी० की पुस्तक है। इसकी अन्तर्गत रसक लिफा के अन्तिम १७ से लेकर २४ तक ८ दल ज्यों के त्यों संग्रहीत हैं। लिपि सुन्दर एवं सुवाच्य है। सीलानों के शीर्षक, रागों के नाम एवं वा शिष्ट लाल स्याही से दिए हैं। इस पुस्तक में लिफ्टार बदलते रहे हैं। लिपि का काल स० १६५८ दिया है। दलों के क्रम से पत्र संख्या और पय संख्या इस प्रकार है-

<u>दल संख्या</u>	<u>पत्र संख्या</u>	<u>पय संख्या</u>
१७	५६	७७३
१८	१४	२०१
१९	३५	७२६
२०	६०	१२६३
२१	७	११३
२२	८	१५६
२३	१८	२६८
२४	४६	२६

वा- पुस्तक संख्या अ० ६।५०१। नं० ३५

पुस्तक का बाफार पुस्तक संख्या व ६ समान

रजिस्टर के आकार का है। इसमें रसकलिका के ४ वल संग्रहीत हुए हैं। ये सब अविकल हैं। लिपि अत्यन्त स्पष्ट, सुवाच्य और सुन्दर है। शीर्षक, रागों के नाम और हाशिए ताल स्याही से दिए गए हैं। हस्तलेख में पत्र संख्या नहीं दी है। पत्र संख्या गणना करके दी गई है।

वलों के अनुसार पत्रों का विवरण इस प्रकार

है :

<u>वल संख्या</u>	<u>पत्र संख्या</u>	<u>पत्र संख्या</u>
५	३०	४७२
६	२६	१५०
१०	२२	३०८
२२	१४	१६४

छ- पुस्तक संख्या अ० ३०। व० २। नं० ३८१

हस्तलेख पर 'देखत भुलनी मान लीला' शीर्षक चिह्नित हुआ है। यह हस्तलेख केवल ७ पृष्ठों का है जो काफी साफ़ में लिखे गए हैं। न लिपि का कालविया है न लिपिकार का नाम। लिपि के अक्षर सुन्दर एवं स्पष्ट हैं। इसमें केवल एक लीला 'देखत भुलनी मान लीला' लिखित है। जो रस कलिका के २० वें वल में विद्यमान है।

छं- पुस्तक संख्या अ० ३०। व० २। नं० ३८२

.. .. । नं० ३८३

.. .. । नं० ३८४

उपर्युक्त तीनों पुस्तकें गत्तेदार काफी साफ़

में २१ × १७ से० मी० के आकार में लिपिबद्ध हुए हैं। तीनों प्रतियों की पृष्ठ संख्या भिन्न भिन्न है। पुस्तक संख्या ६२ में ३७, ६३ में ५३ और ३६३ में ४२ पृष्ठ हैं। अन्तिम प्रति में पृष्ठ संख्या लिफ्टार ने नहीं दी है। गणना करके दीक्षित की गयी है। पुस्तक संख्या ६२ और ६३ में लिपि समान है। ३६३ की लिपि उपर्युक्त दोनों प्रतियों से भिन्न है। लिफ्टार के हस्ताक्षर तथा लिपि का काल किसी भी प्रति में दीक्षित नहीं है। इन तीनों प्रतियों में शिशमस्त सीला, चित्रमान सीला और रज रसात सीला समान क्रम से संग्रहीत हुई हैं। ये तीनों सीलारे रस कलिका के २० वें दल से उद्धृत की गई हैं।

(उ) पुस्तक संख्या अ० ३०। द० २। नं० ३६४

यह हस्तलेख भी पुस्तक संख्या ए और ६ के समान काफी साहज में लिपिबद्ध है। हस्तलेख का विषय श्री मुलनी मान सीला, युगल विहार शतक और बलिनी वृत्त मान सीला है परन्तु हस्तलेख का अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसकी अन्तर्गत बलिनी वृत्त मान सीला के स्थान पर विनय शृंगार शतक संग्रहीत है। प्रथम शीर्षक के साथ साथ पृष्ठ संख्या नहीं दी गयी है। गणना करने पर यह सीला १६ पृष्ठों में लिखी गई है। यह रस-कलिका के २० वें दल से संग्रहीत है।

तत्पश्चात् युगल विहार शतक १६ पृष्ठों में और विनय शृंगार शतक १६ पृष्ठों में समाप्त हुए हैं। ये दोनों "अभिलाष माधुरी" के महत्त्वपूर्ण प्रकरण हैं।

उपर्युक्त तीनों शीर्षकों की लिपि एक दूसरे से भिन्न है। लिपि के स्वरूप और लिफ्टार के हस्ताक्षर कहीं भी नहीं मिले हैं।

(अन) पुस्तक संख्या अ० ३०।४०१। नं० २५२

हस्तलेख पर " वाशिक लीला " शीर्षक चिपका हुआ है, परन्तु इसके अन्तर्गत अन्य लीलाओं के शीर्षक और उनके पय भी संग्रहीत हुए हैं। सम्पूर्ण लीला कोई भी नहीं है। पुस्तक का आकार २६ X १७ से० मी० है पृष्ठ संख्या ५६ है। इसके पय अधिकतर उर्दू, फारसी के हैं। लिपि सुवाच्य और सुन्दर है। संभवतः संग्रहकार का यह आशय रहा है कि वह ललित किशोरी जी के उर्दू, फारसी के पयों को एक स्थान पर संग्रहीत करें। उनकी शैली उर्दू की वाशिकाना है। इसीलिए संग्रहकार ने संग्रह का ही नाम " वाशिक लीला " रख दिया है। १-३७ पृष्ठ तक फारसी के पयों का हिन्दी अर्थ भी पंक्तिवार के नीचे तथा कहीं-कहीं शब्दों का अर्थ शब्दों के नीचे लाल स्याही से और ३८ से ५६ पृष्ठ तक काली स्याही से लिख दिया गया है। लिपि का समय और लिपिकार का नाम कहीं नहीं दिया गया है।

नोट: विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में पयों की संख्या यथास्थान एकित हुई है। इनमें लिपिकारों से पयों की संख्या डालने में अनपत्र भूलें हुई हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हमारी संख्या में भी थोड़ा बहुत अन्तर आ जाय।

ललित किशोरी जी के वंशजों के पास एक लिखा एवं अभिलाषमाधुरी इन दो रचनाओं के हस्तलेख अत्यन्त सुरक्षित अवस्था में रखे हुए हैं। अभिलाषमाधुरी उन्होंने ही छपाई थी। अतः उसके मुद्रित और हस्तलिखित दोनों रूप उनके पास हैं। एक लिखा चारों सप्टों में छद्म उधर छपी थी। उसका पूर्ण परिचय दे दिया गया है। शाह जी के प्रपौत्र श्री कृष्ण शरण जी का कहना है, कि कवि की समस्त रचनाएँ इन दो ग्रंथों में संग्रहीत हैं। उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह परीक्षा

करके भी देख लिया गया है। जो भी छींटे बड़े हस्तलिख मिले हैं वे या तो रस कल्पा के अंश हैं या अमिताभ माधुरी के ।

५- रसकल्पा का सामान्य परिचय

रसकल्पा २४/माधुरी में ^{दलों में विभक्त है। प्रत्येक दल का नामकरण किया गया} विभक्त है और प्रत्येक माधुरी में अनेक लीलाओं का वर्णन हुआ है। कल्पा का विभाजन दलों में ही यह रूपक योजना बड़ी सरल है।

वर्णन पद्यबद्ध ही है। पद्यों में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। अधिक संख्या दीहा और भय पद्यों की है। अन्य छन्द रागों में घटित करके लिखे गये हैं। कवित्त, सवैया जो ब्रज भाषा के प्राचीन परंपरा के छन्द हैं। उन्हें भी रागों में संघटित कर लिया गया है। लोक जीवन के अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यह विशेष उल्लेखनीय है कि 'रसिया' राग का कहीं प्रयोग नहीं हुआ ।

वास्तव में 'रस कल्पा' उन पद्यों का संग्रह है जो 'ललित निरुज' (शाह जी का मन्दिर) में लीला चलते समय गाये जाते थे । शाह जी का कृतित्व इस दृष्टि से अधिक महनीय और रचनात्मक हो गया है कि उन्होंने सब कुछ संप्रयोजन लिखा है और जो कुछ लिखा है उसका अपनी जीर्णों के सामने अभिनय करा कर देख लिया । इसे वह भगवती राधा और रसावतार श्रीकृष्ण की सेवा ही समझते थे । लीला गायन में 'रसिया' का प्रयोग करने की परम्परा अभी तक ब्रज में नहीं बायी है। इसलिए शाह जी ने भी रसिया राग की रसकल्पा में कहीं भी नहीं अपनाया है। वस्तु ।

पद्यों के अतिरिक्त गद्य का भी जहाँ तहाँ प्रयोग

हुआ है। गण प्रयोग के स्थल प्रायः दो हैं। एक तो कहीं कहीं पदार्थ की स्पष्ट करने के लिए गण का सहारा लिया गया है। यह स्पष्टीकरण दो स्थलों पर प्रायः अपेक्षित हुआ है। एक तो संस्कृत के पद जहाँ शाह जी ने उद्धृत किये हैं उनका अर्थ भी स्पष्ट किया है। यह स्पष्टीकरण सही बीसी कीर ब्रजभाषा के मिलि जुले रूप में हुआ है।

१- श्रीडासरः कनक फेज कुडमलाय स्वर्नद पूर्ण रस

करफारीः फलाय ।

तस्मै नमो भुवन मोहन मोहनाय श्री राधिके तव

नवस्तन मंडलाय ।

हे श्री राधिके तव नव स्तन मंडलाय नमः अस्तु ।

हे श्री राधिके चरणारविन्द को नमस्कार करि के तिहारे

नव स्तन मंडलहू को नमस्कार कहैं हूँ ।

कथं भूताय नव नव स्तन मंडलाय श्रीडासरः कनक फेज

कुडमलाय ।

कैसे हैं नव स्तन मंडल बाफे श्रीडा रूपी तडाग में

सोने के कमल की कली है

च पुनः स्वर्नद रस करफलूम के फल ही हैं मानी ।

पुनः भुवन मोहन मोहनाय भुवन मोहन जी श्याम सुंदरताहू

के मोहिनि वारे हैं ।

एताहूँ तस्मै नव स्तन मंडलाय नमः अस्तु कैसे जे हैं

तिहारे नव स्तन मंडल तिन को चारम्बार नमन है ॥

- रस कलिका - वस १७।१६५

कहीं उन्होंने अपनी ही पर्यायों में आये शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है। यह भी मिली जुली भाषा में है :

फहु चुबन सार सुधिलिया ।

कहु केसर ब्यारी लिलिया ॥ १

इसमें 'चुबनसार' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं : 'चुबनसार लता का नाम है। उसकी डारी डारी प्रति दो दो फूल इस प्रकार फूलें हैं कि दोऊ फूलन के मुख आसुहें- सासुहें परस्पर मिले हुए होय हैं। मानों परस्पर मुख चुबन कर रहे हैं।''

गण प्रयोग का द्वितीय स्थल वह है जहाँ 'रास मीडली के पात्र ही आपस में संवाद गण में बीजते हैं। यह बहुत कम स्थलों पर मिलता है। एक उद्धरण इस प्रकार है। राधा जी और सखियाँ आपस में बातचीत कर रही हैं :

* वारतिक - अबी सखिला जी है, सखिला जी । अबी कपील ती सुधा मुख कैसे हैं । भूली जी भूली, प्रिया- ये ती कोकिल पैनी हैं। होय न होय , ये सखन- नैनी हैं । अब जानि लई । बस्य जानि लई । वीस बिस जानि लई ॥

सखी- ती बतावी । प्रिया बतावै । हाँ, हाँ, बतावी ।

प्रिया- ती बतावै है ।

सखी - अबी ती कहुँ बतावीगी हू ।

प्रिया - बतावै है, बतावै है, बतावै है ।

ती सुनी, ये वही कपटी एली लंपट है । ** २

एस प्रकार आया हुआ गण पथ की तुलना में बहुत साधारण और दुर्बल लगता है। उसका प्रयोग कवि ने प्रयत्नपूर्वक नहीं किया है। रासों में कहीं-कहीं गण का आश्रयण करने की परम्परा आज भी है और आज भी वह निसरा हुआ या काव्य का लालित्य लिए हुए नहीं होता है। भरती का मात्र रिवतता की भरने के लिए आता है। उसी प्रकार का गण शाह जी का है।

एस कलिका आकार की दृष्टि से तो महत्त्व रखता है ही। कन्दों और रागों की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण भी है। नये-पुराने, लोक जीवन के एवं काव्य परम्परा के अनेक कन्दों का इसमें प्रयोग हुआ है। कवित्त सवैया, कूँडली, दोहा, सौरठा, चीपाई, चंचरी, शिखरिणी, भूतना, लावनी, गजल आदि कन्द शाह जी ने प्रयुक्त किये हैं। रागों की संख्या भी से भी अधिक है। प्रमुखतः निम्नलिखित रागों का प्रयोग हुआ है।

सहाना, भैरवी, ईमन की मफि, देस चैती गीरी, परज, ठुमरी, सारंग, कलंगड़ा, धनासरी, समचि, बासावरी, घाटी, भैरवी, दादरा, काफ़ी, दीपवन्दी, जीगिया, ललित गीरी, कजरी, जट, विभास, भैरी, मालकीश, विलावल, पीलू, सिन्धु भैरवी, बहार, कुकब विलावल, ढोडी भफ़्ताल, जैनपुरी, टीडी, भैरवी दादरा, जंगला, टीडी कवित्त, जै जैवती, मलार, गीड़ मलार, जिला ईमन, कान्हरा, ध्रुपद, धानी, विहाग, समाच चीताला, जैजैवती चीताला, धनासिरी, चीताला सौरठा, वागसुरी कान्हरा, कडाना, सौरठा, सिमटा, पीलू, दादरा, सामंत, सारंग, धनाश्री भफ़्ताल, धमार, देस गिरनारी, जीगिया, कलंगड़ा, सिद्धर, सिन्धु काफ़ी, धानी, राग पूरबी, राग मुल्तानी, राग हमीर, कान्हरा नायकी, पूरिया, हली, कलियान, बरखे, सोहनी, फ़र्ग तितला, बरखे सिमटा, रागत्री, छत्यादि।

तुलनात्मक रूप में हन्दी की विविधता उतनी अधिक नहीं है जितनी रागी की है। रागी की इस विविधता से दो तथ्यों का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है, एक तो यह कि शाह जी का राग-रागिनियों का ज्ञान बड़ा विशाल और अनुभवपूर्ण था। दूसरा यह भी कि उन्नीसवीं शती के अन्त में घुन्दावन की गायकी में रागी का प्रचलन बाज की तुलना में अधिक वैविध्यपूर्ण था। बाज रासी में इतने रागी का निश्चितता पूर्वक प्रयोग कहाँ होता है ?

६- भाषा

सामान्यतः सभी दलों और उनकी लीलाओं में सड़ी बोली मिश्रित ब्रज भाषा को अपनाया गया है। कहीं कहीं शब्द रूप, जिनमें क्रिया पद और संज्ञापद दोनों हैं, सड़ी बोली के भी आ जाते हैं। उसका कारण यही है कि शाह जी फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने अनिष्ट फारसी के शेर लिखे हैं। गज़लों में उन्होंने उर्दू का प्रयोग किया है। सड़ी बोली में स्वतन्त्र रूप से पद्य भी रचे हैं। इस सबके फलस्वरूप उनकी ब्रज भाषा सड़ी बोली से जहाँ तहाँ मिश्रित हो गयी है। वैसे भी शाह जी का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण सहज था। वह भाषा के विषय में सजग होकर रचना करें- यह उनकी रसिकता का लक्ष्य नहीं था। लक्ष्य तो था राधाकृष्ण की शृंगार लीलाओं का चित्रण। उसके लिए जैसी भाषा समय पर उपस्थित हो गयी उसी का उन्होंने आश्रयण कर लिया। उस समय अमिश्रित शुद्ध ब्रजभाषा लिखना सत्कर्तृ स्वभाव के कवियों का ही काम था। सहज कवि जिस प्रकार की भाषा लिख सकते थे उसका स्वरूप यही था। नीचे लिखे पद्यों की भाषा हमारे कथन की पुष्टि करेगी।

॥ दोहा ॥ बात बात कहि विकल तिय, सुमिरि सुमिरि हवि श्याम ।
 समाजी थिरत न दामिनि सी भवन, बिल गहि गहि बाम ॥
 सखी - हम जानि लई सुकुमारी ।
 वह सुन्दर श्याम बिहारी ॥
 वर नंदराय कृत बेटा ।
 वह जानै चातक चेटा ॥
 धनश्याम वरन हविरासी ।
 है नंदग्राम की वासी ॥ १

दोहा की भाषा व्याकरणानुसारी ब्रज-

भाषा है। 'थिरत' क्रिया ब्रजभाषा में ही होती है। इसी प्रकार 'तिय' सुमिरि, गहि, जावि पद रूप ब्रजभाषा के ही अनुरूप हैं। परन्तु अगली पंक्तियों में 'बेटा', 'चेटा' संज्ञा रूप खड़ी बोली के अनुरूप अधिक है। अन्य शब्द भी संस्कृत के तत्सम होने के कारण खड़ी बोली के से लगते हैं। ब्रजभाषा का शुद्ध रूप तद्भव शब्दों का होता है।

ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली, उर्दू, पंजाबी, फारसी आदि भाषाओं का भी उन्होंने प्रयोग किया है। सत्रहवीं वल 'अमिसार माधुरी' में कश्मीरी लीला के अन्तर्गत पय संख्या १८६ में कश्मीरी भाषा का प्रयोग हुआ है। लीला के अन्तर्गत प्राचीन अनुष्ठान जैसे छवन, विवाह आदि के प्रसंग भी आये हैं। उनमें संस्कृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है। यह संस्कृत बहुत साधारण वीर लक्षुद भी है।

चतुर्थ अध्याय

तलित किशोरी जी की रचनाओं में दर्शन पक्ष एवं

भक्ति का स्वरूप

भक्ति सिद्धान्त- शास्त्रीय विवेचन

भक्ति साधना के भेद

मधुरा भक्ति और सखी भाव

भक्ति साधना में सखी भाव का विकास

सखी भाव का स्वरूप- श्री कृष्ण ,

श्रीराधा , नित्य विहार, प्रेम और रस

तलित किशोरी जी की भक्ति भावना और

उनकी दार्शनिक विचारधारा- दर्शन

कवि के दर्शन सम्बन्धी विचार

सखी का स्वरूप और उसका कार्य

भक्ति साधना के सम्बन्ध में कवि के सामान्य विचार

अभिलाषा , वृन्दावन, युगल विहार का स्वरूप

रति विलास नित्य है,

रास लीला

सहित किशोरी जी की रचनाओं में दर्शन पक्ष

स्व भक्ति का स्वरूप

भक्ति सिद्धान्त : शास्त्रीय विवेचन

१- भक्ति साधना के भेद

भक्ति के सामान्यतः पाँच भेद माने जाते हैं : शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार^१। इनकी मनीषज्ञानिक व्याख्या में यह कहा जा सकता है कि जीव का परमेश्वर या देवतारी प्रसन्न तत्त्व से उक्त पाँच प्रकार का ही सम्बन्ध जुड़ सकता है। ऐसा सम्बन्ध जिसमें जीव प्रेमासक्त भी हो जाय और ईश्वर का ईश्वरत्व अक्षुण्ण बना रहे। इन पाँचों स्थितियों की रक्षा भक्ति साधना की पहली आवश्यकता है। इनमें से सख्य से उत्तरीत्तर भावों में वासक्ति बढ़ती जाती है और उसी क्रम से ईश्वरत्व का ज्ञान विस्मृत होता जाता है। शान्त भाव का भक्त आराध्य की ईश्वरता प्रतिक्षण याद रखता है। वह जानी होता है। अतः उसका प्रेम ज्ञानाश्रित, सात्त्विक होता है। इसमें भक्त देवतारी प्रसन्न का लौकिक रूप कम अनुभव करता है, पारमार्थिक प्रसन्न रूप अधिक देखता है। इसके वर्णन में वासक्ति की सान्द्रता कम होती है। कृष्ण कथा में उद्धव और राम कथा में भारद्वाज इस भक्ति भेद के अच्छे उदाहरण हैं। मानस के अष्टाध्यायाष्ट में गंगा पार करने के पश्चात् श्री राम जी जय भारद्वाज के आश्रम में जाते हैं तो उन्हें पण्डवत् प्रणाम करते हैं :

१- छा० दीन दयालु गुप्त - वाष्टकाप और वल्कल सम्प्रदाय पृ० ५६४

तब प्रभु भरखाव पहिं वार ।

करत ईदवत मुनि उर सार ॥ १

श्रीराम की वफा वामन में पाकर मुनिराज
के मन में जी भावीद्वार उठते हैं वे जितने दार्शनिक हैं उतने ऐन्द्रियक नहीं ।
इसीलिए उनमें सान्द्र प्रगाढ़ता कम लगती है। भरखाव कहते हैं :

बाजु सुफल तपु तीरथ त्यागू ।

बाजु सुफल वप जोग बिरागू ॥

साम अवधि सुख अवधि न दूजी ।

तुम्हें दरस वास सब पूजी ॥

बब करि कृपा देहु बर सहू ।

पिब पद सरसिब सहज सनेहू ॥

कर्म पवन मन छादि हस्तु जब लगि जनु न तुम्हार ।

तब लगि सुहु सफीहु नहीं फिरि कीटि उपचार ॥ २

भागवत के उद्धव भी इसी कीटि के भक्त हैं ।

११ ई स्कन्ध में उनके विविध प्रश्न और भगवान् कृष्ण द्वारा उनके जो उत्तर
दिए गए हैं उनमें भक्ति का दार्शनिक पक्ष ही अधिक उद्घाटित हुआ है।

ज्ञान्त से अधिक वासक्ति कास्य भाव में
होती है। भक्त की ईश्वरत्व का मान सदा बना रहता है पर वह मनुष्यत्व में
मिलकर सीतामय अधिक ही जाता है। भक्त अपनी लज्जता, सघुता और उसी

१- रामचरित मानस - अयोध्या काण्ड १०५

२- १०७

अनुपात में भगवान् की महिम्नता , वयालुता अधिक वर्णित करता है । तुलसी
 उस वास्था के श्रेष्ठ भक्त हैं। उनकी वास्था है कि उन जैसे शठ का जी उद्धार
 हुआ है वह श्री राम के कृपालु स्वभाव के कारण है उनके गुणों के कारण नहीं :

सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहि राम कृपालु ।

उफल किर जलजान बेहि सीधिव सुमति कपि भालु ॥ ९

तुलसी ने रामकथा के सब रामपक्षीय पात्रों
 की इसी प्रकार का भक्त बनन दिया है। सध्वज, सीता, भरत, हनुमान, विभी-
 ञ्छन बाकि राम के भक्त हैं। उनका व्यक्तित्व इसमें लीन हो गया है।

इन दो भावों का आलम्बन साक्षात् भगवान्
 और आश्रय स्वयं भक्त या कवि हो सकता है। कथा के पात्र तो आश्रय होते ही
 हैं । पर अन्य तीन भावों में आलम्बन भगवान् और आश्रय कथा के पात्र होते
 हैं । भक्त या कवि की स्थिति पाठक की सी होती है। उनके लिए कथा-पात्र
 आश्रय भी आलम्बन ही होती है। यह परस्परपूर्ण अन्तर है ।

सत्य और वात्सल्य की भक्ति के क्षेत्र में
 लाने का श्रेय सूरदास की है। इनसे पहले ऐसा नहीं था । सत्य में भगवान् के
 समग्र रूप उनसे सखा का प्रेम करते हैं। भगवान् के भगवत्त्व को भूले हुए रहते हैं
 जैसे गोप पाल श्रीकृष्ण के साथ झीड़ा करते हैं। प्रेम करते हुए भी उनसे बराबरी
 करते हैं :

हेलत में की काफी मुसैया ।

हरि हारे जीति शीघ्रामा, वरस ही कत करत रिसैया ॥

०

०

वति अधिकार जनावत यातुं, जातुं अधिक तुम्हारे मर्या ॥ १

पाठक की गीषबाल और श्रीकृष्ण के सम्मिलित वार्तालाप से भाव की उपलब्धि होती है, और वह इन सबके लिए भगवद्-भावना लिए रहता है। अतः उसके लिए गीष बाल भी आलम्बन है। पाठक की श्रद्धा से मिलकर सत्य भाव सत्य मन्त्र में परिणत हो जाता है।

ऐसी ही प्रक्रिया वात्सल्य में घटित होती है। शूर के साहित्य में इसकी सफल अभिव्यक्ति हुई है। नन्द, यशोदा आदि श्री कृष्ण का भगवत्त्व भूल कर उनके सन्तान प्रेम में आनन्द मग्न रहते हैं। बाल कृष्ण के सौन्दर्य, उनकी चेष्टाओं आदि को देखकर भाव विभीरु हो जाते हैं। शूर की उर्वर कल्पना ने इस प्रसंग में सैकड़ों ऐसे चित्र बिम्बित किए हैं कि पाठक उन्हें आत्मसात् कर भाव विस्मृत हो जाता है। चूंकि उसके लिए काव्य का समस्त वातावरण दिव्यता, अलौकिकता से सुवासित रहता है। अतः उसे जो अनुभूति प्राप्त होती है वह लोक जीवन का वात्सल्य भाव न हीकर वात्सल्य मन्त्र होती है और यशोदा जी भी उसके लिए आलम्बन बन जाती है :

किलकिल कान्ह छुट्टुएनि आवत ।

मनिमय कनक नन्द की अगिन, विम्व फरिई धावत ।

कणहु निरसि हरि बापु कए की, कर सी फरन चाहत ।

किलकि ऐसत राजस है दतियां, पुनि-पुनि तिहि अवगाहस ।

कनक-भूमि पर पर- फा छाया, यह उपमा हू राजति ।

करि-करि प्रतिपद प्रति मनि बहुधा, कमल बैठकी साजति ।

पाल-दसा सुस निरसि जसीया, पुनि पुनि नव गुलाबति ।

ह्वरा तर से ठोंकि, शूर के प्रभु की दूध पियावति ॥ २

जैसे किलकटे हुए घुटनों चलते बालक श्रीकृष्ण यशोदा के बालम्बन हैं। मणियों टंका कनकमय अग्नि उद्दीप्त है। उस पर अपनी ही छाया फड़ने की दौड़ना, झुंझना और उसमें दी दति का दिखायी पड़ना, आदि उनकी चेष्टाएँ, भी उद्दीप्त हैं। आगे की दो प्रीतियों में कवि ने उत्प्रेक्षा की कल्पना कर वातावरण की महनीय अतरव सादर-संग्राह्य बना दिया है। अंतिम की प्रीति में यशोदा पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई, यह व्यक्त किया गया है। वह अपने आनन्द में भागीदार बनाने के लिए उस आनन्द-तिरेक की पवा सकने में असमर्थ होकर बार-बार नन्द बाबा को बुलाती है। सूर के लिए जो मनु है उसकी यथार्थता की भूली माँ अपने अचिर में छिपाकर उन्हें दूध पिलाने लगी। अपना वात्सल्य शिशु पर बरसाने लगी। पद के अन्त में 'सूर के मनु को' कह कर कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि वह किस भाव में मग्न होकर काव्य रचना कर रहा है। पाठक को भी मनु के प्रति अभिव्यक्त वात्सल्य ही प्राप्त होता है। अतः वह भक्ति भाव होगा, लौकिक वात्सल्य नहीं।

इसी प्रकार गोपियों, राधा आदि का जो श्रीकृष्ण के प्रति रति भाव है, वह अपने विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के साथ मिलकर अभिव्यक्त होता है तो शृंगार भक्ति रस में परिणत हो जाता है। इसे मधुरा भक्ति भी कहते हैं। रूप गोस्वामी ने इसे उज्ज्वल रस भी कहा है और उस पर पृथक् से 'उज्ज्वलनीलमणि' पुस्तक लिखी है। गीर्वाण सम्प्रदाय में यही भक्ति मान्य है।

२- मधुरा भक्ति और ससी भाव

ससी भाव मधुरा भक्ति के अन्तर्गत आता है।

उसका दूसरा भेद कान्ता भाव है जिसमें साधक या ती स्वयं की कान्ता और उपास्य की कान्त मान कर साधना करता है अथवा स्वयं प्रेमी और उपास्यप्रिय कुछ लोग इसके दूसरे प्रकार से दो भेद करते हैं :

- १- मादन भाव
- २- कान्ता भाव

मदन भाव में परमेश्वर की पत्नी मानकर इसकी साधना होती है। कान्ता भाव में पत्नीत्व का आरोप भक्त अपने ऊपर कर परमेश्वर की पति रूप में भजता है।

परम तत्त्व से प्रेम का मधुर सम्बन्ध करने की परिपक्व बहुत पुरानी है। वैदिक साहित्य में भी कुछ विद्वानों ने माधुर्य भाव के प्रेम की सत्ता कल्पित की है। इसे हम ऐसी तो नहीं कह सकते जैसी मध्यकाल में उत्तर भारत में विकसित हुई थी। परन्तु उसका बीज उस समय भी था-। यह स्वीकार करने में किसी को आपत्ति न होगी। यह स्वाभाविक भी है। प्रेम जीव मात्र की सख्त और जन्मजात वृत्ति है। वह लीलाकार्य व्यापारों में जैसे विविध प्रकार की अभिव्यक्ति प्राप्त करता है वैसे पारमार्थिक साधना में व्यक्त ही जाता है।

इसका सांगीयानि रूप पुराणों में मिलता है। श्रीमद्भागवत इसका प्रधान ग्रन्थ है। उसमें सरसता और गाम्भीर्य दोनों समान रूप से प्राचुर्य के साथ दिखायी पड़ते हैं।

१- चन्द्रबली पाण्डेय - तत्त्वबुद्धि दयमा सूफीमत पृ० ११५

२- डा० सुशीराम शर्मा- भक्ति का विकास पृ० १६३

भक्त भगवान् की कभी माँ के रूप में रक्षा
 और कभी प्रिय के रूप में वानन्वदायी मानता है। एन्द्र से युद्ध में पराजित
 होकर मरणासन्न बना वृद्ध कहता है कि जिस प्रकार फूस निकलने से पत्ती पत्ती
 अपनी माँ की देखती है, भूसे पड़े जैसे दूध के लिए गी की और सतृष्णा होकर
 देखते हैं और प्रवासी की विरहिणी अपने प्रिय पति की और जैसे लालायित
 होकर देखती है, उसी प्रकार है विष्णु, मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ^१।

श्रीकृष्ण भगवान् के साथ गोपियों का प्रेम
 कान्ता भाव का ही है और भक्ति सिद्धान्त में वह श्रेष्ठ माना गया है। श्रीमद्-
 भागवत इस स्थापना का मुख्य आधार है। भागवत की विशेषता इस पति पत्नी
 भाव की गोपी भक्ति के रूप में साकार खड़ा कर देने में है। भागवतकार ने गी-
 पियों के प्रेम का ही भाव विभीर होकर गान किया है। यह निश्चित रूप से
 वैष्णव धर्म के लिए एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रेम के इस साकार रूप से लोक में
 मानें प्रेम का सम्बन्ध केवल उदाहरण न रहकर वास्तविकता में परिणत होने
 लगा। अप्रस्तुत न रहकर प्रस्तुत होने लगा। रति भाव की पूर्ण परिणति
 श्रीमद्भागवत के रास प्रवाच्यायी प्रसंग में देखते हैं^२।

भगवान् कृष्ण ने गोपियों से कहा कि स्त्रियों
 का धर्म है कि वे अपने पति, पुत्र और बन्धु पान्धवों की आज्ञा का ही पालन
 करें, यही उनका धर्म है। इसके उत्तर में गोपियों ने कहा कि यह तो ठीक है

१- अज्ञातपद्मा एव मातृरवगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।

प्रियं प्रियं व्युजितं विजण्णा मांऽरविन्दाक्षद्विषातित्वाम् ॥

- श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६। अ११। श्लोक २६

२- डा० शरण सिंहारी गोस्वामी- कृष्ण भक्ति काव्य में सही भाव पृ० ७०

परन्तु बीवी (उनके अन्तर्गत स्त्रियाँ) के प्रिय तो आप ही हैं । बाकी साथ रात बिताना अधर्म नहीं है।^१

भागवत से भी पहले दक्षिण के आलवार भक्तों की भक्ति साधना माधुर्य भाव की थी । उनमें एक स्त्री भक्त उवाल कहती है कि --- ' अब मैं पूर्ण जीवन की प्राप्ति हुई बीर स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी की अपा पति नहीं बना सकती । '^२

इस प्रकार अवतारवाद के अन्तर्गत भगवान् की सगुण रूप में भक्ति करने वाले भक्तों में माधुर्य भाव की प्रचुरता मध्यकाल में विकसित हुई थी । विद्वानों ने राम भक्ति में भी माधुर्य तत्त्व की अवस्थिति सीज निकाली है। यद्यपि उसका पूर्ण विकसित रूप कृष्ण भक्ति में ही मिलता है।

सगुण के समान निर्गुण भक्ति धारा में भी माधुर्य भाव मिलता है। यह भावना बीर शैली दोनों रूपों में ही है । कबीर की वाणियाँ भी शृंगार भाव के अनिर्गुण दर्शन होते हैं। उनमें कान्ता भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। सूफियों की भी भक्ति भक्त प्रेमाविष्ट होकर सर्वत्र पति परमेश्वर के ही दर्शन करता है :

मैं बबला फिड फिड करूँ, निर्गुन मेरा पीव ।

सुन सनेही राम दिन, देखूँ बीर न जीव ॥ ३

१- यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरग स्त्रीणां स्वधर्म एति धर्मविदास्वयीवतम् ।

वस्तुधर्मवदुपनिशये स्वयीशि प्रेष्ठी भवतिस्तनुपुत्राकिल वन्द्युरात्मा ॥

- श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०। २६। ३२

२- पी० रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १०६

३- सत्य कबीर की साखी पृ० २७

रूप और पद में कबीरदास जी ने स्पष्टतः स्वयं की पत्नी और परमेश्वर की पति मान कर प्रिय मिलन, उसके साथ सुरति कैलि, प्रेम की तहफान बादि भावों की मुग्ध हीकर गाया है। इसे हम प्रेम की अनन्यता का अप्रस्तुत रूप ही कह सकते हैं, क्योंकि दार्शनिक स्तर पर कबीर का प्रिय निर्गुण निराकार है। कबीरदास कहते हैं :

तलफे बिन बालम मीर जिया ।

दिन नहि चैन रात नहि निदिया, तलफ तलफ के मीर किया ।

तन मन मीर रहैत बस डोलै, सुन सेज पर जनम दिया ॥

नैन थकित भये पन्थ न सुभै, साँझ बेदरही सुधन लिया ।

कहत कबीर सुनो भाई साधी, हरो पीर दुख जीर किया ॥ १

मीरा स्वयं स्त्री थी। उनकी भक्ति भावना में कान्ताभाव बड़े सहज और मार्मिक रूप में व्यक्त हुआ है। डा० सजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी भक्ति भावना के विषय में लिखा है कि :

“ माधुर्य भाव के अन्यान्य भक्त कवियोंकी भाँति मीरा का प्रेम निवेदन और विरह व्याकुलता अभिमानाश्रित और अर्थांतरित नहीं है, बल्कि सहज और साक्षात् सम्बन्धित है। इसीलिए इन पदों में जिस प्रेणी की अनुभूति प्राप्ति होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।”^२

भक्ति साधना में माधुर्य भाव की प्रचुरता विशेष रूप से मध्यकाल में बढ़ी। इसकी ही कारण अनुपमि कह जा सकते हैं।

१- कबीर वचनावली पृ० २१३, १०६

२- द्विवेदी साहित्य पृ० १६५

एक ती अवतारी भगवद् रूप की सीलाओं पर लोक-संस्कृति का प्रभाव और दूसरा हस्ताम धर्मानुयायियों की प्रेम प्रधान सूफी साधना । सूरदास प्रभृति कृष्ण भक्तों में लोक संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

वह शृंगार भाव कैवलि रिक्त अन्य वात्सल्य, सख्य आदि भक्तियों में भी व्याप्त है। निर्गुण भक्तों में सूफियों के प्रभाव की बात प्रायः सभी ने स्वीकार की है। वस्तु स्थिति तो यह है कि भक्ति साधना का मूलधार प्रेम भावना और समर्पण का संकल्प रहता है। वह माधुर्य भाव में जितना सक्षम सान्द्र अभिव्यक्त होता है उतना अन्य भावों में नहीं ।

३- भक्ति साधना में सभी भाव का विकास

भक्ति साधना में सभी तत्त्व गोपी तत्त्व में से विकसित हुआ है। प्राचीन पुराणों, भागवत आदि ग्रन्थों में गोपियों का ही श्रीकृष्ण के ब्रज जीवन की सत्त्वरी के रूप में वर्णन मिलता है। यह ऐतिहासिक और सामान्य मानवीय दृष्टि से भी तर्कसंगत एवं युक्ति युक्त है। श्रीकृष्ण का किशोरावस्था तक का जीवन ब्रजवासियों में व्यतीत हुआ था । उसमें गोप-गोपियों के साथ गोचारण, वनविहार, यमुना के पुलिनों, एवं कक्षारों में प्रमण आदि उन्होंने किया था । यही भक्तों की प्रेम साधना का आलम्बन बन गया है। पुराणों में इसी का आधिदैविक रूप में चित्रण किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण के परिस्तर के रूप में गोप और गोपियाँ वर्णन के विषय को है। पद्म पुराण, ब्रह्म वैवर्तपुराण पृष्ठद वामन पुराण एवं स्कन्द पुराण में इस प्रकार के वर्णन विस्तार से मिलते हैं। इनमें गोपियों की धेड़ की ऋचाओं का अथवा छणि-मुनियों का अवतार

१- गोप्यस्तु श्रुतयी शेषाः , ऋणिषा गोपान्यका ।

देवकन्याश्चराजेन्द्र । न मानुष्यः कथंचन ।।

- पद्मपुराण, पाताल खण्ड ७३।३२

घटाया गया है। भागवत पुराण में ये देवगिनाओं के अवतार हैं^१

भागवत में किसी भी गोपी का नाम नहीं दिया गया है। राधा का नाम भी नहीं है। बाद में गोपियों के अनेक नाम दिये जाने लगे। उनमें प्रधान, गौण भाव भी उत्पन्न हुआ और राधा की सर्वोपरि प्रधानता मिली। पहले वह अन्य गोपियों के समान श्रीकृष्ण की उपासिका थीं। बाद में उपास्य की टि में आ गयीं। इसका कारण एक तो यह है कि पहले से ही पुराणों में परमेश्वर की युगल रूप में कल्पना मिलती है और इनके शृंगारिक कार्य व्यापार भी वर्णित हैं। दूसरे भगवान् कृष्ण का सबसे अधिक प्रेमीपास्य के रूप में विकास है। उपासना क्षेत्र में प्रेम के नाना रूपों की कल्पना की गयी। उनमें उपास्य की टि में भी स्त्री-पुरुष का द्वन्द्व कल्पित हुआ। इसके बिना प्रेम की व्याख्या सांगोपांग नहीं हो सकती। डा० शरण बिहारी गीस्वामी का इस सन्दर्भ में निम्नलिखित विचार उल्लेखनीय है :

“ भागवत के पञ्चवर्ती युग में गोपिकाओं में राधा की असाधारण महत्ता प्राप्त होती चली गई और क्रमशः वे गोपियों के साथ की उपासक की टि से निकल कर उपास्य के आसन पर समासीन होती दिखाई देती हैं। श्री राधा के स्वरूप विकास के इस महत्व का कारण राधाकृष्ण के रूप में उस भारतीय युगल तत्त्व की प्रतिष्ठा थी जो भारतीय धर्म में स्वाभाविक और सांसारिक है। पुरुष-^{प्रकृत}प्रकृति, शिव शक्ति, शक्ति-शक्तिमान, विष्णु-लक्ष्मी के समान ही राधाकृष्ण भी अद्वय युगलभाव की प्राप्ति हुए। ”

१- वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः ।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ।।

- श्रीमद्भागवत १०।१।२३

२- कृष्ण भक्ति-काव्य में सखी भाव पृ० १४३

राधाकृष्ण के युगल रूप में अन्य युगलों से यह अन्तर था कि अन्य युगल सृष्टि के मूल तत्त्व के रूप में श्रद्धा का विषय थे । वे दर्शन के विषय थे । राधाकृष्ण प्रेमीपासना के विषय बने । इससे लोक जीवन में झनका प्रसार-प्रसार बढ़ा । उपासना के विविध रूप विकसित हुए और लोक जीवन के अनेक कार्य व्यापार श्रीकृष्ण के लीला लोक से जुड़ते चले गये । इसी परिवृद्धि में नारी का सन्निवेश हुआ । इसका प्राधान्य भी हो गया । गौपियों की तुलना में राधा जी के प्राधान्य का यही मनोवैज्ञानिक कारण कहा जा सकता है।

श्रीकृष्ण तत्त्व की प्रेमीपासना में राधा-तत्त्व का महत्त्व जैसे जैसे बढ़ा वैसे वैसे गौपी तत्त्व का माहात्म्य क्षीण होता गया । गौपियों का सम्बन्ध ब्रज लोक तक ही श्रीकृष्ण से समान रूप में माना गया । ब्रज में तो गौप- गौपी, गौ, यमुना आदि अनेक वस्तुएँ श्रीकृष्ण के परिवार में सम्मिलित थे । गौलोक की कल्पना में भी गौपियों का महत्त्व वर्तमान रहता है, क्योंकि गौलोक ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ ब्रजलोक का ही अधिदैव रूप मान लिया गया है। अन्तर यही है कि ब्रज में श्रीकृष्ण और गौपियों का विहार नित्य नहीं होता । उसमें विरह भी विद्यमान रहता है। ब्रज छोड़कर श्रीकृष्ण मथुरा चले जाते हैं और वहाँ से भी द्वारका की प्रस्थान कर देते हैं तो ब्रजवासियों की और उसके अन्तर्गत गौपियों की श्रीकृष्ण का विरह भी सहना पड़ता है। सूरदास जी ने राधा को भी विरह पीड़िता दिखाया है। उनकी उपासना ब्रज लीलाओं की है।

गौलीक में श्रीकृष्ण का विहार नित्य चलता है। वहाँ विच्छेद नहीं होता, वियोग नहीं होता । गौडीय, निम्बार्क और वत्सभ सम्प्रदाय में गौलीक की मान्यता है। गौलीक का सम्बन्ध विष्णु तत्त्व से भी पुराणों में माना जाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण, स्कन्द पुराण, नारदीय पुराण, अमृत संहिता,

देवी भागवत आदि ग्रन्थों में गीलीक का विस्तृत वर्णन मिलता है। अनन्त संहिता में बताया गया है कि वैकुण्ठ से ऊपर महावैकुण्ठ और महावैकुण्ठ से भी ऊपर गीलीक है। परन्तु यह परंपरा भी अटूट है कि गीलीक और वृन्दावन दोनों का परस्पर में सामंजस्य रहता है। इसलिए गीलीक में भी गोपियाँ, सुबल सुधामाबादि सखावर्ग और माता यशोदा आदि की उसमें सत्ता बनी रही है। ये सब तत्त्व भगवान् कृष्ण के नित्य विहार में किसी न किसी रूप में बाधक बनते हैं। अतः स्कान्तिक रूप से प्रेमीपासकों ने विहार भूमि की वृन्दावन और विशेषकर निकुंज मात्र तक सीमित कर दिया है। सही सम्प्रदाय ऐसा ही है। इस सम्प्रदाय में अनुसार विहारभूमि वृन्दावन और निकुंज है। उसमें केवल राधा और कृष्ण विहार करते हैं।

१- ब्रह्म वैवर्तपुराण, ब्रह्म संह , अध्याय २० आदि

स्कन्दपुराण, वैष्णव संह, वासुदेव माहात्म्य प्रकरण

नारदीय महापुराण, उत्तर अध्याय ५६

देवी भागवत, नवमस्कन्ध, द्वितीय अध्याय

२- महार्शभुवंसत्यन्न सर्वशक्तिमन्वितः ।

तद्वर्धं तु परं कान्तं महावैकुण्ठ संज्ञकम् ॥

वासुदेवादयस्तत्र विहरन्ति स्वगायया ।

तद्वर्धं तु स्वयं भातं गीलीकं प्रकृतेः परम् ।

वाङ्मनोगीचरातीर्तं ज्योतिरूपं सनातनम् ।

नित्यगुणमहोत्साहं नित्योत्सवगुणान्वितम् ॥

- अनन्त संहिता ५

धे गीपियजीं एस विहार के साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त करती हैं धे ही सखियाँ हैं। अतः कहा जा सकता है कि ब्रज भूमि में से निकुंज का गीर गीपियाँ में से सखी तत्त्व का विकास हुआ है। राधा तत्त्व का विकास गीपी तत्त्व से ही हुआ है। इसका कारण है प्रेम एस की ऐकान्तिक उपासना। ब्रज गीर गीलीक से ऊपर उस नित्य वृन्दावन का साक्षात्कार सखी भाव-भावितों ने किया जहाँ क्लेशोदा, गीप, ग्वाल, ग्ज की व्यावहारिक सीमाएँ अथवा सीमाओं के बन्धन पूर्णतया नहीं हैं। वहाँ केवल सखियाँ हैं। वहीं नित्य रसास्वादन संभव है।

“ सखी भाव के उन प्रेमी उपासकों ने वृन्दा-वन का वह प्रेममय रूप तृप्त लिया है, जहाँ की निभृत निकुंजों में प्रेम की दो मूर्तियाँ नित्य प्रेम लीला में मग्न हैं। यह प्रेममय वृन्दावन उनकी प्रेम क्रीड़ाओं की आनन्द-पूर्वक गति देता हुआ उस एस की स्वयं भी धारण करता है। वृन्दावन का यह प्रेमस्वरूप पूर्णतया विशुद्ध गीर समर्थ है। इन वृन्दावन रसिकों ने वृन्दावन की प्रसु-सतः इसी रूप में देखा है। यह प्रेम वहीं प्रेम तत्त्व है जो प्रिया प्रियतम गीर सखियों के रूप में द्विधा प्रकाशित हुआ है और अपने चतुर्थ सहज स्वाभाविक रूप में वही वृन्दा-वन का ^{रूप} धारण किए हुए है।^{१०}

जिस प्रकार सखी भाव की उपासना में भगवान् की लीला विहार भूमि ब्रज एवं वृन्दावन से भिन्न निकुंज मात्र में पर्यवसित हो गयी है। इसी प्रकार गीपी तत्त्व से भिन्न सखी तत्त्व की मान्यता भी स्थिर है। उपासना की दृष्टि से गीपी तत्त्व भिन्न वस्तु है, सखी तत्त्व भिन्न वस्तु है।

डा० शरण बिहारी गोस्वामी का मत है कि
“ गीपी तत्त्व और सखी तत्त्व में उपासना की दृष्टि से बहुत अन्तर है। स्वामी

हरिदास जी के समय से लेकर आज तक के सभी उपासकों ने स्वी विद्वानों ने इस अन्तर को माना है।^१ यही विचार डा० विजयेन्द्र स्नातक का है। 'गीपी भाव' और 'सखी भाव' का साम्य परिलक्षित होने पर भी इनमें तात्त्विक भेद है। यहूदा इस तात्त्विक भेद की विस्मृतज्ञर होने की एक ही समझ लिया जाता है।^२

गीपी भाव में प्रेम की सकामता बनी रहती है। सखी भाव में सकामता का लेश भी नहीं रहता। यही सखी भाव का 'तत्सुख सुखित्व' है। 'सखियाँ युगल के सुख में ही सुखी रहती हैं। राधाकृष्ण का सुख ही सखियों का सुख है। ध्रुवदास जी ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

‘गीफि के सम भवतन बाएँ ।
उद्व विधि तिनकी रज चाहौं ।
तिन मन कहु सकामता बाहँ ।
तारैं बिच अन्तर पर्यी भाहँ ॥’

४- सखी भाव का स्वरूप

(क) श्रीकृष्ण

सखी भाव की उपासना में उपास्य ब्रह्म युगल श्री राधाकृष्ण हैं जो प्रेम रस की साक्षात् मूर्ति हैं। वे अवतार न होकर अवतारी हैं। रसिक भक्तों की दृष्टि में श्रीकृष्ण की प्रभुता, ऐश्वर्य वादि गुण

१- कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव पृ० १८७

२- राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० २०८

३- आनन्द लता लीला बयालीस लीला पृ० २७३

विस्मृत रहते हैं, क्योंकि ये रसानुभूति में बाधक हैं। यहाँ तो श्रीकृष्ण का निकृष विहारी पूर्ण रस स्वरूप ही स्वीकार्य है। वे नित्य आनन्द स्वरूप, सहज सुख की निधि और प्रेम के सागर हैं। ध्रुवदास जी ने ऐश्वर्य, ज्ञान माहात्म्य आदि गुणों की माधुर्य रस का आवरण बताया है और रसिकों की उपदेश दिया है कि उन्हें अपने अन्तःकरण की जड़ों से निकाल कर अन्तरात्म तत्त्व प्रेम रस में लगाना चाहिए। नारियल के कठोर आवरण के भीतर ही उसका रस अवस्थित रहता है और वही उसका वस्तु तत्त्व है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण तत्त्व के ऐश्वर्य, महिमा आदि में छिपा आनन्द रस ही तात्त्विक है। उसी की उपासना करनी चाहिए, ससी भाव विशुद्ध रसोपासना है।

ऐश्वर्य धैर्य के विपरीत यहाँ श्रीकृष्ण का रूप रस के लालची, राधा के समक्ष दीन एवं नित्य विहार में मग्न माना जाता है। यहाँ पुरुषोत्तम का पौरुष लुप्त होजाता है।

ध्रुवदास जी के अनुसार श्रीकृष्ण अपने दहप्पन को भूलकर दीन बन जाते हैं। वे इसी में अपना अहीभाग्य मानते हैं कि उन्हें किसीरी राधा प्रिया रूप में मिल नहीं :

दीन
मये छिन्न यों तजी बड़ाई, पुनि ताकी बातें न सुझाई ।
मानत हैं धनि भाग बड़ाई, ऐसी कृपारि किसीरी पाई ॥२

डा० शरण विहारी गोस्वामी ने श्रीकृष्ण का स्वरूप निर्देश करते हुए लिखा है :

“ श्री लाल जी की राधा के प्रति यह रति

१- ध्रुवदास- बयालीस लीला पृ० १४

२- नैस मीनरी पृ० २२६

बद्वितीय है। ये अक्सि प्रेमी हैं। उनका प्रेम अपने प्रिय की पाकर भी पूर्णतया संतुष्ट नहीं होता। रूप का भोग और उसमें निरन्तर आसक्ति यही प्रियतम का स्वरूप है। प्रेम की आत्मा स्वामिनी जी है और मन श्री लाल जी है। प्रिया स्वरूप जिसित सरीज और प्रियतम बलि है। **

इस स्वरूप की दृष्टि से ही यहाँ श्रीकृष्ण के ये नाम अधिक व्यवहृत होते हैं :

रंगीली, राधावल्लभ, लाडिली, झूलह, नित्यकिशोर, कृज बिहारी, भावती, राधा की धनी, कृजर बन, रसिक रंग मग्यी, श्री वृन्दावन चन्द, विष्णु विलासी, जानकीदंड, रसिक भौलि, आनन्द-मणि, सलीनी, सविरौ आदि ।

स- श्रीराधा

श्रीकृष्ण के समान राधा जी की भावना भी सही सम्प्रदाय में विशिष्ट है। एक ती श्रीकृष्ण की तुलना में राधा जी का प्राधान्य माना जाता है। श्रीकृष्ण इस के याचक हैं, राधा जी उसका दान करती हैं। राधा शब्द के दो वर्ण 'रा' और 'धा' संस्कृत की दो धातुओं 'रावाने' और 'हु धात्र्' धारण पीजणयीः के रूप माने जाते हैं। इन दोनों का सम्मिलित अर्थ होता है देना और धारण करना। राधा जी प्रेम इस की अधिष्ठात्री होने के नाते इस का दान करती हैं और श्रीकृष्ण उसे धारण करते हैं। इस प्रकार राधा और कृष्ण का अद्वय युगल राधा में ही पर्यवसित माना जाता

१- कृष्ण भक्ति साहित्य में सही भाव पृ० २७६-२७७

है। राधा सती सम्प्रदाय में परात्पर तत्त्व है। इसी बीज तत्त्व के दो स्वरूप हैं - गौर और श्याम । गौर धेता है, श्याम उसे धारण करता है। अतः राधा नित्य सुख की प्रतीक है :

“ रा ” अवतार श्री गौर तन “ धा ” अवतार धनश्याम ।
सहज परस्पर अव्यतिरक्ति , विवि मिमि राधा नाम ॥
गौर धेत नित सर्वसुख , श्याम रूप है सैत ।
रा धाने धा धारणी , राधा नाम सभेत ॥ १

धुवदास जी ने श्रीकृष्ण के समान राधा जी के भी लीला विलास परम नाम गिनाये हैं- वे हैं -

नित्यकिशोरी, वृन्दावन विहारिणी ,
निकुंजेश्वरी, रूप- रंगीली, कबीली, रसीली, रस- नागरी, मोहनमनमोहनी,
रंगैलि- बद्धायनी, सुरत - चंदन-चर्चिनी , रंग विहार-विलासिनी , उरजनि
प्रिय परसिनी, अक्षर सुधारस बरसिनी आदि आदि ।

उनका स्वरूप सगुण और निर्गुण दोनों से परे है। वे अवतार नहीं अवतारी तत्त्व हैं। उनका मानवीय वपु तत्त्वतः दिव्य है। वह इच्छा-विग्रह लीला वपु है जो नित्य आनन्दमय है।

“ इच्छा-विग्रह धरि लीला वपु, सब अवतारनि पर अवतारी । ” २

वह रूप की राशि और गुणों की आगार है। उनका रूप क्षण क्षण में नवीन और सदा सर्वदा रमणीय है। स्वामी हरिदास जी ने श्रीकृष्ण के मुख से राधा

१- सुधर्म बी धिनी प्रसंग ३, २-३

२-विहारिनदास जी के सवैया सं० २५

जी के रूप की प्रशंसा कराते हुए कहा है कि :

“ प्यारी जी, मैं जब जब तुम्हारा मुख देखता हूँ, तब तब वह नया ही लगता है। ऐसा भ्रम होता है कि यह रूप मैं अभी देखा ही नहीं था । उस शोभा का लेखन किस पुति से हो सकता है। ये कहीं-कहीं चन्द्रमा तुम्हें कहीं छिपा रहे हैं, जब देखी नवीन चन्द्रमा का ही उदय होता हुआ दिखाई देता है।

सही भाव के भक्तों की भावना की यह विशेषता है कि वे युगल विग्रह की रू और भौतिक रूप में चित्रित करते हैं, दूसरी ओर उनकी भावना में वे शत प्रतिशत दिव्य हैं। सशरीर परात्पर ब्रह्म । सगुण निर्गुण , निराकार- साकार । राधा जी के रूप की परिकल्पना स्वामी हरिदास जी की यह है :

जीवन रंग- रंगेली ।

सीने से गात, डरारे नैना, कँठपीत मखतूली ।
 अँग-अँग वर्ण फलकित सीहत, कानन वीरि सीमा देत,
 देखत ही बनें, जोह्न में जोह्न सी फूलती ।
 तन सुख सारी लाही बैगिया, अतलस जतरौटा छवि,
 चार चार चूरी ।
 पहुँचनी पहुँची समझि बनी नफ़ूल ,
 जब मुख बीरा चौका कंधि सँभ्रम भूली ॥ २

जैसा हम पहले बता चुके हैं, यहाँ राधा का

१- के लिमाल पदसंख्या ३४

२- के लिमाल पद संख्या २१

ही प्राधान्य है। श्रीकृष्ण का नहीं। प्रेम रस में भोक्ता और भोग्य दो पात्र होते हैं। भोग का आधार होने के कारण भोग्य की प्रधानता ही जाती है। वही प्रधानता राधा जी की प्राप्त है। जब वे मान करती हैं तो श्रीकृष्ण पैरों में पड़कर उन्हें मनाते हैं। संसार के वे ठाकुर हैं। पर राधा जी उनकी ठकुरानी हैं, आराध्या स्वामिनी। इस प्रकार सखी भाव-भावित भक्तश्रीकृष्ण की आराध्या राधा जी की आराधना करते हैं।

घ- नित्य विहार

नित्य विहार सखी भाव का एक महत्वपूर्ण संदर्भ है। सुख अथवा आनन्द की चरम सीमा यही प्राप्त होती है। नित्य विहार में न काल की गति है, और न कर्म की। इसीलिए दिन, रात, पहा, मास वर्ष आदि काल सप्टर्ही का यहाँ मान नहीं होता। कर्म जन्य अवसाद भी यहाँ नहीं रहता। अपने विहार से न राधा कृष्ण थकते हैं और न देखने से सखियाँ थकती हैं। उसका कारण अतृप्ति है। युगल परस्पर रूप का पान करने अघाते नहीं। सखियाँ उन्हें देखती देखती तृप्त नहीं होतीं। आनन्दमय अतृप्ति के सागर में सब गीते लगाते रहते हैं। सखियाँ निकुंज रन्ध्रों से युगल विहार को देख देखकर वही आनन्द अनुभव करती हैं, जो योगी की समाधि की तुरीयावस्था में होता है।

इस रस सागर के चार प्रकल्प हैं- राधा , कृष्ण, सखी और निकुंज। ये चारों कभी पृथक् नहीं रहते। राधा और कृष्ण का वियोग नहीं होता। विहार में सखियाँ सदा उपस्थित रहती हैं। वे विहार की साक्षिका हैं। विहार का स्थल निकुंज ही रहता है।

घ- प्रेम और रस

सखी भाव का केन्द्र बिन्दु प्रेम एवं रस है।

इस भाव के प्रायः सभी विचारकों ने प्रेम तत्त्व पर अपने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनकी मान्यता है कि प्रीकृष्ण प्रेम रस की ही साक्षात् मूर्ति है। उनकी आराधना का सच्चा स्वरूप उन्हें प्रेम रस के संघर्ष में भजना है।

हरिमवितरसाभूत सिन्धु में गौदीय संप्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् रूप गोस्वामी ने प्रेम का लक्षण देते हुए बताया है कि : " प्रेम एक भाव है। इसमें हृदय अच्छी तरह मग्न दिया जाता है और ममत्त्व का अतिशय उपलब्ध हो जाता है। सान्द्रता घनत्व इसकी विशेषता है। "

रस-शास्त्रियों के अनुसार शृंगार रस के स्थायी भाव रति की ही प्रेम कह सकते हैं। इस प्रकार यह रस की मूलावस्था या अनुभूत अवस्था है। रूप गोस्वामी जी ने इसमें सान्द्रता का जो उल्लेख किया है, वह भी भावदशा की सान्द्रता का ही माना जा सकता है।

यही भाव अपने उद्गारण विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि से मिलकर शृंगार रस बनता है। ससी भाव की उपासना रसोपासना है। उनका रस भी अलौकिक, नित्य और उत्तरोत्तर परिपूर्ण है। उसमें न कभी विघात होता और न क्षय। सांसारिक प्रेम रस सामयिक होता है अर्थात् जब तक हम विभाव, अनुभाव आदि के संघर्ष में रहते हैं तभी तक हमें रस की अनुभूति होती है। न इससे पूर्व और न बाद में वह विद्यमान रहता है। परन्तु ससी सम्प्रदाय का रस सदा तन है, शाश्वत है। साथ ही अपनी दिव्यता के कारण इसमें कौटिल्य नहीं होती। प्रत्येक अवस्था में यह रस ही होता है।

१- सम्यङ्मण्डित स्वान्तो ममत्वातिशयोक्तिः ।

भावः स ख सान्द्रात्मा बुधः प्रेमा निगह्यते ॥

- हरिमवितरसाभूतसिन्धु- पूर्व विभाग, लहरी ४,

श्लोक १

उसका अवस्थान केवल निकुंज है। उसी निभृत स्थान में श्रीकृष्ण और राधा जो अपेक्षित प्रेमरस में मग्न होकर विलास करते हैं, वही भक्तों का आस्था, भजनीय एवं उपास्य है। उसका पूर्ण साक्षात्कार स्त्रीभाव के बिना असंभव है। अतः भक्त सखी बनकर उस दिव्य रस का साक्षात्कार करता है।

सखी भाव के उपासकों का उपास्य वास्तव में, न तो केवल कृष्ण है और न केवल राधा । न सखी गण उपास्य हैं और न केवल वृन्दावन । अपितु इन सबकी जो नित्य रसमयी लीला है, वही उनकी उपास्य है। श्रीकृष्ण, राधा, सखी और निकुंज के बिना रस लीला संभव नहीं है, इसलिए ये सब भी उपास्य हैं। वास्तविक रूप में तो इन सबका जो सार धर्म है, वह नित्य विहार ही उपास्य है। इस रस की बाधारहित होने के कारण राधा जो प्रधान उपास्य है। श्रीकृष्ण उसकी अभिव्यक्ति के प्रधान हेतु होने के कारण, सखियाँ साधन मार्ग निर्देशिका होने के कारण और वृन्दावन निकुंज बाधारहित होने के कारण उपास्य होती हैं। सखी भाव प्रमुख रूप से रसोपासना का भाव है।

इसकी लीला की भी रास लीला न कहकर 'रसलीला' कहा जाता है। रास लीला तो भगवान् के वे सब कार्य व्यापार हैं, जो उन्होंने ब्रज में रहकर किये थे । उसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रस भी थे । परन्तु निकुंज लीलाओं में केवल प्रेम रस की अनुभूति होती है। तत्सुखसुखित्व अर्थात् युगल विहार के आनन्द में आनन्दित होने की उत्कृष्टता निकुंज लीलाओं में ही संभव होती है। ब्रज की लीलाओं में नहीं । विहारिणदास जी का निम्नलिखित वीहा इस मान्यता की स्पष्ट करता है :

बह मारम कितहू नयी, जिहि बलि नयी हरिदास ।

रामकृष्ण अवतार ली कीऊ सु बटवयी रास ॥ ९

ललित किशोरी जी ने इसीलिए तीसरा वर्णन
के अपने ग्रन्थ की "रस कलिका" शीर्षक दिया रास कलिका नहीं ।

५- ललित किशोरी जी की भक्ति- भावना और उनकी दार्शनिक विचारधारा

ललित किशोरी जी ने अपनी रचनाओं के
प्राथमिक में मंगलाचरण के रूप में और प्रार्थनात्मक रूप से बीच बीच में गीरगि महा-
प्रभु का, अपनी गुरु- परिवारा के गोस्वामी भक्तों का और हित हरिवंश स्व-
स्वामी हरिदास जी का अछाभाव से उल्लेख किया है। सर्वप्रथम अपने गुरुजी
से भी पहले गीरगि महाप्रभु का स्मरण करते हैं, उनके चरणों में वन्दना करते
हैं :

करणासय गीरगि के, पसरोज सुतरास ।

दीजि एन वीसियनि की, सेवा कृज निवास ॥ ९

चैतन्य सम्प्रदाय की उपासना की सुभवतः
माधुर्य प्रधान होने के कारण तलवार के समान समझते हैं जो सात्त्विकता के
अभाव में वासना पीकिल होकर आत्म विधाती बन सकती है। परन्तु सच्चा भक्त
उसे अपने हृदय में ऐसे क्षिप्त कर रखता है जैसे तलवार को म्यान में रखा जाता है :

१- विद्या हरिदास- साखी

२- अमिताभमाधुरी पृ० १, १

प्री चैतन्य उपासना, ज्यो भेरी तबहार ।

करियी हिये भियान भे, सजनी सीध विचार ॥ १

चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वे
राधाकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति का अनुग्रह करें :

प्री चैतन्य कृपा यस कीजि निष्ट दयान कछु नहि जानै ।

युगल नाम सर्वस ही भेरे कर्म धर्म छूजी नहि मानै ॥ २

दक्षिणी गुरु परम्परा में शास्त्र जी ने गोपाल
भट्ट गोस्वामी, राधा गोविन्द, गोस्वामी जीर गल्लु जी महाराज का बार
बार स्मरण किया है। गोपाल भट्ट जी गुरुवश के पूर्व पुरुष थे, जिन्हें
वृन्दावन में बड़ी प्रतिष्ठा मिली थी। चैतन्य महाप्रभु के उन्हींने दर्शन किए थे,
स्तः वंश परम्परा में उनका स्थान आचार्य का है। शास्त्र जी उनकी कृपा के कृतज्ञ
हैं :

पदसरीज गोपालभट्ट, भजत भजत अनूप ।

हिये माझि धिक् सित भयी, वृन्दावन की रूप ॥ ३

राधा गोविन्द गोस्वामी ती शास्त्र जी के
दीक्षा गुरु थे। उनका स्मरण अनेक बार किया है। उनकी स्तुति में पद लिखे
हैं। उनसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि उनकी कृपा से वृन्दावन में निवास करने
का सुख उन्हें प्राप्त हो :

राधा गोविन्द प्राण है, चरणपद्म सुख धाम ।

करुणा करि मुहि दीजिये, निधुवन में विग्राम ॥ ४

१- अमिताभ माधुरी पृ० ७-१

२- उपरिषत् पृ० २००, ७५

३- .. पृ० ११, २

४- .. पृ० ११, २

शाह जी पिनयपूर्वक स्वीकार करते हैं कि
उन्हें जी अपनी भक्ति साधना में सफलता मिली है, वह राधा गोविन्द जी
के चरणों की कृपा से ही है :

धन सतगुरु राधा गोविन्द ।

जिनके पद नख चन्द्र छटा सँ मिल्यो सुधा वृन्दावन छन्द ।
वस्ती हुति उर ससितकिशोरी युगल नवीन वदन अरविन्द ।
जान्यो नवल विहार खसीली कैसा मोहन रसिक अलिन्द ॥ १

श्री गल्लू जी चैतन्य सम्प्रदाय के गोस्वामी
थे । ये कवि और भक्त रूप में प्रसिद्ध थे । डा० नरेशचन्द्र बसल ने अपनी शीघ्र ग्रन्थ
‘चैतन्य सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य’ में इनका उल्लेख किया है। शाह जी
जब लखनऊ में रहे थे तब एक बार गल्लू जी वहाँ गये थे । इस पर ब्रह्मा गद्गप्
छीकर कवि ने पद रचना की थी ।

उनके प्रति भी शाह जी की ब्रह्मा गुरु जैसी
ही है। गल्लू जी के चरणों की कृपा से उन्हें भक्ति भावना का सीमाव्य मिला
है और चकोर की भाँति अनिमिष भाव से उनके चरणों की ओर मन लगाकर
देखते रहते हैं :

फग चरविन्दन श्री गल्लू जी गोस्वामी नित उर में धारी ।
जिन अधिकार निकुंज गवन की दीनी मुहिं छिन नाहि विसारी ॥
मन चकोर हूँ अनिमिष वाली पुनि पुनि पद नखीव निहारी ॥ ३

१- अमिताज माधुरी १६५।६५

२- देखिए- जीवन चरित प्रसंग अध्याय १

३- अमिताजमाधुरी पृ० २०५ । १३

उनके अतिरिक्त स्वामी हितहरिदश जी
भी स्वामी हरिदास जी का भी उत्तम बापों किया है। रसकलिका की सीलाओं
में उनके पद उद्धृत किए गए हैं। हितहरिदश जी का निम्नलिखित पद रसकलिका
के १६ वें पल में उद्धृत है :

सैलत रास पुलिनी ब्रूलहु ।

सुनहुनि सखी सखित ललितविक्रि निरसि निरसि नैनन किन कूलहु ।

अति मधुर महा मीलन धुनि उफरत हंस सुता के ब्रूलहु ।

थेईं थेईं वचन मिथुन मुख निसरत सुनि सुनि धेह वसा किन ब्रूलहु ।

मृदु पदन्त्यास उठत कुम्कुम रस^ज अद्भुत वस्त समीर ब्रूलहु ।

कवहु श्याम श्यामा वशनचिल कच कुच छा रहुबत भुज ब्रूलहु ।

अति लावन्य रूप अभिनय गुनि नाहिन कीटि काम सम ब्रूलहु ।

मृदुटि विलास हास रस वरसत हित हरिदश प्रेम रस ब्रूलहु ॥ १

जसी पल का ३३७ वां पद्य स्वामी हरिदास
जी का है जो रास माधुरी के अन्तर्गत उद्धृत हुआ है। पद इस प्रकार है :

अद्भुत गति उफरत अति नाचत योज मंडल कृवर किशोरी ।

सकल सुधन दीध मरि मीरी पिय निवर्तत मुसकन मुख मीरी

परिभिन रस रीरी ।

ताल धरे वनिता मृदंग चन्द्रा गतिधात वजे थीरी थीरी ।

सप्त माय भाषा विविध ललित गायन चित्त लीरी ।

श्री वृन्दावन प्रसन्न प्राल्यी प्रान सखि त्रिविधि पवन वहे थीरी ।

गति विलास रस हास परसपर भूतल अद्भुत जीरी ।

प्री जमुना जल विधकित पुष्प वरणा रति पति डारत तृण
तीरी ।

हरिदास के स्वामी श्यामाजी बिहारी की रस रचना कहे कीरी ॥१

उपर्युक्त उद्धरणों की रचना सेवित स्मरणों

से, सिद्ध होता है कि श्री ललित किशोरी जी की भक्ति भावना चैतन्य संप्रदाय के अन्तर्गत माधुर्य भाव की थी । उनके गुरु इसी संप्रदाय के गीस्वामी माने जाते थे ।

(१) दर्शन

सही भाव के सभी भक्तों ने दर्शनों की गहराई में जाने का और अपनी उपासना को उससे जोड़ने का प्रयत्न नहीं किया है। स्वामी हरिदास जी भी इस ओर उदासीन रहे । इस परम्परा में भक्तवत् विहारिदास जी ने अवश्य कुछ विचार पदा अपनी वाणी में व्यक्त किया है। पर उनके विचारों को भी दर्शन की पारिभाषिक अर्थ सीमा में संगत करना युक्ति युक्त नहीं होगा। उसे हम सामान्यतः भक्त की आस्था के मूल में अवस्थित विचार पदा कह सकते हैं। ललित किशोरी जी ने भी यद्यत्न अपनी विचारों की अभिव्यक्ति की है ।

शाह जी और उनके समान अन्य सही भाव के भक्त प्रकृत्या रसिक हैं। उनकी उपासना भी रसोपासना मानी जाती है। इसलिए कला के क्षेत्र में जी रस तत्त्व का दर्शन है। अन्ततः वही रसोपासना का भी दर्शन बन जाता है। साहित्य के रस तत्त्व की भी आध्यात्मिक स्तर पर व्याख्या-यित किया गया है। आत्मा या ब्रह्म की मूलतः ' रसो वै सः ' आदि प्रीति वचनों

के आधार पर रस स्वरूप बताकर काव्य द्वारा उसके अनुशीलन की आत्म साक्षात्कार का एक प्रयत्न सिद्ध किया गया है। रस- सिद्धान्तकी प्रीति व्याख्याता आचार्य अभिनवगुप्त के दार्शनिक चिन्तन की दिशा यही है। इसीलिए उन्होंने शान्त रस की सर्वश्रेष्ठ बताया है। रस का अनाविल सात्त्विक रूप शान्त में ही निष्पन्न होता है।

भक्ति साधना में रस तत्त्व की मान्यता इससे कुछ भिन्न है। गीर्वाण सम्प्रदाय के गीस्वामी बन्धुर्वा ने इस पर विस्तार से गम्भीर विचार किया है। सक्ति किरीटी की गीर्वाण सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे। दत्तः वर्मा तक विचार पड़ा था प्रश्न है वह बहुत कुछ वैसा हीगा जो गीर्वाण सम्प्रदाय का है। मधुरा भक्ति के अन्य साधकों में भी इसकी मान्यता स्वीकार है।

संक्षेप में रसीपासना का यह रूप है। भगवत् प्रेम अर्थात् भक्ति के पाँच भेद होते हैं- शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार अथवा माधुर्य। शास्त्रानुमोदित वैधी अथवा मर्यादित भक्ति के उपासक इन भेदों में से पूर्व पूर्व की उत्तर उत्तर की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं। शान्त भक्ति दास्यादि चार से, दास्य सख्य आदि तीन से, सख्य वात्सल्य और शृंगार से एवं वात्सल्य शृंगार से श्रेष्ठ माना जाता है। कारण है इनमें सत्त्व गुण का सम्मिश्रण और दार्शनिक विचार मन्थन की प्रक्रिया। माधुर्य भक्ति के उपासकों ने इसी विपरीत क्रम की सिद्धान्तित किया। उनकी दृष्टि में माधुर्य ही सर्वश्रेष्ठ भक्ति भाव है। पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तरीत्तर श्रेष्ठ होती चले जाते हैं। इस मान्यता का आधार है चित्त का ब्रवीभाव और तन्मयता। यह सबसे अधिक मधुरा भक्ति में निष्पन्न होती है।

साहित्य के रसों के दर्शन चिन्तन में यह स्वीकार किया गया है कि तत्त्वतः रस एक ही होता है। बाष्पय और उपकरणों के भेद से उसके नी या दस भेद ही जाते हैं। भक्ति रस की भी मूल में ^{ऐसी} ~~एक~~ ही मान्यता है। परन्तु यह साम्य अत्यल्प है। दोनों में भेद अधिक है।

भक्ति रस के आस्वादन में साधारणीकरण की प्रक्रिया नहीं घटती। इसके विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि अपनी दिव्यता का परित्याग कर "ममैव", "न ममैव" जैसी सहृदय की अवगम भूमिका पर नहीं उतरते। उनकी दिव्यता प्रतिपादन पनी रहती है। यहाँ भक्त कृष्ण और राधा की लीलाओं का आनन्द लेते हैं। यहाँ राधा और कृष्ण की परस्पर की रति जयवा यशोदा के घात्सल्य आदि के रूप में हमारे हृदय की परिणति नहीं होती। इसीलिए बाष्पय के साथ भक्त की समस्या भी नहीं फलित होती। उससे भक्त की भगवद्-विषयक रति ही जाग्रत होती है। प्रधान नायक की चित्तवृत्ति हमारी अन्तर्बृत्तियों की आत्मसात् नहीं करती। अर्थात् हमारी भगवद्-विषयक रति की उद्दीप्त मात्रा बनती है। इस प्रकार भक्ति क्षेत्र में हम अमिश्रित भावना का आस्वादन नहीं करते अर्थात् कृष्ण भावना से मिश्रित भक्ति भाव का आस्वादन करते हैं। यह इसकी आस्वादन प्रक्रिया है जो लीला रसों की आस्वादन प्रक्रिया से भिन्न है।

इसका दर्शन सामान्यतः यह है। रस तत्त्व और उसके अनुशीलन का लक्ष्य आनन्द साधना है चाहे वह लीला रस ही ^{अथवा} भक्ति रस। "रसैर्येषां सङ्घात आनन्दो भवति" इत्यादि श्रुति वाक्य इसके पीछे हैं। जीवन का परम पुरुषार्थ आनन्द है। धर्म, कर्म, काम, मोक्षा आदि वस्तुतः आनन्दरूपी पुरुषार्थ के साधन हैं। दुःख निवृत्ति का नाम मोक्षा है, वह अन्ततः आनन्द में पर्यवसित होती है।

आनन्द का अधिष्ठान आत्मा है। परमात्मा और जीवात्मा उस आत्म तत्त्व के दो भेद हैं। आनन्द का वास्तविक अधिष्ठान तो परमात्मा ही है पर जीव उसका दर्श देने से कण मात्र और क्षण स्थायी आनन्द का वह भी अधिष्ठान है। साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त आनन्द जीव का वही क्षण स्थायी आनन्द है जो विभावानि की सहायता से उसे उपलब्ध होता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य रस की भी समाधिजन्य आनन्द के निकट लाकर "ब्रह्मानन्द सहीदर" कहा है। फिर भी वह अल्पकाल स्थायी तो है ही, ब्रह्मानन्द का सहीदर ।

भक्ति रस के आचार्यों का साध्य है नित्य आनन्द की राशि भगवद्गत आनन्द का आस्वादन करना । परमानन्दस्वरूप भगवान् जब हृदयगत हो जाते हैं तो पुष्पल रस की प्राप्ति ही जाती है :

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि ।

भोगतस्तदाकारी रसतामिति पुष्पलम् ॥ १

चित्त ब्रवीभूत होकर विभु, नित्य, पूर्णपीथ और सुखात्मक भगवान् को ग्रहण कर लेता है तब छुछ भी प्राप्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता :

भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्णपीथ सुखात्मकम् ।

यद् गृण्णाति ह्रुतं चित्तं किमन्यथ शिष्यते ॥ २

एस प्रकार भक्ति साधना प्रकारान्तर से रस साधना ही है। भगवद्प्राप्ति के तीन साध्य हैं- ज्ञान, कर्म और भक्ति ।

१- मधुसूदन सरस्वती - भक्ति रसायन १, ५

२-

जन्म से साधनरूपा भक्ति ती ज्ञान अथवा कर्म का साधन कराती है। पर भाव भक्ति, जो भक्ति का सर्वोष्ठ रूप है वह ज्ञान वीर कर्म दोनों का साध्य है। यह भी विशेषण उल्लेखनीय है कि भक्ति भाव की अधिकतर आचार्यों ने उपाजित बताया है। जन्म-जात होते हुए भी साधना से उसे फ़कट करना पड़ता है।

चित्त्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता । १

साधना में उन्होंने छम भी निर्दिष्ट किया है। सर्वप्रथम हृदय में श्रद्धा, तदनन्तर साधु पुरुषों की सत्संगति, इसके बाद भजन, भजन से कर्तव्य निवृत्ति इसके फलस्वरूप निष्ठा, निष्ठा से हृदि वीर हृदि से आसक्ति, फिर भाव वीर फिर भाव से प्रेम का उदय होता है :

आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजन क्रिया ।

ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा हृदिस्ततः ॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाऽभ्युदयति ।

साधनानामर्थं प्रेम्णाः प्रादुर्भावि भवेत् छमः ॥ २

ऐस प्रकार इस साधना का अर्थ प्रेम इस साधना है। साहित्यशास्त्र में प्रेम शब्द का प्रयोग शृंगार रस के स्थायी भाव रति के लिए प्रयुक्त किया जाता है पर यहाँ भक्ति शास्त्र में वह रति की उच्चतम अवस्था का जीतक है। इस वास्था के अनुसार कृष्ण भक्ति में शृंगार वर्णन की प्रधानता बड़ी और थोड़ी थोड़ी साधनागत अन्तर के साथ गीर्वाण सम्प्रदाय के अतिरिक्त ब्रज घुन्वा - वन में राधावल्लभ सम्प्रदाय वीर सखी सम्प्रदाय की शाखाएँ फूटीं। 'जस रस परि-

१- हरिभक्तिरसामृतसिन्धु - पूर्व विभाग, सहरी २ श्लोक २

२-

..

...

४

६-७

पाद के लिए लीलावर्ण का वर्णन किया गया है और प्रकट और अप्रकट की प्रकार की लीलाएँ स्वीकृत की गयीं। घन-वृन्दावन में प्रकटलीला, मन-वृन्दावन में अप्रकट लीला और नित्य-वृन्दावन में नित्य लीला की परिकल्पना की गई।

सही भाव के उपासक नित्य वृन्दावन की नित्य लीला में विश्वास करते हैं। इसलिए उनकी लीला अनवरत चलती रहती है, अनवरत, अनवरच्छिन्न।

उपर्युक्त धारणा के सम्बन्ध में सामान्य पाठकों के मन में एक प्रश्न बार-बार उठता है। माधुर्य भाव की उपासना समाज की मर्यादाओं की नहीं मानती। उनका उल्लंघन करती हुई चलती है। फिर क्या कारण है कि साधकों की विशाल परम्परा इसे स्वीकार करती रही है ? इस प्रश्न का एक उत्तर तो भागवतकार ने दिया है। भगवान् श्री कृष्ण के मुख से ही उन्होंने कहलाया है कि "परमेश्वर प्रति वर्णित काम भाव भी मन की वासना पीकिल नहीं बनाता। भक्ति की सात्त्विक भूमिका उसकी मादकता के दर्श नष्ट कर देती है और उन्मीलित स्तर का चेतनारमण उससे प्राप्त होता है। जैसे मुने हुए या उबले हुए धान में बीजकुर की जामता नहीं रहती, उसी प्रकार भगवान् के प्रति स्कीरित रति भाव मादक नहीं होता।

न मय्यापिशितधिया कामः कामाय कल्पते ।

मर्जिता स्वयिता धाना प्रायी बीजाय नैष्यते ॥ २

डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अपनी वैदुष्यपूर्ण कल्पना से इसका उत्तर देते हुए लिखा है :

१- डा० विजयेन्द्र स्नातक - परिमथितसामुतसिन्धु की भूमिका पृष्ठ

२- श्रीमद्भागवत । १०। २२। २५

“ यथार्थ में इसका मूल कारण यह है कि भक्ति का यह मार्ग लौकिक जीवन का तिरस्कार नहीं करता । लौकिक की उसके यथार्थ रूप में पाकर उसका शोधन करता है। वासनाओं की स्वीकार करते हुए वासनाओं के परिमार्जन , उन्नयन या शोधन की यह प्रक्रिया संसार के प्रत्येक देश में धर्मों के किसी न किसी रूप में पायी जाती है। इस पद्धति का लक्ष्य है संसार की ग्रहण करते हुए मानव मन में लीन ध्यानत्व की उद्बुद्ध करना । एन्द्रिय दमन से भी साधक को भगवत्प्रेम ही उपलब्ध करना हीता है। उसका लक्ष्य भी यही है। माधुर्य भाव से चलने वाला भी उसी लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है। मनुष्य अपनी समस्त प्रयत्नों के पश्चात् अपनी भीतर बैठे हुए काम भाव को सर्वथा उच्छिन्न या निरस्त नहीं कर पाता । अतः यदि उसे साधन बनाकर उसका उन्नयन किया जाय तो उसका मार्ग प्रशस्त बन सकता है।^१” उमे हुए पीछे की उखाड़ कर उसके स्थान पर दूसरा जमाने की अपेक्षा उसी की अपनी अनुकूलता के लिए संवर्धित करना सुकर और मनीविज्ञान की दृष्टि से अधिक लाभदायक है।

(२) कवि के दर्शन सम्बन्धी विचार

यह कहा जा चुका है कि सभी भाव के सभी उपासकों का दर्शन की ओर अधिक झुकाव नहीं था । ललित फिरोजी जी भी इसकी अपवाद नहीं है। उनके व्यक्तित्व की तो यह भी उल्लेखनीय विशेषता है कि वे भक्त होते हुए सफल गृहस्थी भी थे । उनका अधिक समय भक्ति साधना में ही व्यतीत होता था । फिर भी अपने व्यापार और संपत्ति की सुरक्षा व्यवस्था यह सजग होकर करते थे । भगवत्प्रेम में मग्न उनका हृदय अपने भावीद्व-गार व्यस्त करने में संलग्न रहा है। दर्शन के तर्क वितर्क अथवा गम्भीर चिन्तन में

उनकी मनीषा अधिक नहीं उसकी। फिर भी जो विचाररूप उनके वाहुभय में उपलब्ध है उनका परिचय दिया जा रहा है।

निम्नलिखित कृण्डी में उन्होंने 'तत्सुख स्वसुख' का उल्लेख किया है और उसका शृंगार रस के साथ सम्बन्ध जोड़ा है। वृन्दावन में रहकर मन शृंगार रस (राधा कृष्ण का) में लिप्त हो जाता है। ऐसे प्रेम रस की उपलब्धि ही 'तत्सुख स्वसुख' कहलाती है। यह राधा जी की अनुकम्पा का फल है। यदि राधा कृष्ण के नाम, रूप और लीला के वश में मन पड़ गया तो उसी में सीध्या, पूजा, पाठ, धारणा, ध्यान और जप आ जाता है :

‘बस वृन्दावनधाम मन रस शृंगार विभीष ।
जिन जचि निज भित कहु तत्सुख स्वसुख सीय ॥
तत्सुख स्वसुख सीय सदा सेवा सुख लीय ।
अनुदित चाय विचार सुखिन अनुर्लपा हीय ॥
सन्ध्या पूजा पाठ धारणा ध्यान सुजप रस ।
ललित किशोरी नाम रूप लीला सेवा बस ॥’ १

तत्सुख, स्वसुख क्या तत्त्व है ? इसी अध्याय के पूर्व भाग में सही सम्प्रदाय के विकास का इतिहास दिखाते हुए इसकी चर्चा की गई है। सही भाव की उपासना में यह दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। बिहारिनदास प्रभृति गाचार्य-प्रवृत्ति के भक्तों ने इसका स्मृत दिया है।

उपासना के इस मार्ग में शृंगार रस की प्रधानता

है। राधा और कृष्ण की रति क्रीड़ाओं का वर्णन, उस लीला में भक्त का सखी रूप में दर्शक बनना और उसके आनन्द में आनन्दित होना - ये इसके आयाम हैं। इसमें भक्तों ने इस प्रश्न पर भी विचार किया है कि युगल विहार के आनन्द में सखी का क्या स्थान रहता है। क्या वह द्रष्टा मात्र रहती है अथवा उसकी आनन्दानुभूति में स्वयं भी भावता बनती है। आचार्यों का स्पष्ट उत्तर है कि सखी भी आनन्दित होती है। अनुभूति की वह भी भावता है। तब क्या सखी की रसानुभूति और युगल दम्पत्ति की रसानुभूति एक ही तदात्मक रूप है ? इस प्रश्न के उत्तर में "तत्सुख स्वसुख" प्रक्रिया का सिद्धान्त बना है। तत् अर्थात् युगल दम्पत्ति राधा और कृष्ण। उनका सुख रति विहार का सुख। वही सुख स्व अर्थात् सखियों का सुख है। अर्थात् सखियाँ युगल दम्पत्ति के विहार की तटस्थ द्रष्टा न होकर भावता द्रष्टा हैं। दार्शनिक स्तर पर वे भगवदीय परिकर का वर्ग हैं। इसीलिए सखी रूप से इस कैलि लीला में उपस्थित रहती हैं। पर भक्त जीव एनि के नाते ऐन्द्रियकता और मायकता से उनकी अनुभूति मुक्त रहती है। सखियाँ भगवदीय सुख की अपनी सुख मानकर अनुभव करती हैं। वह उनकी अपनी वैयक्तिक अनुभूति नहीं होती। अनुभूति में निजता रहते हुए भी उसका मूल-उत्स भगवदीय विग्रह है। अतः उसमें राजसङ्ग^{ता} या तामसङ्ग^{ता} का स्पर्श नहीं हो पाता। काव्य में नायक नायिका की अनुभूति साधारणीकरण की परिपरा से मुख्यमान बनती है। अतः उसमें ऐन्द्रियकता और मायकता रहती है। इसीलिए वहाँ अश्लीलता और श्लीलता का प्रश्न उठता है। यहाँ उसका कोई प्रसंग नहीं उठता। तत्सुख स्वसुख भाव सखी की गोपी से भिन्न बनाता है। गोपी श्रीकृष्ण के रास विहार में स्वयं भी इस प्रक्रिया का पात्र बनती है। भगवान् कृष्ण उनके भी स्तन स्पर्श, आलिंगन, आदि करते हैं। सखी भाव में ऐसा कुछ नहीं है। यह भावना बड़ी कठिन है। इसीलिए तलवार की धार से इसकी तुलना की जाती है।

सात्विकता की रक्षा करते हुए भगवदीय शृंगार

के आस्वादन के तात्पर्य से ही तलित किसीरी जी ने अपनी उपासना में दोषों के परिहार की बात कही है। आठ दोष भक्त के लिए त्याज्य बताये हैं- ईर्ष्या, मान, मद और स्वाद ये चार तामस दोष हैं। चार राजस हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह । इनसे मुक्त होकर ही भक्त अपनी साधना कर सकता है :

तामस ईर्ष्या मान मद स्वाद प्रथम ही त्याग ।
चतुर्व्यूह कामादि तत्र रस क्षुति दीपति लाग ॥ १

तलित किसीरी जी की भावना में ज्ञान का निषेध नहीं :

कक्का करने चाहिए, ज्ञान भक्ति धाराग ।
नाम रूप लीला सहित, हीम घाम अनुराग ॥ २

दिव्य लीला के शृंगार की उपासना की शास्त्र जी मर्मापासना समझते हैं। साधारणतः इसका पात्र नहीं बना जा सकता । यह निगमागम के बहिर्भूत भी नहीं है। उन्हीं के अनुसार है।

घघा घर बैठे गई, रसिकार्ह की बात ।
जी ककुपूखी मरम की, शासा मूल न पात ।
जज्जा जान उपासना, निगमागम अनुसार ।
जाहीं सी आचारियन, कीनी सब निरधार ॥ ३

- १- अभिलाषमाधुरी पृ० ७६ , ६-१०
२- उपरिषत् पृ० ७८ , २
३- ,, पृ० ७८ , ५-८

(१) सखी का स्वरूप और उसका कार्य

शाह कुन्दनलाल और उनके लघु भ्राता कुन्दन लाल जी की सम्प्रदाय की ओर से क्रमशः ललित किशोरी और ललित माधुरी नाम मिले थे। शाह जी ने इसी नाम का अपने काव्य में प्रयोग किया है। वह पात्र रूप में भी लीलाओं में उपस्थित रहते हैं। अन्य सखियाँ की अपेक्षा ललिता सखी राधा जी के निकट भी अधिक रहती है। यद्यपि कौह भी सखी राधाकृष्ण के युगल विहार के समय निकुंज में प्रवेश नहीं कर सकती। वह बाहर ही रहती है फिर भी ललिता सखी इन सब में अन्तर्गत है। ललित किशोरी जीने अपना वही रूप लीलाओं रखा है। वह य्येश्वरी है। रसकलिका में जिन लीलाओं का वर्णन शाह जी ने किया है उन सबमें ललिता सखी (ललित किशोरी) प्रधान सहायका के रूप में उपस्थित रहती है। सखी के जो कार्य कवि ने वर्णित किए हैं उनके कल्पित उद्घरण नीचे दिये जा रहे हैं।

निकुंज सेवा के अन्तर्गत विभिन्न सेवार्थ दीक्षित भक्तों की बाँटी जाती हैं और निकुंज सेवा के अनुरूप उन्हें सम्प्रदाय का नाम दिया जाता है। ' ललित किशोरी ' शाह जी का वही नाम है। इन्हें सौहनी की सेवा मिली थी अर्थात् निकुंज में फाँदू लगाने की। इसकी याचना करता हुआ कवि कहता है :

करुना सिन्धु कृपाल स्वामिनी फल फँज निज टहल में लीजै ।
सास सखा सिन करो सखासी ललित सौहनी सेवा दीजै ॥ १

सबै सौहनी जा दि टहल जचि फल थेजी ।
वन अनुराग मुदेहु दया करि ए वी ए जी ॥ २

१- अभिलाष माधुरी पृ० २०१, ८२

२- ,, पृ० २०० । ७७

जय युगल राधा और कृष्ण निरुज में प्रविष्ट
ही जाते हैं तो सखियाँ बाहर ही रह जाती हैं। न तो वे दूर खटती हैं और
न उनके साथ भीतर बैठती हैं। बाहर से कूँज के छिद्रों में से रति क्रीड़ा की
चेष्टाओं को देखती हैं, उनके विविध प्रकार के उस समय के शब्दों को सुनती
हैं :

निरत गाय दौड रसिक मणि, करि शृंगार सुदेश ।
बब रंघन दृग देहु बलि, कियो निरुज प्रवेश ॥ १

०

०

फिर सम दृग अकुलात हैं, वरस जुगल कबि लुँद ।
मीर कुटी मगछि तैं, निरखहु बानन इन्द ॥ २

७

०

ललित माधुरी कूँज में, विहरत प्यारी लाल ।
रंघन दृग है तरुनतर, वसत रहौ सब काल ॥ ३

सखी राधा कृष्ण के लिए शृंगार केलि की
अनुकूलता उत्पन्न करती है :

विहरौ ललित निरुज में, लली रसिक सिरमौर ।
निरजन वन सुख सेज पे, कौन जानि है और ॥ ४

शृंगार रत युगल मूर्ति ही आराध्य है। अन्य रूप नहीं ।

रतन कूँज सज्या सुम्न, जटित मदन मनि आशिह ।
द्वैपति राज मूढ मन, काहे न चितत ताहि ॥ ५

१- अभिलाषमाधुरी पृ० २६।६६

२- .. ७७ ३।१६

३- .. २७।७०

४- .. २७।७३

५- .. २७।७५

सलियाँ रास में सञ्चय भाग लेती हैं। वे झूल घनाती हैं और उनके बीच में रसिक मनमोहन रहते हैं। सब नृत्य करते हैं तो रूप की नदी बहने लगती है :

झूल दे सलियाँ रास में, मध्य रसिक चितवीर ।

निरत नचि नचि रूप की, नदी बहै चहुँओर ॥ १

जब राधा और कृष्ण कामावेश में आकर मुकने की हो जाते हैं तो उसी उन्हें गीव में मर लेती है। उन्हें सहारा देती है :

मदन कैं मुकि मुकि परत, जली गीव मरि लेत ॥ २

कभी बीच में कृत्रिम बाधा उत्पन्न कर श्री कृष्ण के हृदय में राधा के प्रति प्रेमाभिलाष की और बढ़ा देती है। राधा जी सीधे हुई हैं। श्रीकृष्ण उनका मुख चुम्बन लेने के लिए ललचाई दृष्टि से चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सखी वहाँ खड़ी रहती है। उन्हें रोक देती है। इस तरह श्री कृष्ण का लालच और बढ़ जाता है :

सीवत श्यामा सारों, चहुँ दिशि हरि फिरि जात ।

जली निवारत उड़ी तई, मुख चुँबन ललचात ॥ ३

राधा और कृष्ण की सुरत झीड़ा के लिए प्रेरित करते हैं। श्रीकृष्ण की प्रेरित करती हुई सखी कहती है कि 'वाकाश में काली घटाई ज़ायें हुई हैं। शीतल फन चल रहा है। है रसिक, झीड़ा छ्धर देखो । कुँज में फूलों की शैया तैयार है। इस पर सुसपूर्वक सोइये । यहाँ वन

१- अभिलाषमाधुरी पृ० २४।३४

२- .. पृ० २६।५६

३- .. पृ० २८।८०

में छधर उधर कोई नहीं है :

श्याम घटा सीरी पवन, रसिक लाल टुक जीय ।

सुमन सेज सुख सीप्ये, इत उत विप्ति न कीय ॥ १

माधवी कूँज में राधा जी विराजमान है। वहाँ पुरुष का प्रवेश वर्जित है। इसलिए सखी श्रीकृष्ण की परामर्श देती हैं कि स्त्री का वैष्ण धारण कर ली तब भीतर जा सकीये । फिर वहाँ राधा जी के कनक कुम्भ से स्तनों का स्पर्श करने की मिलेगा :

भामिनि बनि आवहु पिया, कूँज माधवी माहिं ।

कनककुम्भ तिय क्वन की, और जसन कहु नाहिं ॥ २

रात्रि में सुख विलास में राधा जी की पद्मिका पृथ्वी पर गिर पड़ती है। प्रातःकाल सखी उसे उठाकर देती हैं तो दोनों लज्जित हो जाते हैं :

भौरहिं जुगल विहार में, गिरी मूँदरी लाये।

में दीपति सामुहि धरी, दीपति गये लजाय ॥ ३

ललित किशोरी की समता कान कर सकता है । उसने सारी रात यमुना के किनारे पर राधा और कृष्ण का पीसा किया -

मेरी सरस्वर की करै, का लिवी के तीर ।

सब निशि युगल विहार में, ढोरी बिजनी धीर ॥ ४

१- ललितामाधुरी पृ० २६।८७

२- ,, पृ० ३०।६६

३- ,, पृ० ३४।४६

४- ,, पृ० ४७

(४) भक्ति-साधना के सम्बन्ध में कवि की सामान्य विचार

ललित किशोरी जी की भक्ति भावना मधुर भाव की है। इसका फल भाव मग्नता तो है^{ही} आत्म परिष्कार भी है। संसार में शायद के प्रवाह में पड़ा हुआ जीव अपने जीवन से ही माराष्ट्रान्त ही जाता है। संसार के साथी उसकी कोई सहायता नहीं करते। वह अपनी की चतुर्दिक विपत्तियों में घिरा अनुभव करता है। श्री राधा ही ऐसे संकट से उद्धार कर सकती हैं। पतिहारिण के प्रतीक का प्रयोग करते हुए कवि कहता है :

धरी सिर जल मरी गगरी छुटी सखि संग की सगरी ।
हमन श्रीवा लक्ष्म मिहरी उतारीगे तो क्या होगी ।
हमन घर दूर जाना है भुकी घनघोर अधियारी ।
डगर डायर भरे जल सौं जी तारीगे तो क्या होगी । १

विनय भक्ति का बीज है। संसारी पुरुष अपने जीवन के दोषों और संसार के माया चक्र को देखकर निर्वेद से भर जाता है और फिर अशरण-शरण भगवान् की शरण में ही अपना ब्रान समझता है।

ललित किशोरी जी अपनी और देखकर अनुभव करते हैं कि उनके माथे पर जी भक्ति सम्प्रदाय का सूचक तिलक लगा है, उसके लिए वे लज्जित हैं। उनमें भक्ति तो है ही नहीं। फिर भी वह राधा जी की सेविका कहलाती हैं। वह चैतन्य महाप्रभु की उपासिका होकर कुल का कर्त्तक बन गई हैं। दुष्कर्मी और वदनामी का टीका है, दिन रात दूसरों के दोषों का ही विचार करती हैं। राधागी विनय जी की सेविका बनकर लज्जा का काम करती हैं :

लाज लगावत भाल तिलक कौं
 श्री चैतन्य तुम्हारी तबपि सुमिरत ना नस चन्द्र फलक कौं ।
 छत्यादि

कुल कर्त्तक चैतन्य उपासिन ।
 हुसकमीं वदनामी टीकी श्री वृन्दावन कृष्ण निवासिन ॥
 रैन दिवस परदोष विचारत फेसत न दृढ़ अलकन की ध्यासिन ।
 लाज लगावनहार किशोरी राधा गोविन्द ललित ^{स्व}देवासिन ॥११

भक्ति साधना में ज्ञान और शास्त्राभ्यास का अधिक महत्त्व नहीं है। महत्त्व है प्रेम और श्रद्धा का । ललित किशोरी जी का मत है कि 'पढ़ पढ़ कर सब पानी में डुबा देना चाहिए । इससे कुछ लाभ नहीं । यदि चित्त का चूर्ण बनाकर राधा कृष्ण के रूप रस में उसे नहीं धोला तो शास्त्राभ्यास से क्या लाभ ? यदि अपने प्रियतम की प्रसन्न नहीं किया तो सुन्दरी की सारी चतुराई निरर्थक है^२ ।

भक्ति साधना के लिए कोई निश्चित समय या वायु सण्ड नहीं होता । हर समय, हर क्षण, जब भी बन पड़े, इसकी साधना करते रहना चाहिए । यह सीचना भूल है कि अभी कुछ दिन सीसार का सुख भीस लें फिर परमार्थ साधना करेंगे । ऐसे विचार वालों की मर्त्सना करते हुए ललित किशोरी जी कहते हैं :

जानत आप सहस जुग जीहि ।
 अब ली चाखि लैई सुख ली किंक फेरि जुगल कवि पीहि ॥

१- अमिताब्ज माधुरी पृ० १५१ । १८७-१८८

२- ,, १८८

मनौ बाप की धरी धरीहर जब चाहे ले लीहें ।

ललित किशोरी तार तार जब ही तब बीगिया सीहें ॥ १

सैसार की समस्त उपलब्धियाँ निरर्थक उपहसनीय हैं। यदि उनके साथ साथ मनुष्य में भक्ति साधना नहीं है। भले ही कोई धन स्रक्त्र कर शाह बन जाय, चीरों के लिए भले ही कोई कीतवाल बन जाय, सीधे हिंदी अस्त्र-शस्त्र बाँधकर भले ही कोई राजा बन कर नीतिका पालन करे, हाथी घोड़ों पर चढ़कर भले ही कोई अभिमान कर ले, कलपूर्वक जर्सी मूँद कर बीर शरीर पर भस्म रमा कर भले ही कोई योगी बन जाय, शास्त्र और पुराणों को पढ़कर भले ही कोई वाद-विवाद करे, कोई मुंशी, दूत या वैद्य बन कर भले ही घर-घर में गाल बजा ले, यदि उसने मन लगा कर दायण भर राधा कृष्ण का ध्यान नहीं किया तो यह सब प्रयत्न धूल के बराबर तुच्छ हैं ।

अभक्तों की निन्दा प्रायः सभी भक्त करते आए हैं। उनकी आस्था गहन गम्भीर होती है, विश्वास अटूट होता है। इसलिए अभक्तों की आलोचना करते समय वे कटु और तीक्ष्ण भी हो जाते हैं। ललित किशोरी जो रक्षित भक्त होने के नाते कटु नहीं है। प्रेम वैसे भी स्वभाव में मृदु होता है। पर अभक्त की निन्दा में उनकी भी अभिव्यक्ति तीक्ष्ण और कटु है ।

जो व्यक्ति राधा कृष्ण का नाम तोलते नहीं। न ही उन्हें जानते हैं। ये नारी के ऐसे गुलाम होते हैं कि प्रातः काल से ही उनके पैरों में पड़ जाते हैं न उनका कोई सत्संग होता है, और न किसी

१- अभिलाषमाधुरी १५२। १८७

२- .. १६७। २७७

प्रकार के भक्ति उस की आनन्दानुभूति । वृन्दावन के तो नाम से ही डर जाते हैं । राधाकृष्ण के कमनीय रूप को तो देखते कहीं जाते नहीं, घर पर ही कृत्ति की भाँति पड़े पड़े भक्तिते रहते हैं। जो मणवच्चरणारविन्दों का प्रसाद नहीं ग्रहण करते ऐसे दुष्ट स्वप्न में भी, हे राम, न दिखाई दें :

राम करै सारे ऐसे सपने न दृष्टि परें । १

इस संदर्भ में कल्युगी पीढ़ियों की भी खबर ली गई है। उनके भक्ति शून्य दार्मिक जीवन का उपहास करते हुए कवि कहता है :

कलिजुग पीड़ित निरखि सखी री ।

जुगुलदास की जोग पाय मग जात हुए सीजारि लखीरी ।

फलटे आप और सँगिन की फलटि चलो यह बात मखीरी ।

बूजेहु मग मिली विलैया, ललित किशीरी बात रखी री ॥ २

वैष्णव सम्प्रदायों में नवधा भक्ति मूल भावना के रूप में गृहीत है। श्रीमद्भागवत में इसका उल्लेख हुआ है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ३

सूरदास जी ने प्रेम भावना का एक और भेद बढ़ाकर इसकी संख्या दस कर दी है। उनका परिगणन इस प्रकार है :

श्रवण कीर्तन स्मरण पास रत, अर्चन बँदन दास ।

सख्य और आत्म निवेदन, प्रेम लक्षणा जास ॥ ४

१- अमिताभमाधुरीपु० २१५। ३८

२- .. पु० २१६। ४७

३- श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७। अ० ५। श्लोक २३

४- डा० दीन दयालु गुप्त - अष्टकाम और वल्लभ सम्प्रदाय पु० ५४३

वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य भक्त भी दशधा भक्ति ही मानते हैं। भक्तवर परमानन्ददास जी ने नीचे लिखे पद में दस प्रकार की भक्ति ही गिनायी है और प्रत्येक की उदाहृत भी किया है :

ताते दसधा भक्ति भली ।

जिन जिन कीनीं तिनके मनते नेकु न जनत चली ॥
 श्रवण परीक्षित तरे राजरिजि कीर्तन करि शुद्धिव ।
 सुमिरन करि प्रह्लाद निर्भय भयी कमला करी पवसेव ॥
 प्रभु वरचन, सुफल सुत बदन, दास भाव हनुमंत ।
 सखा भावबहुन बस कीमि श्री हरि श्री भगवन्त ॥
 बलि आत्म समर्पित करि हरि राखे अपने पास ।
 अविरल प्रेम भयी गोपि की बलि परमानन्ददास ॥ १

तलित किसीरी जी ने एक बीह में भक्ति के भेद गिनाये हैं। ये नीचे हीकर सात ही हैं :

श्रवण मनन ध्यासन, कथन सुगल नाम यश रूप ।
 अर्चना सेवन रचन बीग दीपति चरन कृप ॥ २

श्रवण , मनन, ध्यासन अर्थात् ध्यान करना, सुगल के नाम, रूप और यश का कथन, अर्चना, सेवा और दम्पत्ति के चरणों में रचन करना ; इनमें से सेवा पर उन्होंने विशेष बल दिया है। जीवन का फल भगवान् की सेवा करना और भजन करना है। उसका अन्य कोई फल नहीं है। सेवा साधन भी है और साध्य भी :

१- डा० दीन दयालु गुप्त - अष्टकोप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ५४३

२- अभिलाषमाधुरी पृ० १६४, ५६

फल जीवन सेवा भजन तासु न फल कहु वान ।
 सोइ साधन सोइ सिद्ध फल यह दृढ़हि हियरे जान ॥ १

(५) अमिला-जो

अमिला-जो सखी भाव का मुख्य अन्तर्भाव है। शृंगार केलि में मग्न राधा और कृष्ण के रूप, चेष्टाएँ और मनीषाओं की देखी की अमिला-जो ही सखी की सबसे बड़ी साधना है। जप, तप, व्रत, नियम आदि सब इस अमिला-जो में ही समाहित होते हैं। भक्ति भावना में विनय की प्रायः सभी भक्तियों में अमिला-जो में व्यक्त किया है। उसके अन्तर्गत भक्त अपनी हीनता, हीनता, दुःख कातरता और भगवान् की कृपालुता, भक्त वत्सलता, उनकी 'पतित उधारन' वृत्ति आदि के भाव दिखाये जाते हैं। परन्तु ललित किशोरी जी की विनय भी अमिला-जो ही है। राधा जी से उनकी यही प्रार्थना है कि वे उन्हें इस योग्य बना दें कि निर्गुण लीला का दर्शन कर सकें।

प्रिया जी नवल हों द्यर धरयाम भी नवल
 ही हों । दोनों एक दूसरे की गलबाही दिए खड़े हों और इस मुद्रा में उन्हें ललित किशोरी देखें । श्रीकृष्ण अपने हाथ के कमल से कृज में प्रमरी को छटाते हैं । राधा जी हंसिनी की भाँति मंद गति से चलती हैं और नंदलाल हाथी की तरह मस्त गति से । वे वेशी भी बजाते हैं। ललित किशोरी जी की अमिला-जो है कि वह उन्हें इस रूप में देखें और उनके वेशीनाद को सुनें :

हंस चलत श्री स्वाप्ति, गति गयँद नवलाल ।

लखी सुनो कन कृज में, वेशी रणित रसाल ॥ ३

१- अमिला-जोमाधुरी पृ० १६४।५७ शिक्षा पत्रिका

२- ,, पृ० ३।२०

३- ,, ४।२६

होली के पर्व पर कवि उनकी रंग लीलाओं का वर्णन अपनी इस अभिलाषा के साथ करता है कि वह उन्हें इस रूप में देखने का अवसर प्राप्त करे। श्रीकृष्ण कृष्ण और केशर के रंग से राधा जी के साथ होली खेलते फिरते हैं। बरसाने के मार्ग में वे राधा जी के अंग अंग पर रंग छिड़कते हैं। राधा जी श्रीकृष्ण से वंशी और पीताम्बर छीन लेती हैं। और उनका नवल वधू का रूप बना देती हैं। फिर उन्हें नचाती हैं। दोनों के कपील गुलाल मल देने से ताल ही जाते हैं। फिर वे दोनों कुंज में आलिंगन बढ़ हीकर छतराते हैं। जब श्रीकृष्ण केशर का रंग उन पर छिड़कते हैं तो राधा जी फुर्ती से शरीर मोड़ कर बचा जाती हैं। राधा जी बार करती हुई कहती हैं, कि अब की बार, संभल कर खेलना, खेल। श्रीकृष्ण अपनी पाग बचा लेते हैं। भक्त की इन सब विलास लीलाओं और क्रीड़ा व्यापारों की देखने की उत्कट अभिलाषा है।

कहत छबीली खेल सों, संभरि खेलि पाग ।

लखी लतन की ओट ह्वै, लाल बचावत पाग ॥ १

भक्त भगवान् की लीलारत देखने की कामना करता है। यही सखी भाव है। वृन्दावन जाने से पहले ललित किशोरी जी के अन्तःकरण में यह भाव अधिक था। इसीलिए अभिलाषा माधुरी में इसके अपेक्षा-कृत अधिक पद्य आये हैं।

वृन्दावन शतक प्रकरण के अन्तर्गत 'उत्कण्ठा' उपशीर्षक देखकर १५ पद्य इसी भाव के कवि ने दिये हैं। यह सब अभिलाषा का ही रूपान्तर है।

राधा और कृष्ण के दर्शनों को कवि के नेत्र अत्यन्त आतुर हैं। आयु बीतती जा रही है। कवि की प्रार्थना है कि जिस प्रकार भी हो सके उसे वृन्दावन में युगल कवि और उनके विलास रास का दर्शन हो। इसके लिए वह वृन्दावन में 'कूकर झूकर' होकर भी रहने की तैयार है। पशु, पक्षी, पत्थर, तृण, धूल का कण, कुंआ-बावड़ी, कुछ भी हो, वह वृन्दावन में बने, यह उनकी उत्कण्ठा है।

राधाकृष्ण के विरह में नेत्र जल कर रास बन गए हैं। प्राण महायात्रा के पथिक बन चुके हैं। विनय है कि इन्हें वही आवास मिले। जिह्वा राधा कृष्ण का नाम रटती रहे, शरीर पर ब्रज की रज का लेप हो और नट के होंकर की भाँति रसिकों के साथ भटकता फिरे यह भक्त की विनय है :

रटौ रसन श्री जुगल को, ब्रज रज धारौँ अंग ।

जटत रहौँ नटबटा सम, श्री बन रसिकन संग ॥ २

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ललित किशोरी जी की विनय अन्य भक्तों की विनय भावना से भिन्न यह याचना है कि वह राधाकृष्ण के शृंगार रत रूप का दर्शन और उसके रस का आस्वादन करे।

(६) वृन्दावन

यह सदा एक रस रहता है। बारही मास सुहावना बना रहता है। इसकी रज भक्तों के लिए जीवनमूरि के समान है। इसकी कुँजी में श्यामा और श्याम के दर्शन होते हैं। उन्हें देखने के लिए भक्तों

१- अमिताभमाधुरी पृ० १०। पृ-६१

२- ,, ६६

के नेत्र ऐसे आकुल व्याकुल रहते हैं जैसे बिना जल के मछलियाँ छूट पटाती हैं :

वृन्दावन कृजल लहौं, श्यामा श्याम प्रवीन ।

नैना अति अकुलात हैं, जैसे जल बिन मीन ॥ १

वृन्दावन के प्रकृति सौन्दर्य पर ललित किशोरी जी की दृष्टि उतनी नहीं पड़ी जितनी वहाँ के कृजों में राधा और कृष्ण के विलास विहार भर पड़ती है। राधिका जी से वे अपना विनय व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मुझे वृन्दावन के दर्शनों का सीमाग्य प्रदान करें, जिससे मैं उसके कृजों में कभी गुलाब के फूल को अपनी उँगलियों में घुमाते, मनोमुग्धकारी श्रीकृष्ण को देखसूँ। वे कभी अपने हाथों में फारी फाँदे प्रिया राधा जी को जल पि-
लाते हैं, कभी गीवर्धन की छाया में राधिका जी की बेसर से अपने वनमाल सु-
झाते हैं। गोकुल के मार्ग में दोनों राधा और कृष्ण इस की बातों में उलझे
हुए खड़े रहते हैं। दोनों में 'नैना सैनी' होती रहती है।^३ कालींघी के
झूल पर दोनों अपने नेत्रों की कोरें मिलाए खड़े ही जाते हैं। श्री कृष्ण वंशी
बजाते हैं और राधा जी उसका आस्वादन करती हैं। बरसाने की खीर में जाकर
श्रीकृष्ण राधिका जी के साथ दधिदान के लिए अड़ करते हैं।^४

कहीं वृन्दावन की गहन कृजों में राधा जी के
पेरीं में धूल लग जाती है तो श्रीकृष्ण अपने पट से उसे झाड़ते हैं। शरद ऋतु
के दो चन्द्रनाजों के समान वे कृज में से उदित होते हुए प्रतीत होते हैं :

प्यारी फा मग रज लगी, फारत पटहि गुविन्द ।

निरखहुँ गहवर कृज में, उदय युगल सरदिन्द ॥ ५

१- अमिताभमाधुरी पृ० २।१३

२- ,, पृ० २।१६

३- ,, पृ० ३।२५

४- ,, पृ० ४।३०

को किल वन में राधा जी के अंगों पर मनीने वस्त्र हैं। उनमें से अंग माधुरी को देख देख कर श्रीकृष्ण रूिफते हैं। इस प्रकार कुँज की लताओं को हटाते हुए वे दोनों विहार करते हैं। कुसुम सरोवर पर दोनों कभी आपस में फगड़ते हैं। एक दूसरे को फकफकौरते हैं और अपनी अपनी मुक्ता मालाओं को सुरफाते हैं :

फकफकौरत फिगरत दोऊ, विधुरत मुक्तामाल ।

कुसुम सरोवर तट लखी, राधा मदन गुपाल ॥ २

इस प्रकार ललित किशोरी जी ने वृन्दावन के विभिन्न स्थलों पर राधा कृष्ण की शृंगार केलियों का बिम्बात्फक चित्रण किया है। उसके दर्शनों के लिए भक्त कवि के नेत्र सतृष्ण और लालायित हैं। पर वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य से उनका विशेष प्रयोजन नहीं है। उनकी कल्पना और अभिलाषा का विषय वृन्दावन में विशेषतः उसके कुँजी में होने वाली युगल दम्पत्ति की विलास लीला है। कवि के नेत्र युगल कवि के दर्शनों को व्याकूल रहते हैं। उसकी कामना है कि वृन्दावन की मोर कुटी के मगरन्ध्रों से कुँज के भीतर विराजमान युगल मूर्ति के चन्द्र मुखों को देखे -

फिर सम दृग अकूलित हैं, दस युगल कवि बुंद ।

मोर कुटी मगरन्ध्र हैं, निरसई आनन छन्द ॥ ३

वृन्दावन की प्रसीसा और माहात्म्य पर ललित किशोरी जीने २४० तो दोहरे ही लिखे हैं। कुछ मुक्तक पदों में भी इसी को विषय बनाया है। यहाँ रसिकों का समागम होता है और उसके प्रभाव से रस रीति उपजती है। संध्या के समय साधु मँडली स्कन्न बनी सिर

१- अभिलाषा माधुरी पृ० ११।३५

२- .. पृ० ११।३७

३- .. पृ० ३।१६

मुकाये और 'श्री वृन्दावन' 'श्रीवन' आदि बोलते हुए निकलती है। उनके दर्शन और सत्संग से रसामिता का जन्म पाती है। यदि कोई वृन्दावन का ध्यान करते करते सो जाय तो सारी रात स्वप्न में यमुना किनारे^{पर} हीने वाली युगल केलि के दर्शन होते रहते हैं :

वृन्दावन को ध्यान धरि, सोय जाय जो वीर ।

युगल केलि देखी करै, सब निसि जमुना तीर ॥ १

श्रीराधा जी ने कृपा कर जिन्हें वृन्दावन में निवास का सौभाग्य प्रदान कर दिया है उनके चरणों की धूल का स्पर्श करने से हृदय में उल्लास उत्पन्न होता है।

तीर्थों में साधु समागम और उनके सत्संग का महत्त्व सभी भक्ति सम्प्रदायों में स्वीकार किया गया है। भक्तशिरोमणि तुलसी दास जी सत्संगति के सबसे अधिक प्रशंसक हैं यद्यपि उनकी सत्संगति तीर्थों तक ही सीमित नहीं। परन्तु तीर्थ स्थानों में वह विशेष रूप से और प्रचुरता में मिलती है- इस पर विवाद नहीं किया जा सकता। यह अवश्य विचारणीय प्रश्न है कि तीर्थ स्थलों में भगवत्त्व के स्मारक, मंदिर, भगवान् के विग्रह आदि अधिक महत्त्वपूर्ण हैं या वहाँ साधना में लगे साधु रन्त अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ललित किशोरी जी ने साधु समागम को महत्त्व दिया है। इसी भाव का भागवत-कार का भी एक ^{पद्य} बड़ा प्रसिद्ध है। उनका कहना है कि तीर्थ जल का नाम नहीं है। देवता मो मिट्टी या पत्थर के नहीं होते। तीर्थों में पाये जाने वाले साधु सन्तों का बार-बार दर्शन करने से मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। वास्तविक महत्त्व इसी का है :

नह्यम्भानि तीर्थानि न देवा मृच्छितामयाः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ १

अन्य भक्तों की भाँति शाह जी ने भी वृन्दावन की अन्य सब स्थानों से श्रेष्ठ बताते हुए कहा है कि अन्य क्षेत्र की इमरती भी कड़वी और वृन्दावन की भूल भी मिश्री से अधिक मीठी लगती है। इसके करीलों पर कल्पद्रुम न्याँझावर हैं। करीलों की ओट में से तो युगल विहार दिखाई देता है। कल्पद्रुम की ओट में कुछ भी नहीं। इसके वृक्षाँ की छाया में दिन रात युगल श्रीराधा और कृष्ण विहार करते हैं। इसलिए वृन्दावन तीर्थकुण्ड से भी बढ़कर है।

परन्तु वृन्दावन सबके लिए सुलभ नहीं है। जो लोग कुछ दिन प्रीति के नगर में अतुराग मार्ग पर ठीकर खा लेते हैं; उन्हीं के नेत्रों में वृन्दावन की रस माधुरी फलकती है। अन्य नगर, ग्राम और घर घुँघुकी की भाँति तुच्छ है। उनको कौन ललवाये ? वृन्दावन हीरा के समान बहुमूल्य पदार्थ है। इसे गवाँ देना मुश्किल है। इसीलिए भक्त कवि 'बाँचर पसार कर (सही भाव में) राधा जी से भीस माँगता है मले ही वह पशु बने, पक्षी बने या पत्थर, पानी उथवा घास बने। पर उसे वृन्दावन में वास मिले :

पशु पक्षरु होहु कहू, पाहन पानी घास ।

माँगो बाँचर पसारि नित, वृन्दावन को वास ॥ ३

वृन्दावन ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ से भी ऊपर है। उनसे बढ़कर है। जो उल्लास वृन्दावन में रखकर अनुभूत होता है वह न वैकुण्ठ

१- श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०।४६।३१

२- अमिताभमाधुरी पृ० १३।२०

में है और न ब्रह्मलोक में है। ये दोनों तो विद्वानों और भक्तों की कल्पना के देश हैं। जबकि वृन्दावन प्रत्यक्षा अदिगीचर और भावना का क्षेत्र है।

अन्य प्रदेशों से इसकी क्या तुलना की जाय ?
वहाँ तो चतुर लोग भी विषय वासना की ही बातें करते रहते हैं । वृन्दावन का बावला व्यक्ति भी " रोध श्याम , राधे श्याम " रटा करता है :

आन देश के चतुरहु, कहीं विष्णु अठ जाय ।

वृन्दावन को बावरी, रटे राधिका श्याम ॥ १

शाह कवि के जीवन चरित के प्रसंग में यह बताया जा चुका है कि वे लखनऊ में रहते हुए वृन्दावन में आने के लिए और वहाँ सदा के लिए बस जाने के लिए अत्यन्त लालायित रहते थे । अन्ततः वे यहाँ आकर बस ही गए । इतना ही नहीं, उन्होंने लाखों रुपया व्यय करके सुन्दर देवालय बनवाया जिसको उन्होंने निकुंज माना । इस ललित निकुंज में अपने आराध्य युगल विग्रह की स्थापना कर उन्होंने की पूजा अर्चा में अपना संपूर्ण समय लगाते थे । वे तो अपना प्रत्येक क्षण इस भावना में व्यतीत करते थे कि " श्री राधा और श्रीकृष्ण ' निकुंज " में विहार कर रहे हैं और वे रन्ध्र मार्ग से उसका दर्शन सुख पाकर आह्लादित हो रहे हैं। शाह जी ने केवल एक बार की श्रद्धा को छोड़कर कभी वृन्दावन से बाहर पैर नहीं रखा :

रसिकन के यह नेम हैं, प्राणहु जो कदि जाय ।

वृन्दावन की सीमाओं, बाहिर धरै न पाय ॥ २

१८५७ के विद्रोह के प्रसंग में जब उन्हें दिल्ली

१- अमिलाषमाधुरी पृ० १५।३६

२- , पृ० १५।४०

बुलया गया था और फाँसी का दण्ड भी सुना दिया गया था तो शाह जी ने अपनी अन्तिम प्रार्थना फिरींगी अधिकारियों से यही की थी कि उन्हें फाँसी वृन्दावन में ही दी जाय । इस पर उन्हें समर्पित भक्त समझ कर औरजों ने मुक्त कर दिया था । अतः यह सत्य है कि शाह जी का वृन्दावन प्रेम और उसके विषय में उनकी भावनाएँ हृदय के अन्तरतम में निगूढ़ थीं । वे उनके जीवन का अंग थी ।

वृन्दावन राधाकृष्ण के युगल का स्मारक ही नहीं उनका प्रतिरूप है। श्याम के मधुर अधरों का स्मरण कर कहे यहाँ दिन रात वंशी नाद होता रहता है। दसों दिशाओं में राधा और कृष्ण की गौर और श्याम कवि कायी हुई लगती है।

गौर श्याम कवि हैं हैं है, दश दिशि नितरि विलोय ।
राधा वल्लभ मई ससि, सब वृन्दावन होय ॥ १

यहाँ के पत्तों और फूलों में दंपति का रूप फलकता है। यहाँ के पक्षी भी राधा कृष्ण का नाम ही रटते रहते हैं^२।

राधा जी कहती हैं- वृन्दावन मेरा है और कृष्ण कहते हैं- मेरा है। अन्य लोग भी ऐसा ही विवाद करते हैं। यहाँ के वृक्षा और लताएँ युगल विहार के उफारण जैसे लगते हैं। वृक्षाँ पर फूल आते हैं, तो युगल और फल भी लगते हैं तो वे भी दो दो अर्थात् युगल । पौधे भी उगते हैं तो दो ही दो । संपूर्ण वनस्पति युगल का प्रतिरूप है :

युगल युगल फूलें सुमन, युगल युगल फल होंय ।

१- अभिलाषमाधुरी पृ० १८। ७४

२- , , ७०

युगल युगल घुम ऊपरी , श्री वृन्दावन मीय ॥ १

लताएँ वृक्षाँ के गले में बहिँ छातकर उफकती
हैं । कुछ वृक्षाँ पर मीती लगे हैं। कुछ पर लाल रंग की चुन्नी फैल गई है ।
किसी पर कुँडल लटके हैं तो किसी पर झूमका । सब युगल विहार के साधन
जुटा रहे हैं :

कहूँ कहूँ द्रुम मुतिया लगे कहूँ चुन्नी रतनार ।

कहूँ कुँडल कहूँ झूमका , वृन्दावन तरु डार ॥ २

इस प्रकार ललित किशोरी जी की रस मग्न
भक्त दृष्टि में वृन्दावन राधाकृष्ण युगल के ली के दर्शन का चित्र है, अपनी
प्राकृतिक सुषमा से रसमय है, वह वैकुण्ठ अथवा कैलाश से भी बढ़कर है। यहाँ
नित्य युगल विहार होता रहता है। यह युगल कवि का ही प्रतिरूप है। यहाँ
के कुँज कुटीरों में श्रीकृष्ण की चञ्चलता की हटकने के लिए राधा जी की " नहीं
नहीं " की ध्वनि होती रहती है और उसकी रमणीय माधुरी की सखियाँ
कर्णपुटी से पीते पीते अघाती नहीं हैं :

श्री वन कुँज कुटीर सुनि, नाहिँ नाहिँ धुनि नाहिँ ।

ललित माधुरी छि मग, पीवत अलि न अघाहिँ ॥ ३

(७) युगल विहार का महत्त्व

युगल विहार सखी सम्प्रदाय का सर्वाधिक
महत्त्वपूर्ण सिद्ध है। भाव और लीला की दृष्टि से इसमें संकोच बढ़ता गया है।

१- अभिलाषमाधुरी पृ० १६। ५५

२- .. पृ० १८। ६२

३- .. पृ० २०। ६६

भक्ति के पंचि भाव शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर में से केवल मधुर को ही इसमें स्थान मिला है। मधुर भाव के आलम्बन और आश्रय राधा कृष्ण में से राधा जी को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है। उसमें भी केवल रति विलास ध्यान और उपासना का केन्द्र रहता है। कलित-किशोरी जी का मत है कि जो व्यक्ति युगल विहार अर्थात् राधा और कृष्ण की शृंगार कैलि का गान नहीं करता, जिसके मन में दंपति के अभिसार के लिए उल्लास नहीं रहता, उसके पास भी नहीं बैठना चाहिए :

दंपति नित अभिसार की, जिनके नाहिं हुलास ।

गावै जुगल विहार ना, तज धूतिन की पास ॥ १

कवि ने २०० दोहे तो स्पष्टतः इसी प्रसंग में लिखे हैं अन्य पद्यों में भी किसी न किसी प्रकार युगल विहार ही वर्णित हुआ है। इसके महत्व, गोपनीयता और रसवत्ता के विषय में भी अनेक पद्य रचे हैं। वर्णन की भूमिका में व्यक्त किए गए विचारों से आभास होता है कि ललित किशोरी जी के हृदय में इस प्रसंग के लिए बड़ी महिमा और गौरव का भाव है ।

कवि के मन में तो युगल विहार का गायन करने की उस पर कविता लिखने की कामना उठी परन्तु वह किभाकते हैं कि "मति मलीन, मति हीन" होकर वह इसका कैसे पार पा सकेंगे । शृंगार सुधा का समुद्र है। वह सब से अधिक दुर्लभ और दुर्गम है। इसकी थाह और पार धीस जाने पर ही मिल सकती है। गुरुओं और आचार्यों की कृपा अवश्य इस कार्य में सहायक बनती है। राधा गोविन्द जी की कृपा से तो यह कार्य क्षणा सुगम

बीर सुस्पष्ट हो जायगा ॥ जैसे हाथ की रेखाएँ होती हैं। गुरु कृपा जल में बावली के समान होती है। बादल समतल श्रेष्ठ भूमि पर भी बरसते हैं बीर ऊँच साँव कृष्ण मि पर भी। इसी प्रकार गुरु अपने सुख शिष्यों पर तो कृपा करता ही है, सुख भी उसके अनुग्रह के भाजन बनते हैं :

हरी सतगुरु कृपा में, तन कह नाहिं विचार ।

सुतह सुभूमि कृष्ण मि में, कहीं जलद सुवार ॥ १

युगल विहार के रहस्य की अनुभूति प्राप्त करने के लिए पुरुष भक्त की भी स्त्री भाव अंगिकार करना पड़ता है। इस 'यो-यिता पुरुष' भाव के बिना अतीत अथाह और ^{अतः} रूप शृंगार का प्रवाह हृदय में स्थिर नहीं रहता। इसलिए पहले भामिनी भाव, उसके बाद शृंगार रस की भावना और फिर अन्त में युगल विहार की गाने, सुनने और देखने की क्षमता उत्पन्न होती है :

रस शृंगार अतः है, अगम अतीत अथाह ।

बिना योयिता पुरुष के, धीरे न हिये प्रवाह ॥

प्रथम भामिनी भावना, पाके रस शृंगार ।

ता पाके गावी सुनी, देखी जुगल विहार ॥ २

युगल विहार की तुलना में ब्रह्मानन्द भी अत्यन्त छटा है। जैसे सूर्य के प्रकाश के सामने रेणु का प्रकाश फीका प्रतीत होता है :

जुगल विहार के रस में, तुलै न ब्रह्मानन्द ।

१- अमिताभमाधुरी पृ० ३१। ६

२- ,, ८। ६

३- प्रातःकाल के समय गवाक्षा में आने वाली सूर्य की किरणों में पड़ने से धूल के उड़ते हुए कण प्रकाशमय लगते हैं पर बाद में सूर्य के आकाश में बढ़ जाने पर वे प्रमाहीन हो जाते हैं।

रेनु प्रकाशानन्द जग, भूरज सामुहिक मन्द ॥ १

इसका आस्वाद यदि हृदय में उदित हो जाता है तो व्यक्ति की आन-कान तो टूट ही जाती है, बुद्धि की तर्कना भी समाप्त हो जाती है, जैसे आगन में बिजली के कौंध जाने पर वहाँ के निवासी की आँखें चौंध जाती हैं :

जुगल विहार सुदामिनी, कौंधि जाय जा केन ।

आन कान टूट तुरत, चौंधि जायै मति नैन ॥ २

जिनके हृदय में जुगल विहार का रस उदित होगया है, कवि उनकी दारुता तक करने को तैयार है। जिनके नेत्रों में जुगल विहार के आनन्द से आँसू आ जाते हैं उनकी जूतियाँ उठाये उनके साथ साथ घूमना पड़े तो भी अच्छा ।

ललित किशोरी जी उन पुराणों और शास्त्रों को महत्वहीन समझकर दूर से ही नमस्कार करते हैं, जिनमें जुगल विहार की चर्चा नहीं है। रीचकता का गुण इसकी उपादेयता को निःसंदिग्ध बना देता है :

लिख्यो न शास्त्र पुरान जिहि, रीचक जुगल विहार ।

दूरिहिं तैं करि दीजिए, नमस्कार सुकुमार ॥ ४

१- अमिताभमाधुरी पृ० ३१।१०

२- ,, १२

३- ,, १५-१६

४- ,, पृ० ३२।१८

रीचक यह इतना ही है कि जिसके हृदय में इसका चस्का लग जाता है वह फिर सुत, पति, गृह, धन और राज काज तक को भूल जाता है। इस व्यापार में नफा ही नफा है। घाटा तो है ही नहीं। जिनके यहाँ युगल विहार के हीरे बिकते हों उनके पैरों में पड़ पड़ कर प्राणों को भी बचाने में दे देना चाहिए। इसकी बातें मित्रों से भी मीठी होती हैं। इसके बिना दास भी कड़वी लगती है।^१

इस भावना के प्रति कवि अपनी लास्था व्यक्त करता हुआ कहता है कि जिन महान् भक्तों की रातें युगल विहार देखते देखते व्यतीत होती हैं उनके चरण धी-धी कर पी लेने चाहिए। जिनके मन में साते, पीते और सीते समय युगल विहार की भावना अनी रहती है उनकी परिश्रमा करनी चाहिए और मोती भरे थाल उन पर न्यौंकावर कर देने चाहिए। युगल विहार की रसानुभूति रसिकों का व्यापार है। उनके घर पर पहर पहर नौबत बजती है और प्रभात एवं संध्या के समय युगल विहार के गायन में सितार बजते हैं। मंदिरों में घड़ियाल बजते हैं तो उनमें भी इसी का नाद गूँजता है।^२ ललित किशोरी जी स्पष्ट दो टूक बात कहते हैं कि "कोई व्रत करो", जप ध्यान करो, या नियम साधना करो। योग सिद्धि को प्राप्त करो या यज्ञानुष्ठान का पुण्य लाभ करो। मुझे उनसे विवाद नहीं है। मेरे तो युगल विहार ही सन्ध्यास्नान वंदन हैं, यही पूजा है और यही पाठ हैं :

काहू केव्रत नैम जप, जोग जग्य के ठाठ ।

मेरे जुगल विहार हो, संध्या पूजा पाठ ॥ ३

१- अभिलाषमाधुरी पृ० ३२, २१-२३

२- ,, २६-३३

३- ,, ३३, ३८

जिस रात सोते समय स्वप्न में युगल विहार के दर्शन हो जाते हैं वह रात्रि न जाने कब उसी सुख के ध्यान में व्यतीत हो जाती है। मुझे तो मसखरी, झूठ और दम्भ में भी कोई उसकी चर्चा करता है तो वह भी अच्छी लगती है। मन करता है कि इस शरीर को सारंगी बनाऊँ। नसी की तार बना दूँ। और उस पर युगल विहार का संगीत गाती रहूँ :

यातन की करि सारंगी, करै नसन के तार ।

बार बार सौनी सरे, सुचि धुनि जुगल विहार ॥ १

युगल विहार अवर्ण्य है और चर्म चक्षुओं के लिए अदृश्य भी। यदि हृदय में इसका चश्मा लग जाय तो फिर संसार में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता है। यह रसानुभूति कहने सुनने की है भी नहीं। इस रहस्य को यथार्थ रूप में तो राधा कृष्ण ही जानते हैं। उनका हृदय इसकी अनुभूति का और उनके नेत्र इसके प्रत्यक्ष दर्शन के साक्षी होते हैं। इसकी चर्चा नित्य नयी नयी लगती है।^२

उपर्युक्त विस्तृत और भाव मीनी भूमिका से अनुमान होता है कि ललित किशोरी जी के मन में राधा और कृष्ण की रति क्रीड़ा की महनीयता और सरसता निष्ठा बनकर विराजमान है।

(८) युगल विहार का स्वरूप

युगल विहार का सखी सम्प्रदाय में अर्थ होता है राधा और कृष्ण की रति क्रीड़ा। इसी को वहाँ निर्वृज लीला कहा जाता है। सखी भाव का भक्त यह कामना करता है कि इसे निर्वृज में कोई सेवा प्राप्त

१- अमिताभमाधुरी पृ० ३४।४१

२- ,, ४३।४५

हो जाय जो राधा जी के अग्रह से सम्भव होती है।

मोहिं मिलै ऐसी टहल , रंग महल के द्वार ।

देखि देखि दुग रैन दिन, गाऊँ जुगुल विहार ॥ १

राधा और कृष्ण नेत्रों के द्वारा आपस में स्मित करते हैं । वे नेत्रों द्वारा बिना बोले ही बातें कर लेते हैं । उनके अँगों पर सम्भोग क्रिया के चिह्न स्पष्ट दिखायी देते हैं। सखियाँ यह सब देखकर प्रसन्न होती हैं। मुख की पीक के चिह्न राधा जी के कपोल और फुत्की पर हैं। उनके अँजन का चिह्न श्रीकृष्ण के अधरों पर लग गया है। दाँतों के चिह्न राधा जी के कपोलों पर हैं और श्रीकृष्ण की वन माला के चिह्न राधा जी के वक्ष पर अंकित हो गए हैं। इस सबसे उनकी शोभा द्विगुणित हो गई है।

रतिकाल में वे दोनों अनेक शृंगार चेष्टारें करते हैं। अधर पान कर गले में बहिँ डाल दी हैं और प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए तिरछे होकर दर्पण में अपनी मुद्रा को देखकर सिहाते हैं। आप आप को अर्से बन्द कर लेते हैं और कदम से एक दूसरे को देखते हैं। इससे प्रेम का आवेश और मदन तरंग द्विगुणित हो जाती है। दोनों अपने अपने आभूषण उतार देते हैं । कंचुकी के बन्धन डालकर गाढ़ा लिंगन में दोनों आपस में लिपट जाते हैं :

भूषण जुगुल विहार में, न्यारे करि हलसाँय ।

खो लि खो लि बँद कंचुकी, मसकि हिये लपटाँय ॥ ३

रति श्रीझा का ललित किशोरी जी ने अत्यन्त ही सुता वर्णन किया है। साहित्यिक दृष्टि से इस सँदर्भ को देखा जाय तो अस्

१- अभिलाषमाधुरी पृ० ४०।५

२- ,, पृ० ४४, ५४-५५

३- ,, पृ० ३५।५६

लीला ही कहना पड़ेगा । हिन्दी के रीतिकाल में कवियों ने भी ऐसे वर्णन अधिक नहीं किए हैं। उनकी भी आलोचकों द्वारा कटु आलोचना हुई है। बिहारी मतिराम आदि कवियों ने शृंगार रस के अन्तर्गत नायक नायिकाओं की रति क्रीड़ा का जितना वर्णन किया है, उससे अधिक रतिभाव, आलम्बन का सौन्दर्य, उदीप्त की मादकता आदि विषयों पर भी पर्याप्त लिखा है। फिर भी आचार्य रामचन्द्र कुश्ल जैसे नीतिवादी आलोचकों ने 'ठाले बंटे का व्यापार' कहा है। डा० नगेन्द्र ने उसे 'मनोग्रन्थि ग्रसित' बताया है। ललितकिशोरी जी ने एक तो शृंगार रस के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है। दूसरे शृंगार के भी अन्य आयामों को छोड़कर केवल निर्दुज के अन्तर्गत रतिक्रीड़ा का ही भूयोभर्य वर्णन किया है। इसका कारण उनकी साम्प्रदायिक दृष्टि ही है। उनके वाङ्मय में कहीं भी ऐसा आभास नहीं मिलता कि उनकी दृष्टि लौकिक साहित्य की मर्यादा, परंपरा और शैली आदि पर हो। वे तो विशुद्ध भक्त हैं। साम्प्रदायिक सीमा में आबद्ध है। उनकी कल्पना, भाव और सज्जना क्षमता उसी के अन्तर्गत छिपाशील होती है। अतः इसे साहित्यिक मर्यादाओं की दृष्टि से देखना उचित न होगा। सभी भाव की उपासना रसोपासना है। इसका भी अर्थ शृंगार रस है। ललितकिशोरी जी के अनुसार शृंगार भी सम्भोग शृंगार के रूप में गृहीत हुआ है। उनकी दृष्टि से सुला, अश्लील होते हुए भी यह मादक नहीं है। उपासना का विषय है।

रतिक्रीड़ा के अन्तर्गत कौतुक भाव का निव्रण भी कवि ने किया है। गोकुष्ण आलिंगन-बद्ध हो जाने पर अपने पीताम्बर से दोनों के शरीर को लपेट देते हैं और कसकर बाँध लगा देते हैं। सखियाँ यह देख कर आनन्दित होती हैं :

आज निर्दुज तमाल महीं, अद्भुत कौतुक कीन ।

फट कटि जुगुल विहार मैं, अँधि ग्रन्थि दै दीन ॥ १

राधा जी को यह कहकर बहका देते हैं कि देखो आकाशमें कैसा चन्द्रमा उदित हुआ है। जब वे देखने लगती हैं तो उनका मुख चुम्बन ले लेते हैं और ऐसा प्रगाढ़ आलिंगन करते हैं कि वे अँक में छटपटा कर सिसकने लगती हैं :

वह वंदा कहि धौ सिहीं, ब्रूमै चपलि कपील ।

मसकत जुगुल विहार में, सिसकत अँक विलौल ॥ १

कभी श्रीकृष्ण राधा जी से कहते हैं कि तुम्हें जो ज्वला लगे वह मुझसे माँग ली पर एक बार अपनी ओर से मेरे बिना माँगी अपना मुख चुंबन प्रदान करो :

बोल्यी जुगुल विहार में, पी भावै सी लेहु ।

मुख चुंबन यह वार जो, बिन माँगी मुहिं देहु ॥ २

ललित किशोरी जी इस प्रसंग के वर्णन में विशेष रूप से भावाकुल और कल्पना प्रवण हो गए हैं। उनके पथों में कवित्व का सौन्दर्य जितना इस प्रसंग में दिखाई पड़ता है उतना अन्यत्र नहीं। कारण स्पष्ट है। यह उनका साधनागत हृदयस्थ भाव है। इसके अनेक वर्णन बिम्बात्मक और हृदयग्राही हुए हैं।

राधा जी र कृष्ण के अँकों में यौवन और रूप तरंगायित हो रहा है। वे दोनों एक दूसरे को इस भूमिका में देखते हैं तो उनके रीम रीम से विहार की माँगी उठती है :

जोवन रूप तरंग अँग, दुगन निहार निहार ।

रुम रुम सीं जाँच ही, जुगुल विहार विहार ॥ ३

१- अभिलाष माधुरी पृ० ३८।६१

२- ,, ४५।६२

३- ,, ४८।६६

श्रीकृष्ण ने राधा जी की आलिंगन बढ़ कर लिया है और अपने वक्ष से लगाकर बार बार चुंबन कर रहे हैं। छटपटाती राधा जी ऐसी लगती हैं मानों बादल में घिरी बिजली 'हा हा' सा रही है।

तजत न धन अँम लसत, चुसत अधर उर लाय ।

देखी युगल विहार में, दा^{मि}न्ही हा हा साय ॥ १

राधा कृष्ण युगल विहार के समुद्र में जब धँस जाते हैं तो उससे जो हिलोई उठती है, ललित किशोरी उन्हीं की आनन्दानुभूति करते हैं। उनका ललित माधुर्य गंगा के समान है और यह रति विहार सागर के समकक्ष है। सखियाँ जो उसके रस का आस्वादन करती हैं वह गंगा सागर में स्नान करने जैसा है :

ललित किशोरी लीजिए, रस तरंग हिलफौर ।

लँपट जुगल विहार के, सिन्धु धसे सरवोर ॥

ललित माधुरी गंग सौ, सागर जुगल विहार ।

गंगा सागर न्हाइये, रसिक वध्वंटी नार ॥ २

ललित किशोरी जी का जैसा वैभवपूर्ण जीवन था और जिस प्रकार वे राजस वातावरण में जन्मे और बढ़े थे : उसका प्रभाव उनकी भक्ति भावना पर भी पड़ा है। राधाकृष्ण के सुरत विलास में राजस जीवन के कुछ ^{तत्त्व} ~~समस्या~~ इसीलिए आ गए हैं। रति क्रीड़ा के समय अपने आलिंगन बढ़ रूप की राधा और कृष्ण दर्पण में देखते हैं। वे दोनों रति काल

१- अभिलाष माधुरी ६५

२- ,, पृ० ४८।१००-१०१

३- ,, पृ० ४०।११

मैं जौंज जौंज कर मधुपान करते हैं। उससे उल्लसित होकर रति क्रीड़ा में लस्त पस्त होकर फिर मग्न हो जाते हैं :

जौंजि जौंजि पी पी मधू, वधू रसिक हलसाय ।

फिरि फिरि जुगल विहारैं मैं, लस्त पस्त ह्वै जाय ॥ १

(६) रतिविलास नित्य है

राधा और कृष्ण की रति क्रीड़ा अलौकिक विलक्षण है। वह भाव लोक का साक्षात्कार है। इसलिये जागतिक रतिक्रीड़ा से वह विलक्षण हो जाती है। लौकिक रतिसादि सान्त और कालावधि होती है। पर यह दिन रात, अनवरत, अनवच्छिन्न चलती रहती है :

निशिदिन रतिघातन रहत, किन किन नूतन सैन ।

कौंज कौंज विहरत जुगल, ग्री वृन्दावन अैन ॥ २

वृन्दावन में राधा और कृष्ण दिन रात विहार करते रहते हैं। रसिकों का यह रास नित्य चलता रहता है। स्वप्न में भी वे आलिंगन मुद्रा को नहीं छोड़ते हैं। इन दो मित्रों में एक प्राण है :

निशिदिन विहरत विष्णु मैं, रसिक रास रस नित्त ।

सपनिहूँ अँक न छूडि ही, एक प्राण है पित्त ॥ ३

मदमाते ये सुरत रस में मग्न बने न आधी गिनते हैं न मेह । एक दूसरे को अँक में मर कर सरस स्नेह में भीगे वे चुंबन लेते रहते हैं :

१- अभिलाषमाधुरी पृ० ४५। ६५

२- ,, पृ० २२। १६

३- ,, पृ० २३। २७

मदमाते राते सुरति, अधी गिनत न मेह ।

मुख चुँबत कम मरे, मीजे सरस सनेह ॥ १

ध्रुवदास जी के अनुसार दंपती का अभिसार नित्य चलता रहता है। इसलिए जो व्यक्ति युगल विहार का गायन नहीं करता उसके पास भी नहीं बैठना चाहिए ।

इस प्रकार सखी भाव के उपासकों की भावना में युगल विहार, उनका शृंगार विलास नित्य शाश्वत है। लौकिक शृंगार की भाँति वह कालावधि नहीं है। रात्रि व्यतीत होने लगती है। परन्तु राधा कृष्ण के हृदयों में प्रेम-रस नहीं घटता । इसलिए मदन केलि के प्रीति वे दोनों सौ सौ बार सुरत का खेल खेलते हैं :

रैन घटी रस ना बटो, युगल विहार बहार ।

सुरति नवीन प्रीति दोऊ, खेलें सौ सौ बार ॥ २

इस प्रकार की सदा बहार, नित्य नवीन और शाश्वत रति क्रीड़ा के वर्णन के पीछे भक्तों का विचार यह है कि राधा और कृष्ण के रूप में जो परम तत्त्व लीला रत है, वह कभी अपने लीला व्यापार से विरत नहीं होता । सृष्टि का अणु अणु भी इसी आकर्षण विकर्षण की लीला में ग्रस्त होकर गतिमान है। तभी वह अवस्थित भी है। गति समाप्त हुई कि प्रलय उपस्थित हो जाता है। सखी सम्प्रदाय इसी प्रकार की राधा और कृष्ण की शृंगार लीलाओं को अपने सम्प्रदाय का रहस्य मानता है। और इस भाव का उपासक इस रहस्यमयी लीला के चिन्तन मनन में सदा मग्न रहता है।

ललित किशोरी जी ने इस कल्पा में इसी भाव से प्रेरित होकर लीलाओं का वर्णन किया है और अभिलाषमाधुरी में अपने शतादिक दोहों, पदों और अन्य छन्दों में प्रेम, शृंगार, वृन्दावन, युगल विहार, अष्टयाम आदि प्रसंगों के संदर्भ में इस भाव को व्यक्त किया है।

(१०) रास लीला

“रास कल्पा” आकार में “अभिलाष माधुरी” से बड़ी है परन्तु भक्ति सम्बन्धी विचार उसमें नहीं प्रतिपादित हुए। संपूर्ण रचना में लीलाओं का वर्णन है। जिन लीलाओं का अभिनय किया जाता है, जिन्हें “रास लीला” नाम से वर्णित किया जाता है, उनका रास कल्पा में वर्णन हुआ है। स्वामी हरिदास जी को सखी भाव के उपासक रास लीलाओं का प्रवर्तक मानते हैं। ललित किशोरी जी ने उसी परम्परा को आगे बढ़ाने का प्रयास रास कल्पा में किया है। उन्होंने कहीं कहीं हितहरिवंश जी एवं स्वामी हरिदास जी के पद उद्धृत भी किये हैं। वह स्वयं इन लीलाओं के अभिनय का संचालन भी करते थे। मारम्भ के दो दलों में ललित निवृज (शाह जी का मंदिर) से सम्बन्धित लीलारंग हैं। मंदिर के प्रांगण में, उसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण भागों में राधा और कृष्ण कभी पुष्प चयन, कभी जल विहार, कभी झूलना आदि का विहार करते हैं। इनका वर्णन प्रायः इतिवृत्तात्मक रूप में हुआ है। लीलाओं की संख्या १२५ है। कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिनका अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन किया है जैसे- हिंडोल, रास, स्वप्न विलास, जल केलि, होली। इनका भी अभिनय कराया जाता था। सखियाँ, समाजी आदि पात्र इन वर्णनों में भी उल्लिखित हैं। यह अभिनय का ही सूचक हैं।

लीलाओं में अधिक संख्या ऐसी लीलाओं की है जिनका ब्रज के लोक जीवन से सम्बन्ध है। इनका भागवत आदि प्राचीन ग्रंथों

में वर्णन नहीं है। जैसे फाघट लीला, घटवारिन लीला, सुनारी लीला, मनिहारिन लीला, मालिन लीला आदि। उनमें श्रीकृष्ण घटवारिन, सुनारी, मनिहारिन अथवा मालिन का रूप धारते हैं और उसके द्वारा राधाजी का स्वीयण लाभ करते हैं। इस प्रकार के श्रीकृष्ण के जीवन से छुड़े हुए उपाख्यान आज भी राज के लोक जीवन में विद्यमान हैं। उन पर रसिया आदि लोकगीत लिखे गये हैं।

इस प्रकार के उपाख्यान स्वरूपतः झुंकार भाव से बीत प्रीत रहते हैं। ललित किशोरी जी ने विशेषरूप से इनका पर्यवसान युगल विहार में किया है। सखियाँ दीनार के मिलन में सहायता करती हैं। मिल जाने पर प्रयत्न ही जाती हैं और उनके विहार का आनन्दानुभव करती हैं।

विसातिन लीला^१ में श्रीकृष्ण विसातिन (प्रसाधन की वस्तुएँ जैसे दर्पण, अंजन, मंजन आदि बेचनेवाली महिला व्यापारी) बनकर आते हैं। फिटारी में सब वस्तुएँ लाए हैं। सखियाँ के साथ राधा जी बैठी हैं। उन्हें बुला लेती हैं और अपना सामान बिसाने की कहती हैं। फिटारी सीतलेपर जैसेही राधा जी मुद्रा कर उन्हें देखती हैं श्रीकृष्ण उन्हें आलिंगन में बाँध लेते हैं। सखियाँ छट जाती हैं।

ज्यो, ज्यो बरखत भा मिनो चढ़त चौगुनी धौप ।

निकट हीत बरजोर त्यों प्रीति के लि रस कौप ॥

मानो नायक नागरिन सिमटी निकट फिटार ।

भुकि भक्ति नट सठ भपटि उठ्यो बीलि बलिहार ॥२

१- रसक लिख दल ७

२- रसक लिख दल ७ । ३३-३४

ऐसे प्रसंगों की भी सलित किशोरी जी ने रति विहार में पर्यवसित कर दिया है, जिनका स्वरूपतः उनसे सम्बन्ध नहीं है।
 'जैसे मासक चोरी लीला' श्री कृष्ण के बाल जीवन से सम्बद्ध है। फाँड़े जाने के भय से श्रीकृष्ण पास की स्क अटारी पर कूड़े कर चढ़ जाते हैं। वहाँ राधा जी बैठी हैं। भूट से चिक डाल देते हैं और उन्हें कालिंगन में कसने बतवा उनका चुम्बनवादि लेने में लग जाते हैं। सखियाँ बाहर से चिक रन्ध्राँ से यह शोभा देखकर मुग्ध होती हैं :

उभर कि बाल मग ला डिले चट चिक दीनी हौर ।
 निरसि निरसि मुख माधुरी डारत तिनका सौर ॥
 चिक संधि सौं निरसि के सलित किशोरी बाल ।
 वारि वारि शुभ वारती भामिनि भई निहाल ॥

०

०

कैसी वारति नित प्रति वारों ।
 चाँपत चरन रसिक वर नागर चितवत वदन निहारों ॥
 सलित किशोरी लै कर वटिया फलत प्राण निहारों ।
 मुख चुँवन हंसि कैं भरन पे राई नोन उतारों ॥ २

प्रसंगवश सलित किशोरी जी ने इन लीलाओं के वर्णन में कहीं कहीं भक्ति दर्शन की चर्चा भी उठायी है। कृतरजामी लीला १ में श्रीकृष्ण पासा के लि में जीत जाते हैं। राधा जी से वही शृंगार करने को कहते हैं। सखियाँ उनकी वाँसि बन्द कर देती हैं पर विशाल नेत्र होने के कारण

१- रसक लिका वल ७ । ३३-३४

२- ,, ६। ११-१३

उंगलियाँ मैं से भी भक्ति कर शृंगारस्त राधा जी को देख लेते हैं। बस कहते हैं : वह कहते हैं कि अब तो शृंगार हो चुका । इस पर राधाजी जब पूछने लगी कि वैसे बन्द होने पर भी आपने कैसे जान लिया तब श्री कृष्ण स्वयं को अन्तर्यामी बताते हैं। इस पर राधाजी कहने लगती हैं कि तब फिर हम अबोध बालाओं का आप से क्या सम्बन्ध ?

तुम अंतर्यामी कहे हम मानुष वृज्जाल ।

जीव ब्रह्म को संग कह कैसिक निवहे लाल ॥ १

इस पर श्री कृष्ण उत्तर देते हैं कि मैं भले ही अन्तर्यामी हूँ पर 'अबोलनौ' मुझसे सहा नहीं जाता :

फल फल पे अबोलनौ मो पे सह्यौ न जाय ॥ १

इस सबका व्यंग्य सारतत्त्व यही है कि पर तत्त्व श्रीकृष्ण लीलाभिलाषी हैं और एक फल के लिए 'अबोलनौ' अर्थात् लीला रहित नहीं रहता । वह लीला भी श्रीकृष्ण तत्त्व की राधा तत्त्व के साथ रसमय स्वभाव की होती है। यही सही भाव का भक्ति दर्शन है ।

इसके अनुसार राधा और कृष्ण नित्य वृन्दावन में नित्य विहार स्त रहते हैं। वह रसमय विहार रसिक भक्त ही भावना के नेत्रों से देख पाता है। रास लीला इस नित्य विहार का प्रत्यक्षायमाण रूप है। ललित किशोरी जी की कल्पना थी कि जो नित्य वृन्दावन में घटित हो रहा है वही उनके समक्ष प्रत्यक्ष है।

इन रास लीलाओं का एक यह पक्ष विशेष

१- रसक लिका १०६

२- ,, १११

उल्लेखनीय है कि ललितकिशोरी जी ने भगवान् को अपने समय के वाढ्य जीवन के संदर्भ में भी लीला निरत दिखाया है। फलभींग, मेवा, भींग, आदि के प्रसंग में अनेक फल और मेवा भगवान् की समर्पित किये हैं। ग्रीष्म विहार में फरनी, जल की फरनी, व्यंजन, आदि से उनकी सेवा होती है। जौहरिन लीला में श्रीकृष्ण जौहरी नारी बन कर आते हैं और अनेक प्रकार के रत्न राधा जी को दिखाते हैं। शाह जी के पास रत्नों का बहुत बड़ा भण्डार था। उसका उपयोग भगवान् की लीलाओं में करते थे :

त्वदीय वस्तु गी विन्द, तुम्यमिव समप्ये ।

उस समय के धनी समाज में जैसा सुख सुविधा का जीवन बन गया था उस सबकी भक्त भगवान् के चरणों में अर्पित करता है। भगवान् की भी इसका भींग करते हुए देखा चाहता है। इसीलिए "मधुपान लक्ष्मी" लिखने में भी उन्होंने सँकीच नहीं किया। इसमें राधा और श्री कृष्ण मधु (मदिरा) खरीदते हैं और उसका पान करते हैं।

सामान्यतः यह अनुचित लंगता है पर भक्त की भावना यही है कि वह अपने समय के उच्चस्तरीय जीवन के विलास के साथ भगवान् के दर्शन करना चाहता है और उससे वह सात्त्विक अभिमान प्राप्त करता है।

इन लीलाओं में शृंगार का अति^{रे}श्रिक भी वर्णित हुआ है। उसका समाधान भी हम साम्प्रदायिक आस्था की दृष्टि से प्राप्त कर सकते हैं।

सब मिलाकर इस कलिका में शाह जी ने अपनी अभिमत भक्ति भावना का प्रत्यक्षायमाण रूप काव्यबद्ध किया है। भगवान् के नित्य विहार की विविध रूपों में रूपायित कर उपस्थित किया है।

पंचम अध्याय

ललित किशोरी जी का काव्य- पदा

भाव- योजना

शृंगार, शान्त, हास्य

भाषा

ब्रजभाषा, संस्कृत, रक्ती बोली,
रेस्ता, फारसी, उर्दू,
राजस्थानी, भोजपुरी, कश्मीरी

शब्द-शक्ति

मुहावरे, लोकोक्ति

वर्णन-योजना

रूपक, उपमा, पूर्णोपमा,
मालोपमा, अतिशयोक्ति, प्रतीप,
भ्रान्तिमान, उत्प्रेक्षा, तद्गुण,
व्यतिरेक, अनुप्रास, यमक ।

शैली

छाया शैली, बिम्ब योजना
काव्यरूप और शैली, कूट शैली,
प्रतीक प्रयोग

कन्द

दोहा, चौपाई, रीता, सार,
कुँह लिया, ताटक, पदपादाकुलक, वीर,
सरसी, विष्णु पद, सुमेरु, कवित्त
समान सर्वया ।

राग

ललित किशोरी जी का काव्य पद्य

१- भाव योजना

ललित किशोरी जी की साधनागत अनुभूति शृंगार भाव की है। वे सखी भाव के उपासक हैं। राधा और कृष्ण की दिव्य रति में सखरी या सखी भावना उनकी उपासना है। अपने विनय भाव में जब कवि राधा जी से याचना करता है तो वह भी शृंगार भाव भावित ही है। उसकी अभिलाषा है कि वह कब राधा कृष्ण युगल की गलबर्ही दिये वृन्दावन में विचरते देखेगा, वृन्दावन की झुंजी में कवि पुनः दोनों की एक दूसरे से अक्षि जीड़े, मुजाईं मिलारें, दोनों अपने मुख दर्पण में देख देख कर और कपोलों की एक दूसरे से सटाकर ईसते हुए कवि उन्हें कब देखेगा^१। आदि आदि राधा जी से यही उसकी चरम विनय है।

वृन्दावन का प्रेम कवि की भक्ति भावना का महत्त्वपूर्ण अंग है। उसमें भी युगल कवि का शृंगारमय रूप ही उसे दृष्ट है। "वृन्दावन की सखियाँ तारागण हैं, राधा और कृष्ण चन्द्रमा हैं। वे नृत्य रास स्थली में विहार करते हैं। जब वे माधुरी झुंज में विहार करते हैं तो कवि झुंजी के रन्ध्रों में नेत्र लगाये देखते रहना चाहता है।" जब वे स्नेह में सने शैया पर विहार करते हैं तो कवि उस समय कामना करता है कि उसका शरीर वृन्दावन की धूल में पड़ा रहे :

रसिक क्वीली सेज पे, विहरत सने सनेह ।

तिहि क्वि चितित ये अली, या रज में रहे धह ॥ ३

१- अभिलाषमाधुरी पृ० ३ । २०, २१, २३

२- ,, पृ० २७। ६६, ७०

३- ,, पृ० २७। ७१

शृंगार भाव का चरमीत्कर्ण युगल विहार के चित्रण में व्यक्त हुआ है। कवि की कल्पनाशक्ति, अनुभूति प्रवणता, बिम्बात्मक चित्रण शैली आदि गुण इसी प्रसंग में सबसे अधिक देखने की मिलते हैं। सखी सम्प्रदाय की यह केन्द्रीय भावना भी है। शाह जी ने युगल विहार का जैसा भावमय चित्रण किया है उसकी यदि लौकिक शृंगार के माफ़ण्ड से देखा जायेगा ४ तो वह अश्लील सा लगेगा। सुरत सीमोग की अनेक ऐसी चेष्टाएँ हुले रूप में कवि ने चित्रित की हैं कि वे सामान्य लोक मर्यादा के भीतर नहीं समातीं। पर यह सम्प्रदाय की दिव्य साधना का विषय है। उसके पीछे भावुक भवती की वैचारिक पृष्ठभूमि भी है। अतः इस प्रसंग की साम्प्रदायिक दृष्टि से ही देखा समीचीन होगा। सम्प्रदाय में रहस्य का छुट भी इसके साथ लगा रहता है, अतः दिव्य भक्ति साधना के क्षेत्र में श्लीलता-अश्लीलता का प्रश्न उठाना अप्रासंगिक है।

“युगल विहार में कभी-कभी” हूँ हूँ, करते हैं, कभी एक-दूसरे की हटकते हैं, कभी “हाँ” करते हैं। सिसकारी भी भरते हैं। कभी कभी मँहिले तरेते हैं तो कभी मुसकाते हैं। कपीली का स्पर्श कर चिह्न की छूते हैं। बालों की बार-बार सँवारते हैं। वस्त्र और पैरों का स्पर्श कर विहार में हूब जाते हैं। धीरे-धीरे आलिंगन में कस जाते हैं। पैरों में सुँपी लग जाती है। जघाओं के वस्त्र सरका कर रति क्रीड़ा अथवा विहार करते हैं।

इस प्रकार के शताधिक चित्र शाह जी ने अपने वाङ्मय में दिए हैं। इस कल्पना में जितनी भी लीलारस रास शैली में चित्रित की हैं, उन सबका चरम पर्यवसान युगल विहार में होता है। उदाहरण के लिए

१- कृपया भक्ति का चतुर्थ अध्याय देखें

२- अभिलाषमाधुरी पृ० ३६। ६९, ६५, ६८

नीचे लिखा पद्य प्रस्तुत करते हैं। 'शूंक विहार' सीता का अंतिम पद्य है। वक्ता समाजी है। वृन्दावन में राधा और कृष्ण अकेले मिल गए हैं। राधा जी शक्ति हैं कि कीर्ति देख न ले। कृष्ण भी अपने व्यापार से विरत हो जाते हैं। पर जब देखते हैं कि यह केवल शक्ति थी, सत्य नहीं तो वीरों के लिए रत हो जाते हैं -

शूंक मसकि पी मुदित निहारै ।

हुँवत कसि कपील अधरामृत पीवत तृप्ति न अंत निहारै ॥

कैतिक सौहं करि करि कामिनि सौह दिवाय दिसावत कीर्ति ।

शूंक न मानत कहत भूँठ पी हीय जु हीनी हीय सु होई ॥

लाज न गढ़ी जात धक धक उर सुलत मुदत द्रुमलता न हारी ।

पैरी जान विलोकौ स्तहिं न वदन फिराय लाल बलिहारी ॥

सरस सरस रस मदन अंग अंग विवस भये विविध ललित किशोरी ॥

विसुध भई फाकिन हूँ हारी क्वकित भली जुगचन्द्र चकोरी ॥ १

इस शृंगार भाव की यह विशेषता भी है कि यह भाव प्रधान न होकर चेष्टा प्रधान है। एक भक्त कवि से पाठक भाव प्रधान शृंगार की ही आशा करता है। चेष्टा प्रधान शृंगार ती स्थूल और सात्त्विकता विहीन हो जाता है पर शाह जी की कल्पना में राधा और कृष्ण का नित्य विहार इसी प्रकार का है। सही सम्प्रदाय के अन्य भक्तों ने युगल शृंगार का चित्रण इतना सुला नहीं किया है। बकसी हंसराज ने 'सनेह सागर' में नौ तरंगों (सर्गों) के अन्तर्गत १६ प्रकरण प्रेम सीताओं के कल्पित किए हैं। उनमें कहीं भी इस प्रकार की स्थूल शृंगार^{के} चेष्टाओं का चित्रण नहीं है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि शृंगार का यह रूप शाह जी की व्यक्ति-

१- रसक लिका बल ४।४५८

२- सीपा० लाला भगवानदीन- साहित्यभूषण मंडली काशी, प्रथम संस्करण ०१९६७२

गत भावना की सृष्टि है। सम्प्रदाय की परम्परा ऐसी नहीं है। रति झीड़ा से सम्बद्ध चैष्टार अन्त है :

हरें हरें विजनी करे, सिथिलत नैन निहार ।
 हुलै न पानी अंग गति, बलि बलि जुगुल विहार ॥
 वह चंदा कहि धीसिहीं, चूमै चपलि कपील ।
 मसकत जुगुल विहार में, सिसकत अँक विलील ॥
 मदन मल्ल कूटि कूटि करे, हीड़ा हीड़ी कैलि ।
 तनि तनि जुगुल विहार में, कर नितंब कटि मैलि ॥ १

उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की अन्त चैष्टारों की सखियाँ देखते रहने की लालायित हैं और देख सुनकर वे मुदित होती हैं^२।

इस शृंगार भाव का एक मात्र आलम्बन राधा है। उपासना में वही आराध्य है, अतः कवि ने अपनी काव्य रचना का सर्वप्रमुख विषय इन्हीं की माना है। उनका जन्म, जन्म दिन का उत्सव, हिंडोल, वासि झीड़ा, सहज सौंदर्य, अलंकरण, शृंगार सज्जा, अष्टयाम आदि अनेक प्रसंगों में प्रेमासक्त मन से वर्णन किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि शाह जी का साहित्य प्रमुखतः राधामय है। उनके अंग सौष्ठव का एक पक्ष -

चंद से कपील गील, चपला से गँठ सीलि ३,
 अलकैं विलील अली अवली वसिंद की ।
 अँजन की रेश नैन, गँजन सु भान मैन,
 रँजन मनस शोभा बिबु श्याम बिन्द की ।

१- बभिलरंज पाधुरी- पृ० ३८ । ८६, ६१, ६२

२- ,, पृ० २६ । ६६, पृ० २७। ७०

ललिता किशोरी कटि ह्रीनि नाम रूप कूँड,
 गौरी क्लृप्ति हती गौरी गौ गीविन्द की ।
 गुल्फ की गुलाई सरस्वि हू न पाई ,
 स्फुट्टाई बरनाई लसि लाली वरविन्द की ॥ १

शृंगार सज्जित शुक्लामिसारिका राधा का

दूसरा चित्र-

कियो सिंगार सुकुमारि सुचि चदिनी ,
 सरस सत चंद सौं अंग लुनाई ।
 कसी कुच जर कसी कँठुकी अति लसी
 भनी सौं भनी सारी सुहाई ।
 परिहरि हीरावली कुमुद प्रफुलित गई ,
 चरचि चंदन चिकुर कवि छिपाई ।
 ललित किशोरी मग सुम्न बरसावली ,
 चली करि मलिन हींसि ससि जुन्हाई ॥ २

अधिकतर राधा जी के संयोग शृंगार के प्रसंग ही चित्रित हैं । पर अन्यत्र लीलाओं में उन्हें विरहिणी भी दिखाया है ।
 पूर्वराग के वियोग से पीड़ित राधा का एक चित्र -

कामिनि कौन दसा यह छोई ।
 संप्रम चित चितवत कक चीधी ॥
 लीचन सजल अबल सी जीई ।

बर्यो ये कबरी विधुरि गहं कहू
 बर्यो बँदुलि अधमाल तें धौहें ।
 कज्जल रेश देसियत जहें तहें ।
 नैन अहन का रात न सौहें ।
 दशनन की दुति आज मन्द बर्यो
 अधर अहनता कहाँ निचोहें ।
 बलि गुलाब सौ सुख सुख सागर
 तापर कहाँ पहुँता मोहें ।

० ०

तलित किशोरी सौह सचि कहू
 मोहें टोना के कहू सौहें ॥ १

श्रीकृष्ण इसके आश्रय हैं। इनके सौन्दर्य का चित्रण भी बनेक बार किया गया है। उसमें उदात्तता कम और कामुकता अधिक व्यक्त हुई है। राधा जी की महिमा बढ़ाने के लिए श्रीकृष्ण का स्वरूप कहीं कहीं अनुदात्त भी बन गया है। सामान्यतः उन्हें अनुपम सुन्दर चित्रित किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण राधा जी के ही नहीं सखियों के भी काम्य हैं पर वे भी ग्य श्री राधा जी के ही हैं :

मोहन रूप अनूप किशोरी ।

मुख लावण्य विलोकि लजाहीं छन्दु अनेकनकाम करौरी ।
 धीरारी अलकावलि मार्ये नील कमल पर भ्रमर उड़ै री ।
 वीरघ नैन मैं मदमाते श्रवन लागि कहू कह्यो चहै री ॥
 भुकुटी बँक छन्दु धन निषक अधर बिब अपकर्ण किये री ।

अद्भुत चिबुक चारु दसनावलि मृदु मुसक्यान मिठात हिये री ।
 बोलनि चलनि बैंक चितवनियाँ अनुपम बंसुरी विसद बजावै ।
 ललितमाधुरी कैल किनियाँ देखत बनै कहत नहि आवै ॥१

रस कलिका की लीलाओं के वर्णन में प्रकृति वर्णन रतिछीड़ा की पृष्ठभूमि के रूप में आया है। सधन कुंज, यमुना का तट, श्रीवन की लता आदि युगल विहार के मिलन स्थल बनते हैं। वृन्दावन का वर्णन अभिलाष माधुरी के २०० दोहों में हुआ है। वहाँ भी वर्ण्य युगल विहार ही है। दो बार बारामासी का प्रसंग अभिलाषमाधुरी में आया है। इसमें प्रकृति उदीपन के रूप में वर्णित है :

सगा कसाद बाद जमुना अति, वर्णाँ रितु आई ।
 रिमिफिम रिमिफिम मेहा बरसै, बूँदें सुसदाई ॥
 सुवामिनि दमक लगै प्यारी ।
 कौकिल कूक मोरिला कुक्कनि , फिफ फुकार न्यारी ।
 वनवन भीजत हुलसाही
 श्यामा श्याम रसिक रंग मीन, दीन गलबाही ॥ ३

शान्त

शान्त रस का स्थायी भाव साहित्य के रसाचार्यों ने निर्वेद माना है जो अभावोत्पन्न और प्रेम तत्त्व का विरोधी है, अतः उसका प्रेम भक्ति में कोई स्थान नहीं है। इसीलिए रूप गोस्वामी जी ने

१- रसकलिका पल ४।३६६

२- अभिलाषमाधुरी पृ० ८१ से ६७ तक

३- .. पृ० ८१।१

शान्त भक्ति रस का स्थायी भाव शम (शान्ति रति) बताया है^१

ललित किशोरी जी के वाङ्मय में शान्त रस रति अर्थात् शान्त भाव भावित भगवत्प्रेम कुछ पयों में अभिव्यक्त हुआ है। संसार के सुखोपभोगों से कभी भी विरक्त न होने वाले जीवों को लक्ष्य कर कवि कहता है कि भगवत्प्रेम सतत साधना का विषय है। जब चाहेंतब मिल जाय क्षन्ता सरल यह नहीं है।

जानत बाप सहस जुग जीएँ ।

जब तो चासि लैंहैं सुख लौं किंक फेरि जुगल कवि पीहैं ।

मनौ बाप की धरी धरीहर जब चाहैं लै लीहैं ।

ललित किशोरी तार तार जब हौ तब बैगियाँ सौहैं ॥ २

स्वयं को अधम बालसी बताते हुए वे कहते हैं कि मेरे जैसी (सखी भाव) बालसी संसार में कौन होगी । और हे राधे, बिना सेवा के छुट्टा पूर्ण करने वाली तुम्हारे जैसी कल्पनामयी भी कौन होगी ? मैं मन में थोड़ा भी संकोच नहीं करती हूँ । मुझे नित्य परोसी हुई पत्तल मिल जाती है। मैं तो जन्म जन्मांतरों से तुम्हारी कृपा पर फली पोबी हूँ ।

१- लक्ष्यमाणं विभावयैः शमिनां स्वाधत्तगित ।

स्थायी शान्तिरतिर्धरिः शान्त भक्तिरसः स्मृतः ॥

- हरिभक्ति रसामृत सिन्धु - पश्चिम विभाग प्रथम सहरी

पय ४

२- अभिलाषमाधुरी पृ० १५२। १८७

३- .. पृ० १५२। १६०

हास्य

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार ये पाँच भक्ति के प्रमुख अंग माने जाते हैं। अन्य हास्य, करुणा, वीर आदि भाव भी गौण रूप से भक्ति में उपयुक्त होते हैं। वे भक्ति के अंग बनकर आते हैं उसका संवर्धन करते हैं।

सलित किशोरी जी ने भी भक्ति के अंग रूप में हास्य भाव का उपयोग किया है। यह दो प्रकार का मिलता है- हास और उपहास। राधा और कृष्ण का प्रेम साहित्य जिस हास्य भाव से संवर्धित होता है वह हास है। राधा और कृष्ण दोनों इस बात पर आपस में फगड़ रहे हैं कि पान का बीड़ा खाने से हॉठ किसके अधिक रहे हैं। निर्णय दर्पण देखकर होता है और श्रीकृष्ण यह कह कर राधा जी का चुंबन ले लेते हैं कि हॉठ तुम्हारे ही अधिक रहे हैं :

फिगरत नव रंग लाल लली ।

तेरे भली रंगी ना बीरी मेरे कुसुम कली ।

सलित किशोरी मुखर विलोकत गर मुज मैलि कली ।

चिबु गहि छूमि कपोलन बोल्यो तोही रची भली ॥२

इसी प्रकार वे नेत्रों पर भी फगड़ते हैं कि किसके बड़े हैं।^१

वभक्तों की निन्दा में कवि ने उपहास का

१- हरिभक्ति रसामृतसिन्धु - उत्तर विभाग

२- रस कलिका दल ६। १६५

३- रसकलिका दल ६। १६६

प्रयोग किया है। उनकी खिल्ली उड़ाते हुए वह कहता है :

कलियुग पैड़ित निरसि सखी री ।

जुगुल दरस को जोग पाय मग जात हुतै मँजारि लखीरी ॥

फुटे वाप और संगिन को, फुटि जलो यह बात भखीरी ।

बूजेहू मग मिली बिलैया ललित किशोरी बात रखी री ॥ १

मगवर्शन के लिए भी मुहूर्त और शुक्ल देखने वाले पैड़ितमन्य लोगों का मार्मिक उपहास किया है।

इस प्रकार ललित किशोरी जी ने अपने साहित्य में मसृस रूप से शृंगार और गीष्ण रूप से व्यथारूप मात्रा में शान्त और हास्य रस का उपयोग किया है। शृंगार का भी रति क्रीडामय रूप अधिक चित्रित किया है। संयोग वियोग के जो भाव प्रायः काव्य विषय बनते हैं। उसका यहाँ अभाव है। इस विशेषता के पीछे उनकी साधनात्मक वास्था है।

२- भाषा

ईसा की उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध ललित किशोरी जी का काव्य काल है। संवत् १९३० अर्थात् सन् १८७३ में जाफ़ा देहा-वसान हुआ था। उस समय साहित्य के क्षेत्र में भाषा का संघि युग आया था। ब्रज भाषा पूर्ववत् प्रयोग में आ रही थी पर साहित्य के कुछ रूपों में खड़ी बोली प्रयुक्त होने लगी थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधुनिक युग प्रारंभ हो रहा था। साहित्यकारों ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली के लिए पृथक्-पृथक् क्षेत्र निर्धारित कर लिए थे। पर्य में ब्रजभाषा और गद्य में खड़ी

बोली वापस में अविरौधी भाव से प्रयोग में आ रहा था। गद्य-साहित्य की नई दिशा थी। उसके लिए भाषा का व्यावहारिक रूप अपनाना स्वाभाविक था।

दोत्र पुष्क होने पर भी इन दो भाषा रूपों का एक दूसरे को प्रभावित करना स्वाभाविक था। ब्रजभाषा का विगत चार सौ वर्षों से साहित्य में एकाधिपत्य रहा था। अतः उस काल का लेखक खड़ी बोली लिखते समय ब्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता था। कारक, परसर्ग, संज्ञाओं के रूप, वाक्य रचना का प्रकार आदि दोत्रों में यह प्रभाव देखा जा सकता है। इसी प्रकार उस काल की ब्रजभाषा भी खड़ी बोली से प्रभावित हो गयी थी। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ गया था जो खड़ी बोली की परिचायक विशेषता है। जिन लेखकों की गति उर्दू, फारसी में भी थी, उनकी भाषा में उर्दू के शब्द आने लगे थे। वे अपने रूपाकार में खड़ी बोली के निकट अधिक थे।

ललित किशोरी जी मूलतः लखनऊ के निवासी थे। वही जन्म, शिक्षा के और काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे। उन्हें उर्दू, फारसी का बहुत अच्छा अभ्यास था। इसके अनेक प्रसिद्ध अप्रसिद्ध शब्द उनकी ब्रजभाषा में मिल गए हैं। गजल भी उन्होंने लिखे हैं। इनकी भाषा कहीं उर्दू और कहीं फारसी है। शाह जी के इस फारसी भाषा बोध का उनकी ब्रज भाषा के स्वरूप पर इतना ही प्रभाव पड़ा है कि कहीं कहीं उसके शब्द मिश्रित हो गये हैं। पर वाक्य रचना, शब्दों की रूप रचना आदि ब्रज भाषा के व्याकरणानुसार ही है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शाह जी की काव्य भाषा उत्तरकालीन ब्रजभाषा है। अमिताभमाधुरी की ब्रजभाषा स्वच्छ, साहित्यिक

वीर सरल ब्रजभाषा है। नीचे कुछ पद उदाहृत किये जा रहे हैं। उनका भाषिक परीक्षण कर पूर्वोक्त निष्कर्ष ही निकलता है :

जाके बैतस मैं उगै, वृन्दावन अनुराग ।
 ताको बढ़तोई रहै, दिन दिन वीर सुहाग ॥
 उरफि जात लौचन वहीं, लता रन्ध्र दरसात ॥
 तही भवन लगि जात जहँ, वृन्दावन की बात ॥
 वृन्दावन छुट और टुक, बात न वीर सुहाय ।
 वृन्दावन मोकीं ससी, सपनिहुँ माँहि दिसाय ॥
 वानदेश के चतुरहुँ, कौं विषीं अठ जाम ।
 वृन्दावन को बाबैरो, रटै राखिा श्याम ॥ १

उपर्युक्त चार दोहों में उगै, बढ़तोई रहै ,
 उरफि जात, दरसात, लगि जात, सुहाय, दिसाय , कौं, रटै क्रिया पद
 हैं । ये सभी ब्रजभाषा के व्याकरण के अनुसार हैं। इनमें दरसात, सुहाय ,
 दिसाय तीन क्रिया पद कर्म वाच्य के हैं। सुहाय, दिसाय, पदों में 'य'
 प्रत्यय ब्रजभाषा की विशेषता है। इसका उत्तरवर्ती भाषा रूप 'ता'
 प्रत्यय से बनने लगा था । जैसे- 'दरसात' में है। कौं, रटै क्रमशः वर्तमानकालीन
 कर्तृवाच्य क्रिया पद हैं, इनका ब्रजभाषा का ही दूसरा रूप 'कहत है' ,
 'रटत हैं' , होगा जो पहले की अपेक्षा क्वाचीन है।

कार्त्तार्थ को स्पष्ट करने के लिए को, कौं ,
 मैं, के, की, प्रयुक्त हुए हैं जो सम्बन्ध , कर्म और अधिकरण कार्त्त के अर्थ को
 व्यक्त करते हैं। प्राचीन ब्रजभाषा में कार्त्त परसर्ग का प्रयोग अत्यल्प था ।
 संज्ञाओं के रूपों से ही कार्त्तार्थ स्पष्ट होता था । परसर्ग भी हैं , माँहि,

वादि थे । इस प्रकार ललित किशोरी जी की ब्रजभाषा उत्तर काल की है ।

संज्ञा शब्दों की देखीं तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की संख्या अधिक है।

तत्सम शब्द

उपर्युक्त चार दोहों में अतस, अतुराग, लोचन, सता, ऐंद्र, श्रवन, देश, चतुर आदि तत्सम शब्द हैं ।

तद्भव शब्द

सुहाग, वरसात, लगिजात, बात बिसाय, बठजाम आदि तद्भव शब्द हैं ।

इस प्रकार तत्सम, तद्भव शब्दों का लगभग समान मात्रा में गंगा जमुनी प्रयोग है। भाषा की रूप रचना अपनी अर्वाचीन रूप की ओर झुकी हुई है।

इससे भी अधिक ब्रजभाषा का अर्वाचीन रूप नीचे लिखे पद्य में दिखायी पड़ता है :

साह भये धन जोरन को भये चीरन को कौतवाल कहाये ।
 भूपति नीति के पालन को भये बाकैं टेढ़े अस्त्र सजाये ।
 फील तुरंग चढ़े अभिमानी नट ह्वै नाना खेल जमाये ।
 नैनन कपट मूँदि माचुक बन जोगी अंग अंग भस्म जमाये ।
 पदि पदि शास्त्र पुरान विवाद मुल्ला मजहब बहस बढ़ाये ।

मैत्री मैत्री भये भूतिया घटक नाटक जगत दिखाये ।
 मुंशी दूत दिवान वैद ह्वै घर घर गलवल गाल बजाये ।
 क्ली बली परपैव नियाई जगदुवाल सागर भरमाये ॥ १

उर्दू के शब्द

यहाँ कौतवाल , फील , मुल्ला, मजहब,
 बहस, मुंशी, दिवान आदि उर्दू के शब्द हैं ।

जोरन की उत्तर कालिक क्रिया रूप ब्रजभाषा
 का कर्वाचीन रूप है प्राचीन है, 'जोरिने की' । अन्य संज्ञा शब्द संस्कृत
 के तत्सम अधिक हैं। सब मिला कर यह लड़ी बोली के निकट की ब्रजभाषा लगती
 है।

सामान्यता: भाषा का रूप सहज, सरल और
 व्यासात्मक ही है । संश्लिष्ट सघन पदावली नहीं है :

रसी को करिहैं श्री राधा ।

भय्यो तिमिर हिये दासी को कहत नाम निज बाधा ॥

ललित किशोरी चरन उपासन जो काहु दृढ़ साधा ।

निश्चै जुगुल प्रकासै ता उर मिटै द्विविध जग बाधा ॥ २

कवि की भाषा का सामान्य रूप यही है।
 यह उसकी कला दक्षता या कल्पना की सिद्धता मानी जायेगी कि वह बिना
 अलंकारों अथवा लङ्काणा का अवलम्ब लिए वर्णन को चित्रात्मक बना लेता है,
 और विचार प्रधान कथन की प्रभावशाली कर लेता है।

१- अमिताभमाधुरी पृ० १६७ । २७७

२- ,, पृ० १८४। २६२

चित्रोपम वर्णन का एक उदाहरण

सुनौ सुनौ कहि चपलि चट, लपकि लेहि मुस चूम ।
चपलत जुगुल विहार मैं, परै सेज पर घूम ।
वह चंदा कहि धौलि ही, चूमै चपलि कपोल ।
मसकत जुगुल विहार मैं सिसकत कैं विलील ॥ १

प्रावशाली कथन

राधा नाम की बाधार ।
रसिक लालवर रटत निरंतर सरबस रस की सार ।
सब गुन हीन मलीन दीन वति पतितन मैं सरदार ।
ललित किशोरी तासु भारीसे सोवत पाँव पसार ॥ २

कहीं कहीं संश्लिष्ट सघन पदावली का प्रयोग
भी कवि ने किया है। राधा जी के शृंगार का वर्णन-

मृदुल तरबान मैं रुचिर मिहँदी रची
पीठ पी नाम बैकित किये री ॥
मटर मुक्तावली ध्रुवरु हरित मणि
कला बिलिया सुरंग नग जड़े री ॥
नवल भूषण सजे लजे उहुगन निरसि
सुनुन धुनि निगम बागम जने री ॥
साध्य वाराध्य रस कैलि साधन सरन

१- कमलाक्ष माधुरी पृ० ३८।६०-६१

२- .. पृ० १५५ । २०५

राधिका पद कमल गति सुमेरी ॥ १

ललित किशोरी जी की यह विशेषता है कि उन्होंने गद्य में भी ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। इस कलिका की रास लीलाओं के पात्र जहाँ भी गद्य बोलते हैं वह ब्रजभाषा का ही होता है। मुँशी ईशानल्लाह साँ की "रानी कैतकी की कहानी" के गद्य की भाँति यहाँ भी अन्त्यानुप्रास का प्रयोग किया गया है।

तब सखीन ने मिलि के एक सुर प्रथम कान्हरी
राग जमायो । लाडिली लाल कीँ रिकायी । यह श्लोक मन भायो अति
चित चाह सौँ गाय सुनायो । एकन ने मालकीस को सुर बाधि सवारी को ताल
दे मनहरन सुरन मैं या श्लोक को रंग सँसायो ।^२

संस्कृत

इस कलिका की अनेक लीलाओं में संस्कृत के श्लोकों को उद्धृत किया गया है। उनका अर्थ भी विस्तार से दिया गया है। इससे ललित किशोरी जी के संस्कृत ज्ञान का अनुमान होता है। पर उन्होंने अपना कोई पद्य संस्कृत में नहीं लिखा । भाषा में सामान्यतः संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

जीवन चरित के प्रसंग में यह सूचित दिया गया है कि शाह जी ने विधिवत् गुरु मुस से संस्कृत पढ़ने की इच्छा की थी, परन्तु उन्हें कोई ऐसा विद्वान् नहीं मिला जो नियमपूर्वक पढ़ा देता । फिर भी उन्होंने प्रकारान्तर से इसका अभ्यास कर लिया था ।

१- बङ्किम रसक लिका - दल १६। ७४

२- " १६। ६

सही बोली

सोय सोय सब काम बिगारा ।

गौर श्याम रस रूप न चाखा जुगल लाल कस नाम बिसारा ॥

सलित किशोरी श्री वृन्दावन सो धन हूँ ना चित्त सम्हारा ।

चैत चैत वै मूरख मनुवा जीती बाबी जाता हारा ॥ १

रेस्ता

उस समय साहित्य में एक ऐसी मिश्रित भाषा भी प्रयोग में आ रही थी जिसका ढाँचा (स्तुवर) सही बोली का था पर शब्द चयन उर्दू हिन्दी दोनों का मिश्रित था । रीति काल के अंतिम भाग में कुछ कवियों ने इस भाषा का प्रयोग किया है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि बोधा के अनेक पथ इस भाषा में मिलते हैं। इसे रेस्ता या रेस्ती कहा जाता था । सलित किशोरी जी का निम्न लिखित पथ उसी प्रकार का है। पथों के पहले प्रायः उनके रागों का नाम दिया गया है। परन्तु इस पथ का शीर्षक " रेस्ता " दिया हुआ है ।

चकौरी बस हमारे हैं तिहारे चाँद से मुख कैपे ।

कुटे बिसरे से बालों को संभालोगे तो क्या होगा ।

नहीं कुछ हमको है शिक्वा अगर तुम प्रीति बिसराई ।

जरा टुक नैन ऊँचे कर निहारोगे तो क्या होगा ।

धरी सिर जल मरी मगरी कुटी सखि संग को मगरी ।

हमन ग्रीवा लचक मिहरी उतारोगे तो क्या होगा । २

स्त्यादि

१- वभिलाषमाधुरी पृ० १७१ । २५०

२- वभिलाषमाधुरी पृ० १४६ । १८०

.. के पृ० २२६ पर पथ संख्या ८४ भी रेस्ता भाषा में है।

यहाँ वाक्यों की रचना सही बीली के ढंग की है। सँभालोगे, क्या होगा, निहारोगे वादि क्रिया फल उसी के हैं। पर चस, शिक्वा, जरा, मिहरी, चादि, टुक, हमन वादि शब्द उर्दू के हैं।

फारसी

वभिलाषमाधुरी में एक गज़ल फारसी में रचा हुआ भी संग्रहित है। केवल एक कन्द ऐसा है :

व हस्के जुगल कुश्तनम् वारख़स्त ।
 व चाहे ज़ून उफ़्तनम् वारख़स्त ॥
 पये दर्शने रूप लालन किसीरी ।
 विन्दा विफ़ि रफ़्तनम् वारख़स्त ॥
 वार मुज़रिम् हस्तम् बले दो सहन ।
 छुदरे जुगल गुफ़्तनम् वारख़स्त ॥
 नमस्तु जिबे जानम् हल्ला व पायल ।
 हुदाने गुहर सुफ़्तनम् वारख़स्त ॥
 व वृन्दा विफ़ि कूँज कूये व कूये ।
 लदेती नवल बुस्तनम् वारख़स्त ॥ १

फारसी के इस गज़ल में भी शाह जी ने दर्शन, विफ़ि, कूँज, नवल, लदेती शब्द हिन्दी के ढाल दिये हैं।

ये गज़ल मूलतः फारसी लिपि में लिखे गये थे । देवनागरी लिपि में उन्हें बाद में लिफ़ि किया गया । वभिलाषमाधुरी

में पाठकों की सुविधा के लिए दोनों लिपियाँ दी गयी हैं।

उर्दू

ललित किशोरी जी ने उर्दू भाषा का भी प्रयोग किया है। परन्तु इसके लिए उर्दू क़न्द गज़ल ही सीमित हैं। अन्य हिन्दी के क़न्दों या फ़र्दों में सर्वात्मना उर्दू का प्रयोग नहीं किया है। यह उल्लेखनीय है कि शाह जी की उर्दू में हिन्दी के तत्सम, तद्भव शब्द भी बीच बीच में आ गये हैं :

जुगलवर पे ज़ेवर सिले कैसे कैसे ।
कहो नैन में क़वि तुले कैसे कैसे ॥
न आँसों से देखें न कानों सुनें हम ।
सुरंग गुल विफ़ि में सिले कैसे कैसे ॥
निशानी हमन रंग की लेते जावो ।
ख़िदक रंग साविल चले कैसे कैसे ॥
तेरे हुस्न पर एक आलम सुक़ुत ।
सियहमार काक़ुल हिले कैसे कैसे ॥ १

उपर्युक्त पंक्तियाँ में नैन, क़वि, तुले, आँस, कान, विफ़ि (संस्कृत) आदि शब्द हिन्दी के तद्भव हैं। उर्दू की वाक्य रचना और शब्द योजना व्यावहारिक है। फ़ारसी का आवश्यक भार उस पर नहीं है।

१- अभिलाषमाधुरी पृ० २६४ गज़ल ३

राजस्थानी

ललित किशोरी जी अपने समय की भाषाओं और बोलियों के बहुविक्त थे और उन्हें जोक भाषाओं में अपने भाव व्यक्त करने का कौतुक था। उपर्युक्त ब्रज, फारसी, उर्दू आदि के अतिरिक्त उन्होंने राजस्थानी, मीजपुरी और कश्मीरी भाषाओं के भी पथ बताया हैं। राजस्थानी का पथ -

काँई हठी लाढी म्हारी म्हाकी तो वास तिहारी ।
 म्हाकी तो नाहीं दूजो ठीक ठिकानी है ,
 बरण कमल धारे प्राण बधारी ॥
 कृपा करो निज भवन बुलावो लाढी ,
 बेगि बसावो वृन्दावन फुलवारी ।
 ऊँकचूँक जीरां नाँ कहुँ देसो प्यारी ,
 ललित किशोरी मानी बरजी हमारी ॥ १

मीजपुरी

श्याम मुहँकि मिलिके बिहुरिगो ।
 जियरा हियरा फौरि निकसीले सिटुनवाँ सो कहुँ करिगो ॥
 घर घर विरुला विरुला दूढ्यी कौनी गैल निकरिगो ।
 ललित किशुरिया बटिया परलि सिनटिया मनुवाँ हरिगो ॥ २

बभिला-बभामाधुरी का पृ० २२ पथ ८१ भी
 मीजपुरी भाषा में लिखा गया है।

१- बभिला-बभामाधुरी पृ० १११।४६

२- रसकलिका पल १६। २५२

कश्मीरी

रस कलिका के १७ वें दल में एक कश्मीरी लीला है। सखियाँ राधा जी के साथ बैठी बातलाप कर रही हैं। श्रीकृष्ण कश्मीरिन का रूप बनाकर वहाँ पहुँच जाते हैं। तब उस कृत्रिम नायिका ने एक पद कश्मीरी भाषा का गाया है। पद्य इस प्रकार है :

वखै बादाम गोजे चारै गलखी गुलाब पासे दँद उजमल ।
सरफ हियाँ कचार्यै वतुर ही बाल लटखय कुकै चन्द्रम उठरत फल ।
हुस्त मुत सुंदरु है चीन फुनी नस्त सँजर है हुट के कीतर । १
चाने सीवा खेय यथरूप सम्पठ ललित किशोरी वन्दये पन्वीछ । १

लेखक ने साथ-साथ इसका सही बोली में अर्थ भी दिया है जो इस प्रकार है :

वाँसैं हैं बादाम की गिरी तेरी कपील हैं गुलाब का फूल
दाँत कौंधती हुई बिजली ।
साँप है चीटी तेरी भारे हैं पँवदार बाल मस्तक है चाँद
बीठ घुँघरी के फल ।
हाथी मस्त के मानिन्द है तेरी चाल, नायिका सँजर है,
कँठ है कबूतर ।
तेरी शोभा इस रूप के ऊपर ललित किशोरीकृपान
करै वफा वान ।। २

१- रसकलिका दल १७। १८६

२- ,, दल १७। १८७

३- शब्द-शक्ति

वभिधा

कवि की भाषा शैली का प्रमुख रूप वभिधा प्रधान है। उसमें क्लृप्तांशों का मोह नहीं है। सहज रूप में राधा और कृष्ण के रूप वर्णन के समय तो कवि कल्पनाप्रवण होकर क्लृप्तांश योजना करने लगता है, पर अन्त्यक्ष शृंगार, विनय, वृन्दावन, महिमा, आदि के प्रसंगों में अधिकतर निरक्लृप्तांश वभिधा प्रधान भाषा का ही उसने प्रयोग किया है। नीचे लिखे पद्य में न कहीं कोई क्लृप्तांश है और न लक्षणा अथवा व्यङ्ग्य शक्ति का प्रयोग। कवि की भाषा शैली का स्वाभाविक रूप यही है। कवि राधा जी से प्रार्थना करता है :

जब विलंब जिनि करौ लाहिली कृपा दृष्टि टुक हैरी ।
जमुना पुलिन गलिन गखिर की विचरौ साँझ सबेरी ।
निशिदिन निरखौ जुगल माधुरी रसिकन तैं भट भेरी ।
ललित किशोरी जन मन अलुलित श्रीवन चहतबसेरी ॥ १

वात्म गर्हणा का भाव नीचे लिखे पद्य में निरक्लृप्तांश वभिधा वृत्ति के साथ ही व्यक्त हुआ है।

मो सम कौन अधम जग माहिँ ।
भ्रमत रहत नित विषय वासना तनि निधुवन द्रुम बैलिन छाहिँ ।
चिंतन करत न ललित किशोरी जुगल लाल दीन्है गलबाहिँ ।
निरतत नवल नागरी ललना लालन करत मुहुट परछाहिँ ॥ २

१- वभिलाष माधुरी पृ० १०४ । २६

२- , , पृ० १२३। ६६

व्यंजना

व्यंजना काव्य का उत्कृष्ट सौन्दर्य माना गया है। प्रसंगवश जब उचित अपनी वाच्यार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी अर्थ की ओर संकेत करती है तब वह व्यंजक, व्यंजनापूर्ण मानी जाती है। नीचे लिखे कवित्त में बड़ी स्पष्ट वस्तु व्यंजना है।

गोपी श्रीकृष्ण की रात में उसके घर ही
ठहर जाने का आर्म्भण देती है :

कारी बंधियारी घनघोर घिरी माँदों की सु ,
बाधी निशि जात किते प्यारे नंदलाल हो ।
ढोलि बहु जीव जन्तु मारहा वजन बति ,
गोकुल को लौट जाउ सुन्दर गोपाल हो ।
हाँ घर जैली नाहिं बारबर मैं ठौर देती,
बाट बट पार लगे ढाक बनमाल हो ।
ललित किशोरी तेरे मोरे मोरे बैन सुनि ,
लागे है परसो मोहि लोचन विशाल हो ॥ १

इसी प्रकार भाव- व्यंजना के प्रयोग भी प्रचुरता से मिलते हैं। राधा कृष्ण की राति क्रीड़ा का वर्णन ऐसा ही है। इनमें चेत्यादी के बिम्बात्मक चित्रण हैं और संयोग शृंगार की इस व्यंजना है। भाषा प्रायः क्लृप्तारहीन अमिथा प्रधान है :

कुंजन बन लागी करी, इस विनोद बित बाया।

देसी जुगुल विहार में, धन दामिनि लपटाय ॥

वह चन्दा कहि धोसि ही, ब्रूमैं चपलि कपील ।

मसकत जुगुल विहार में, सिसकत कैं विलील ॥ १

लक्षणा

जब एक वस्तु के किसी धर्म का अन्य वस्तु पर आरोप कर वाक्य रचना की जाती है तो वह लक्षणा कही जाती है । ललित-किशोरी जी की शैली सहज, सरल और वभिधा प्रधान है। उनका ध्यान अपने वर्ण्य विषय पर रहता है। राधाकृष्ण की शृंगार केलियों का बिम्बात्मक चित्रण करने में वे सिद्ध हैं। उसके लिए लक्षणा की वक्र शैली उन्हें प्रिय नहीं है। वभिधा प्रधान वाक्य ही उनके काव्य में अधिक मिलते हैं।^{फिर भी लक्षणा के} कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :

राधा कृष्ण के सुरत विहार में उत्पन्न हुए आनन्द की वर्णा की फुड़ी से साम्य होते हुए सारोपालक्षणा का वाक्य -

(१) गरवै किंकिन घूँघरू , बदरा सेज सिंगार ।

लागी जुगुल विहार में, भुवि फर सुरति सुवार ॥ ३

घुँघरू की ध्वनि पर भग्न गजन का, शैया पर बादलों का , आनन्दानुभूति पर फर वृष्टि का आरोप है। सारोपालक्षणा -

१- वभिलाषमाधुरी पृ० ३८ । ८३, ६१

२- लक्षणा की फिता क्रिया - काव्य प्रकाश (मम्मट) उल्लास २।६

३- वभिलाषमाधुरी पृ० ४४।४७

(२) व- फूले वंग न समाय^१ ।

वा- परिणी जुगुल विहार में पाग पैव उरफाव^२ ।।

ये दो वाक्य बड़ा लक्षणा के हैं। फूले वंग न समाय - अर्थात् अत्यधिक प्रफुल्लित हैं। पाग पैव उरफाव अर्थात् बहुत उलझ जाना ।

४- मुहावरे

मुहावरों का प्रयोग करते हुए काव्य में वाक्य रचना करना भी एक सौन्दर्य माना जाता है। हिन्दी के कलकलशास्त्रियों ने इन्हें भी कलकार माना है। ललित किशोरी जी ने इनका अधिक प्रयोग तो नहीं किया है। अतः यह उनकी शैली का कोई उल्लेखनीय गुण नहीं है फिर भी कुछ पंथों में मुहावरों के दर्शन होते हैं।

मुहावरा - (क) ऐसी तैसी

अर्थ- गाली के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बुरा कहना,
घृणित बताना ।

कलकल फाँसि गाँसि के रासौ याकी (म की)
ऐसी तैसी ।^३

(ख) जूँठा दिसाना अर्थात् तिरकार करना

मैं दासी अपनी राधा की करत खासी जो रुचि पावत ।
सूधे वचन न बोलत सफेहु हरिहु को जूँठा दिसरावत ।।^४

१- कमलानाथ माधुरी पृ० ४७।८३

२- " पृ० ४७।८७

३- " पृ० १७८। २७३

४- " पृ० १८३। २६२

(ग) धूल डालना अर्थात् तुच्छ करना

जानों जो कवन कहूँ सोंहैं इष्ट तोहि मुस ,
ठारि दीजौ धूरि भरे वृन्दावन कुँज की ॥ १

(घ) सिल्ली उड़ाना अर्थात् उपहास का पात्र

ललित किशोरी जब श्रीवन में कुँज बसेरौ पावैगे ।
हंस हंस के तबअखानंद की गलियाँ धूरि उड़ावैगे ॥ २

(ङ०) बायें हाथ से अर्थात् उपेक्षापूर्वक, सरलता से

चीदी भवन त्रिलोकी संपति बायें हाथ बहावैगे ॥ ३

५- लोकी वित

हीरे खान में मरे नहीं रहते अर्थात् वे दुर्लभ
होते हैं :

(क) नाहिं हीरे खान मरे

ते तैंहें जो जुगल जवाहिर दौर दौर सब में बगरे ॥ ४

(स) कहा होत दौरे बगरे ।

जुगल किशोर उपासन हीरा नाहिं गली गली बगरे ॥ ५

१- अभिलाषमाधुरी १२८।११६

२- .. १२६।११६

३- .. १२६।११६

४- .. १५७।२१२

५- .. १५७।२१३

६- कर्तकार- योजना

रूपक- सामान्यतया ललित किशोरी जी सीधी सरल कर्तकार निरपेक्ष भाषा में राधा और कृष्ण की शृंगार केलि के कल्पना चित्र लिखते चलते हैं। उन्हें काव्य का चमत्कार दिखाने का लोभ नहीं है। प्रयत्नपूर्वक कहीं कर्तकार योजना नहीं करते। फिर भी कहीं कहीं हिन्दी के प्रसिद्ध कर्तकार उनकी रचनाओं में जा गए हैं। रूपक उनमें सर्वप्रमुख है। उसके अन्तर्गत कहीं कहीं बड़ी मौलिक और चित्र विधायिनी कल्पना की गयी है। राधा और कृष्ण रूप के सागर में पैरते हैं। उसका कल्पना चित्र -

रूप सिन्धु, नामी भँवर, जल पीयूष उमंग ।

पैरत प्यारी लाल लस, कवि की उठत तरंग ॥ १

अनुराग बाग है। श्रीकृष्ण और राधा सुरत की बेल पर दो फूलों से फूले रहते हैं :

ललित बाग अनुराग में, बली लली नंद नंद ।

सुरति लता विवि फूल से, फूले रहत सुखन्द ॥ २

रूपक योजना में अप्रस्तुत की सहायता से प्रस्तुत का रूप साकार हो उठता है। वह भाव प्रेरित कल्पना की सृष्टि होता है : कतः पाठक को रस भग्न कर देता है। ललित किशोरी जी के सांगरूपक इसी प्रकार के हैं। वे या तो युगल मूर्ति को रूपायित करते हैं या उनकी केलि को साकार बना कर भवती की वास्वाय बना देते हैं।

जहाँ कवि को अपनी भावानुभूति की अनुकूलता

१- कमलाक्षमाधुरी २२।१२

२- .. २४।३६

मिलती है, वहाँ वह विशेष रूप से भाव प्रवण हो जाता है और फिर उसकी कल्पना शक्ति ऐसे संदर्भों के वर्णन में विशेष सक्रिय हो उठती है। वर्णन में इसीलिए बिम्ब विधान, रूपक योजना और साम्य आदि की वक्रता बाने लगती है। युगल विहार ऐसा ही प्रसंग है जिसका सही भाव में सर्वाधिक महत्त्व है। इस भाव के उपासक राधा और कृष्ण को इसी प्रसंग के संदर्भ में देखते हैं। यही उनकी लीला है। इसे सम्प्रदाय में 'निकुंज लीला' कहा जाता है।

सलिल किशोरी के युगल विहार वर्णन में कीकट कल्पना की सक्रियता, बिम्ब विधान की भंगिमा, अलंकार योजना और अन्य प्रकार की वक्रता देखने को मिलती है।

राधा और कृष्ण रति विलास के समय बालि-गनबद्ध हुए तो दोनों के शरीर एक दूसरे से उलझ गये। दोनों वापस में ऐसे मिस्र गये जैसे नीर और क्षीर मिल जाते हैं। दोनों के भूषण और कच एक दूसरे से उलझ गये :

नीर क्षीर से मिलि रहे, सँके कौन निखार ।

भूषण कच उरफायैं, राते युगल विहार ॥ १

इसी बात को कवि दूसरे साम्य द्वारा व्यक्त करता हुआ कहता है कि उनके अंग अंग जो वापस में उलझ गये तो फिर सुल-भसाना कठिन हो गया। फाड़ी^{के} फाँव का सा उलझाव हो गया। फाड़ी फाँली और लम्बी होती है। एक बार उलझ जाय तो बहुत देर में सुलझ पाती है।

वीग वीग उरफे लिये, बढ़यी कैलि रस चाव ।

परिणी जुगल विहार में, पाग-पैव उरफाव ॥ १

कवि का साम्य नवीन है और वर्ण्य वस्तु का प्रवर्णन करने में सक्षम है।

रूपक योजना भी कवि की सरल होते हुए भी वस्तु और भाव का बिम्ब बनाने में समर्थ है। उसका कारण यही है कि इसके पीछे उनके हृदय का फूट लगा हुआ है।

रति विहार में जो वानन्द रस की निष्पत्ति हो रही है वह सर्वांग व्याप्ति और दोनों के कण-कण को रसाद्र बना देती है जैसे वर्षा में चतुर्दिक् जल की बौछारें बरसती हैं। रूपक बाधिता हुआ कवि श्री कृष्ण और राधा को बादल, किंकिणी और घुँघरुओं की ध्वनि को मेघों का सान्द्र गर्जन एवं रसानुभूति को वर्षा की फट्टी कल्पित करता है :

गरजे किंकिनि घुँघरू, बदरा सेज सिंगार ।

लागी जुगल विहार में, भुवि भर सुरति सुवार ॥ २

युगलमूर्ति का जीवन और सौन्दर्य उद्दीप्त और विस्मयकारी^{ही} नहीं है, बल्कि सरल एवं सरल है। उनका रस विलास उस सरल सरस मधुर द्रव का ही सागर है जिसमें वे दोनों अवगाहन कर वाह्लादानुभूति करते हैं। भवत उसकी भावना करता हुआ गंगा सागर में स्नान करने जैसा सात्त्विक रस एवं शान्ति प्राप्त करता है। इस अनुभूति को सरल, सहज रूपक योजना से व्यक्त

१- कमलानामाधुरी पृ० ४७।८७

२- .. पृ० ४४।४७

करते हुए ललित किशोरी जी की अभिव्यक्ति बड़ी हृदयमाहिणी लगती है।

जीवन रूप तरंग वेग, वृगन निहार निहार ।
रूम रूम सौं जाचहीं, जुगल विहार विहार ॥
ललित किशोरी लीजिए, रस तरंग हिलकोर ।
लैफ्ट जुगल विहार के, सिन्धु धस सरबोर । ।
ललित माधुरी गंग सो, सागर जुगल विहार ।
गंगा साहर न्हाइये, रसिक बधूटी नार ॥ १

इस प्रकार इनके रूपकों में बुद्धि का सायास विलास नहीं है। भाव मग्न हृदय की कल्पना शक्ति से उनका जन्म हुआ है। इसीलिए उनमें सहजता सरसता है।

उपमा

जहाँ वर्ण्य वस्तु का किसी अन्य वस्तु के साथ भेद के साथ साधर्म्य प्रतिपादित हो तो वह उपमा अलंकार होता है। इसके चार वेग होते हैं- उपमेय, उपमान, वाचक और सभान धर्म । ये चारों वाक्य में विद्यमान हों तो पूर्ण^{उपमा} और किसी का कथन न हो तो तुल्योपमा कहलाती है।

पूर्णोपमा

नीर क्षीर से मिलि रहे, सकै कौन निखार ।
भूषण कच उरफायैं, राति जुगल विहार ॥ ३

१- अमिताभमाधुरी पृ० ४८।६६ से १०१

२- साधर्म्योपमा भेद - काव्यप्रकाश उल्लास १०।१

३- अमिताभमाधुरी पृ० ४६।७६

चपलासी चपकत जबै, ससी नवेली बाल । १

नीर क्षीर = उपमान, युगल = उपमेय , से = वाचक ,
मिति रहै = समान धर्म ।

बाल= उपमेय , चपला = उपमान , सी= वाचक , चपकै= समान
धर्म

उपमा कर्त्तार का ललित किशोरी जी ने बहुत कम प्रयोग

किया है।

मालीपमा

एक उपमेय वस्तु या स्थिति के लिए उपमा शैली के जब कौन सांख्य कल्पित किये जाते हैं, तो मालीपमा कर्त्तार माना गया है इसमें उपमेय सांख्य द्वारा रूपायित तो होता ही है, कौन उपमानों का एकत्र समावेश होने से वैचित्र्य का चमत्कार भी अनुभूति होता है।

सयःस्नाता राधा अपने केश सँवारती है, उसकी बंगलियाँ, मुस बादि के संयोग से वे कौन प्रकार के प्रतीत होते हैं । कौन सांख्य घटित हो जाते हैं ।

मालीपमा- न्हाय छिठकाय केश फेरै बंगुरीन जैसे
नखन की बाँक घन लौक चपलान की ।
कंध ही सौं तार तार जब ही सँवारे वार
फकीकी परी सोम नम हूट घुरवान की ।
मुस पै लपटि लाहँ उपमा सुहाहँ छाया
चंद पै घुमदि के धिरन बदरान की ।

ललित किशोरी कवि क्वकित क्वबीली क्ववि

ललित विसारि मति गति फलान की ॥ १

केशों के मध्य उंगलियों के नस बादलों में बिजली की कौंध से लगते हैं। कंधे से केश सँवर जाते हैं तो मुसकन्द् ऐसा लगता है जैसे बादल हट जाने से आकाश में चन्द्रमा । जब वे मुस पर घिर जाते हैं तो चन्द्रमा पर घिरने वाली बादलों की उपमा बन जाती है।

वतिशयी वित

सादृश्यातिशय होने के कारण उपमेय की अनिर्दिष्ट रख कर जब उपमान मात्र का ही कथन हो तो वह अलंकार शास्त्र में निगर्ण कहलाता है। उस दशा में वतिशयी वित अलंकार माना जाता है। ललित किशोरी जी के निम्न लिखित कवित्त में वतिशयी वित अलंकार है।

न्याय न्याय दुःख वाय राजि हुलसाय सँग
रूप की विलीके जाय पाँखि पानी जंग की ।
जाँखि जाँखि केशन कपोल पर लावहीं सु
टेढ़े भेदे रासि माल लाजत जंग की ।
हरि फेरि वागुरी सौं, कस छिटकाय चिबु
ललित किशोरी गौरी कौतुक जंग की ।
मदहास दगिर प्याय बोधी हैं रमानी राय
देसी री तमासी स्त स्तत भुवंग की ॥ २

१- रस कलिका दल ६।८

२- .. ६।९

कवित्त की अंतिम पंक्ति में राधाजी के लंबे धुंधराते केशों को दूध पिये भुजंग कहा गया है।

राधा जी के कर्तव्यों की प्रशंसा में कवि कहता है कि श्रीकृष्ण उनके जाल में ऐसे उत्सर्ग गए हैं कि वास पास ही घूमते रहते हैं, राह चलता भूल जाते हैं। सुस पर फैले इस नागपाश में राधा जी ने कमल, चन्द्रमा, शुक, सैन, प्रमर, मीन और कृग को कैसा लिया है।

हैं वरविन्द चंद शुक सैन मधु^{कर} मीन
कृग फसाये ॥ १

तता गुंज में छिपी राधा जी को देखने को श्रीकृष्ण की प्रेरणा देती ससी का वचन-

ये ही नंद नंद एक कौतुक विलीकी जाय
कुहू रैन गहिवर, लतान उग्यो चंद है ॥ २

प्रतीप

प्रतीप कर्त्तार उत्कट साम्य की अभिव्यक्ति का एक प्रकार है। इसके दो भेद होते हैं :

१- प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बताकर उपमेय को उसका उपमान सिद्ध किया जाय। अर्थात् उपमान से भी अधिक सुन्दर।

२- उपमेय की तुलना में उपमान को हीन या

१- रसकलिका दत्त ६। १६६

२- अमिताभमाधुरी पृ० २१६। ४१

तिरस्कृत किया जाय ।

द्वितीय भेद का उदाहरण निम्नलिखित
कवित्त में बड़ा स्पष्ट हुआ है :

कंज अरुनाई चफलाई मीन सैज की,
मीती उजराई दृग वारि फेरि डारी है ।
रूप की लुनाई पै जुन्हाई सरदिन्दु की सु ,
कौकिल की कूज मृदुबैन पै निवारी है ।
कौटिल सुरति वारी वंग वंग माधुरी पै ,
सावरी विहारी प्रीति आगे बलिहारी है ।
जेते दोतधारी नस जीत पै उतार डारे ,
फूलन की मोद मृदुताई पै हू वारी है ॥ १

राधा के रूप सौन्दर्य का वर्णन है। उनके
नेत्रों की लालिमा के सामने लाल कमल, चफलता की तुलना में सैज, और
उज्ज्वल धवलता की बराबरी में मीती तुच्छ हैं। शरद चाँदनी रूप लावण्य से
हीन है, उसी प्रकार कौकिल कूजन उनके बोलने पर न्यौछावर करने योग्य हैं ।
राधा जी के नसी की आभा के सामने तारे और कौमलता के सामने फूल तुच्छ
हैं ।

प्रान्तिमान

उपमेय और उपमान में स्तना निकट का
साम्य ही कि उसे देखकर उपमान का भ्रम उत्पन्न हो जाय तब प्रान्तिमान

जलकार माना जाता है।

राधा के नेत्र पारधी हैं, उसके फलक बाण हैं, और मोहि धनुष हैं। नासिकारूपी शुक को भय हो जाता है कि कहीं शिकारी बाण न मार दे। अतः उड़ जाने को फड़क उठता है :

नेत्र पारधी फलक सर, भृकुटी चढ़ी कमान ।

नासा शुक यह भय भट्ट, फरीक उठत उड़ि जान ॥ १

राधा जी मार्ग में चलती है, तो उनके विधुरे केशों को देखकर मोरों को बादल की, मुख को देखकर चकोर को चन्द्रमा की, अधरों को देखकर शुकों को बिंबकफल की, मंदगति को देखकर सिंह को गज की, नय के मोती को देखकर हंसों को मोती की भ्रान्ति हो जाती है। अतः श्री-कृष्ण के साथ ये सब भी राधा जी के पीछे पीछे घूमते हैं। उन्हें चलना कठिन हो जाता है :

मोर जी चकोर कीर केहरि मराल मृग, *

व्याल नंदलाल बलि पाँव पाँव डोलैरी ॥ २

उत्प्रेक्षा

कहीं कहीं किसी एक जलकार का इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि उसकी झड़ी सी लग जाती है। पालीपमा के प्रयोग दिसाये जा चुके हैं। उत्प्रेक्षा भी वैसा ही एकत्र ओक बार प्रयुक्त जलकार है। ऐसा उन्हीं स्थलों पर कवि ने किया है जहाँ उसके प्रिय विषय

१- रसकलिका दल ६ १७३

२- , ६। १६२

राधा जी या श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन करना ही वधवा उनकी शृंगार कैलि का वर्णन स्थल ही ।

श्रीकृष्ण के श्यामल चिबुक पर तिल का वर्णन ललित किशोरी जी ने १५ पंक्तियों में किया है। प्रत्येक में नयी कूठी उत्प्रेक्षा है। नवीन उपमान की संभावना है।^१

साविते चिबुक पर काला तिल ऐसा लगता है, मानों बादलों की शैया पर श्रीकृष्ण कैलि करते हों, मानों काले रंग के पुष्पों पर शालिग्राम बैठे हों, वधवा उन्हें मरुत मणि के संपुट में बैठा दिया गया हो । चिबुक पर छिटक कर केश लहराने लगते हैं तो ऐसा लगता है , मानों जल की वाशा में वाया मृगशावक जाल में फँस गया है । ऐसा भी लगता है, मानों नील कमल पर बैठा भौंरा सुगन्धि ले रहा है, या तमाल वृक्षा पर गुडरी मार कर काला साँप बैठ गया है, या नील शैल पर श्याम घन ने बसेरा ले लिया है । झुलाक में लगे मोती की स्वाति की बूंद समझ कर उस पर मोहित हुवा फि दौड़ तो पड़ा पर भौंह की धनुष समझ कर डर गया और मानों नील-गिरि की सीढ़ में छिप गया है ।^२

तद्गुण

दो वस्तुओं के संसर्ग में जब कोई एक वस्तु अपने गुण का त्याग कर अपनी से उत्कृष्ट का गुण ग्रहण कर लेती है तो वह तद्गुण उत्कर्ष कहलाता है।

राधा जी ने हीरों का हार पहना है ।

१- संभावनमयीत्प्रेक्षाप्रकृतस्य परात्मना । - साहित्यदर्पण १०।४०

२- रसक लिंगा - दल ६।६८-११३

३- तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्ट गुण ग्रहः । ३ साहित्यदर्पण १०।६०

देखते हैं त्रिकिष्ण की जो छाया उस पर पड़ी तो वह नीलमणियों की माला बन गया :

हीर हार प्यारी लिये, निरस्त प्यारी लाल ।

प्रतिबिम्बित हवि सौं भई, नीलमणिन की माल ॥ १

व्यतिरेक

उपमान से उपमेय में किसी प्रकार का व्यतिरेक^२ अर्थात् बाधिव्य दिसा दिया जाय तब वह व्यतिरेक अङ्कार कहलाता है।

राधा जी के नाम की चन्द्रमा से विलक्षणता सिद्ध करता हुआ कवि उसे नित्य शृंगार का सुधारस बरसाने वाला, अन्तस् के अन्धकार का नाशक बताता है :

राधा नाम अद्भुत चंद ।

बरसत नित शृंगार सुधारस सरसत वमित्त अन्ध ।

जासु प्रभा अंतसतम नासन जात सकल दुस पैद ॥

ललित किशोरी सदा येक रस क्यौं न भजसि मति पैद ॥ ३

कहीं कवि उपमान के साथ उपमेय का दूर तक साम्य दिखाता जाता है। वीत में उपमेय में विलक्षणता सिद्ध कर व्यतिरेक की योजना कर देता है। नेत्र वीर मक्ली में अनेक साम्य हैं। पर नेत्र उनसे विलक्षण है :

१- विलक्षणमाधुरी पृ० २२। २०

२- उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः ।

- काव्यप्रकाश उल्लास १० श्लोक १०५

३- विलक्षणमाधुरी पृ० १५८। २१६

सचिह्न मीन महं ये अस्त्रियां निज उपमा कवि वृथा कही ।
 बिन कलौके गौर श्याम हवि वसुवन जल उतराय रही ।
 लाज जाल नहीं फैसल वसरी हवि निधि प्रेम प्रवाह बही ।
 ललित किशोरी यहै अवमो जल भीतर कहुलाय रही ॥ १

कुप्रास

कुप्रास का प्रयोग काव्य में बुद्धिपूर्वक किया जाता है तो अभिव्यक्ति अस्वाभाविक बन जाती है। शैली में कनावटीपन वा जाता है। यही जब सहज रूप से भाषा में जाता है तो बड़ा मीठक और मृदु सौष्ठव उत्पन्न हो जाता है। ललित किशोरी की काव्य शैली में कुप्रास कलंकार का प्रयोग कहीं कहीं मिलता है। जहाँ वह है वह सहज स्वाभाविक है और भाषा में नाद- सौन्दर्य के साथ साथ प्रवाह की सृष्टि भी करता है। नीचे लिखा सबैया देखिए-

श्री वनवास की वास करौ विश्वास करौ जुगनाम के माँही ।
 सँतन कौ सत्संग करी वंग वंग रंगौ जिहि जुगल मिलाही ।
 गौर श्याम मदमत्त रहौ दुग क्षिन् क्षिन् दरसन को तलवाही ।
 बाल गुविन्द कर्ण हवि सौ तब ललित किशोरी नैन सिराही ॥ २

दूसरी में 'मत', 'ओ', 'संग' आदि शब्दों में;
 चौथी में 'वर्ण', 'हवि' आदि -

पहली पंक्ति में 'वास', 'वास', 'विश्वास', शब्दों
 शब्दों में शब्द मैत्री तो है ही साथ ही भाषा अपनी सहज गति में वागे को
 बहती सी लगती है ।

१- अमिताभमाधुरी पृ० १२६। ११०

२- .. १५३। १६१

कहीं कहीं ऐसी वर्ण मैत्री भी कवि ने प्रयुक्त की है जिसमें साहित्य परंपरा के रीतिकालीन कवियों का सा भाषा निसार और साहित्यिक सौष्ठव अनुभूत होता है। पय लगता है किसी रीतिकाल के शृंगारी कवि का है :

मतवारी रति सेज पे, गति मति पति निखार ।
सुख समूह शोभा सदन, सुख निधि जुगल विहार ॥
करनकुल कुंडल ललित, कलटि फलटि फट चीर ।
प्रफुलित जुगल विहार में, फुरुर विलोकी वीर ॥ १

पहले दोहे की दूसरी पैरि में "स" वर्ण वाले शब्दों का केक बार प्रयोग, इसी प्रकार दूसरे दोहे में "ल" वर्ण की बार बार आवृत्ति वृत्त्यनुप्रास के सहज सौन्दर्य को जन्म देती है। भाषा की स्वच्छता कवि की ददाता का परिचय भी देती है।

एक वर्ण की केक बार आवृत्ति होने से भी वृत्त्यनुप्रास की योजना होती है। इस सौन्दर्य के केक पय ललित किशोरी जी ने लिखे हैं। नीचे लिखे दोहे में "ट" ध्वनि की केक बार आवृत्ति हुई है :

कटवयी लटकन मुकट मनि ,
फटवयी नेक न फेर ।
लास जतन हटवयी भट्ट
विवस मयी छवि हेर ॥ २

१- वमिलाजमाधुरी पृ० ४८।६३ , पृ० ४६।६६

२-रसक लिका - पल ६।७७

यमक

यमक जलंकार स्वर व्यंजन सहित की वावृत्ति का नाम है। वावृत्ति सहति में वही क्रम अपेक्षित है जो पहले हो। वावृत्ति वंश का अर्थ पृथक्होना चाहिये।^१

सलित किशोरी जी ने यमक जलंकार की योजना करते हुए ५७ दोहे एक ही स्थान पर लिखे हैं। इसका शीर्षक उन्होंने 'यमक जंत्री' दिया है। इन दोहों में श्रीकृष्ण और राधा जी का रूप सौंदर्य, होली वादि विषयों का वर्णन हुआ है।

कलाम्ब की छाया में श्रीकृष्ण ने दो सखियों को फँद लिया और वालिंगन में कस कर झकझोर दिया। एक की सतलही माला टूट गयी और दूसरी की बाँह मुड़ गयी। दोहे में फोरी, तोरी, मोरी वंश की वावृत्ति है। पहली पंक्ति में दूसरे 'फोरी' शब्द का कोई अर्थ नहीं है। दूसरी पंक्ति में 'तोरि' के दो अर्थ हैं- तुम्हारी और तोड़ दी। उसी प्रकार 'मोरी' के दो अर्थ हैं- भरी और मरोड़ दी।

फोरी भरि झक फोरियाँ करत कदम की चाह ।

तोरि तोरी सतलही मोरी मोरी बाँह ॥ २

'राती' शब्द की वावृत्ति का चमत्कार निम्नलिखित दोहे में बड़ा स्पष्ट दिखाया गया है :

बाँदे राती छूनरी बतराती फनश्याम ।

छतराती राती लसी हिये सिराती वाम ॥ ३

१- साहित्यदर्पण १०, ८

२- कमलाश्रमाधुरी, २५३। ३३

३- ,, २५२। १४

अनुप्रास और यमक शब्दालंकार हैं। इनमें शब्द योजना द्वारा चमत्कार की सृष्टि की जाती है।

७- शैली

ललित किशोरी जी की भाषा का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। सामान्यतः उनकी भाषा शैली किस प्रकार की है- यह भी प्रतिपादित हो चुका है। अब उनकी वर्णन शैली का विचार किया जायेगा।

कवि की वर्णन शैली उसके वर्ण्य विषय के स्वभाव के अनुसार निर्धारित होती है। शृंगारी कवि अपने भावों के उपयुक्त कोमल कान्त फटावली का चयन करता है तो वीर रस का कवि वीजपूर्ण शैली को अपनाता है। ललित किशोरी जी अन्तर्वाह्य रूप में भक्त हैं। उनकी भक्ति शृंगार भाव की है। अतः उनका ध्यान भाव निवेदन पर केन्द्रित रहता है। अभिव्यक्ति का सौन्दर्य विधान उनकी कल्पना या सर्जना का विषय नहीं है। इसलिए शैली सहज, कोमल, कृत्रिम है। उसमें अलंकारी, लाटालिक वक्रताओं का अभाव सौन्दर्य विधानों का अभाव रहता है। पर इस शैली में भी कवि राधा कृष्ण की शृंगार चैष्टाओं का चित्र बनाता चलता है। चित्रात्मकता उनकी शैली की एक व्यापक विशेषता है। युगल विहार का वर्णन सर्वत्र चित्रोपम है-

झूमि कपोलन पौंछि हौं, पौंछि पौंछि पुनि झूमि ।
रसिया जुगल विहार के, बरसाने भुकि भूमि ॥
सुनौ सुनौ कहि चपलि चट, लपकि लैहि मुस झूम ।
चपलत जुगल विहार में, परै सेज पर धूम ॥

झिटकि झिटकि केशवली, अंग उरीजनि वीर ।

विलुलित जुगलविहार की, शोभा को नहीं हार ॥ १

जीवन रूप तरंग अंग, दृगन निहार निहार ।

रूप रूप सों जाचही, जुगल विहार विहार ॥ २

इसी प्रकार राधा और कृष्ण के रूप, किंवा शृंगार का जब वर्णन करते हैं तब शैली चित्रात्मक हो जाती है ।

“ राधा जी ने अपनी सूही रंग की साड़ी पहनी है। उसमें शरीर की उज्ज्वल कान्ति बाहर फलकती है । मोतियों का हार ऊपर से दीप्तिमान हो रहा है। बैजनी रंग की कढ़ाव वाली कंकुकी शरीर पर है। मानों रूप के बादलों पर गीत की छवि शोभायमान हो रही हो । हार के मणि श्रीकृष्ण जब राधा जी के उरीजों का स्पर्श कर लेते हैं, तो वे चँक कर बिजली सी चमक जाती है। माँहें तरेर कर उनकी ओर देखने लगती हैं, फिर हँसने लगती हैं, तो दाँतों की छवि मोतियों को तिरस्कृत कर देती है। ”

जहाँ वर्णन नहीं किसी विचार की अभिव्यक्ति है वहाँ स्वच्छ सरल शैली का आश्रयण किया गया है। अकृत्रिमता इसका विशेष आकर्षण है।

श्री वृन्दावन रेनु का लुढ़क रुँह मुस माँह ।

चल सति बेगि बटोरिये यह सुस निधुवन हाँह ॥

१- अमिताभमाधुरी ३८।८६, ६०, ८८

२- ,, ४८, ६६

३- रसकलिका दल ६-४२

श्री वृन्दावन बैठि कै करै भावना चित्त ।

सैति सैति मन में धरै ज्यों दाहिनी वित्त ॥ १

हाया शैली

कवि चाहे कितना ही परंपरा निर्पेदा, स्वतन्त्र चैता* एवं महान्* प्रतिभाशाली हो, उसकी रचनाओं में पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव यद्यत् तब्र जा जाता है। कभी वह सजग होकर ऐसा करता है और कभी अन्याय उससे ऐसा बन पड़ता है। उसका कारण यही है कि उसकी कवि चेतना का निर्माण काव्य की प्राचीन परंपरा के संस्कारों से सर्वथा मुक्त होकर नहीं हो सकता। कभी यह प्रभाव इतना स्पष्ट हो जाता है कि रचना हाया रचना सी प्रतीत होती है।

ललित किशोरी जी काव्य के सजग कलाकार नहीं कहे जा सकते। वे मूलतः भक्त हैं। भक्ति भाव से ^{आप्लुत} बाहुल्य का उनका हृदय अपने वाराध्य के स्मरण चिन्तन में पथ रचना करता है। कला ददाता के प्रति वह उदासीन है। फिर भी कहीं कहीं उनके पथों में अन्य कवियों की हाया स्पष्ट फलकती है। परन्तु ऐसे स्थलों में भी कवि की शृंगार भक्ति की अभिप्राति अन्तर्निहित रहती है।

काव्य प्रकाश कार मन्दिर ने ध्वनि के उदाहरण में सुखत यावना दूती के वर्णन का एक पथ दिया है जिसका भाव निम्न-लिखित है। नायिका ने दूती को ^{पास} प्रिय के सन्देश लेकर भेजा था पर वह उसके सुख सुख का उपयोग कर लौटती है। नायिका व्यंग्य करती हुई कहती है :

* शेर स्तनों के पास पास का चंदन मिट गया

है। कधरीका राग भी फुटा हुआ है। नेत्रों में दूर दूर तक भी काजल नहीं रहा। और तेरा यह शरीर फुलकायमान हो रहा है। तू झूठ बोल रही है, तुझे अपनी सली की (भरी) पीड़ा का अनुभव नहीं है। तू अधम है। यहाँ से तू वापी में स्नान करने चली गयी। उस अधम के पास नहीं गयी।”

तलित किशोरी जी का निम्न लिखित कवित्त उपर्युक्त श्लोक की ही छाया में रचा गया है :

मुस ही मलीन क्यौँ गायन फारेणु ते सु ,
 कधरन लाली कहाँ तृणाहू सताई है ।
 वंग वंग कँप क्यौँ वानर मग धाय पर्यौ ,
 गँठ चिह्न चींचहूँ कौरी ने चलाई है ॥
 फलट्यौ जो पीतपट प्यारी परतीत काज ,
 नैनन तुमारी क्यौँ नींद भुकि आई है ।
 हिये हलसात कहा लाल को मनाय लाई ,
 फाट्यौ क्यौँ ये चीर वंग झली ना समाई है ॥ २ .

वैनी कवि के निम्न लिखित कवित्त का छाया-
 पम साम्य तलित किशोरी जी के एक पद्य में मिलता है। शाह जी का कवित्त इस प्रकार है :

गोरस को बेचि लीटि घोणको में जात हुती ,
 बीच ही में बादरा बरसि पर्यौ घर घर ।
 वंगवंग कँपि उठे कारी वंधियारी भुकी,

१- निशेषच्युतचन्दनं स्तनतटनिमृष्टरागोऽधरो
 नेत्रे दूरमज्जने फुलकिता तन्त्री तवेयं तनुः ।
 मिथयावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे ।
 वापी स्नातुमिती गताऽसि न पुनस्तस्याधर्मस्यान्तिकम् ॥ का०प्र० १।२

२- वमिलाजमाधुरी पृ० २१७।४५

लगी री भकौर वान फँक पान फर फर ॥ १

०

०

लैर री बलैया में वा धनु के चौरा की ,

बचाय लई देयाबीट पीतपाट कर कर ।

ललित किशोरी चौथ चन्द को कलंक भयो ,

देसि सुखी झुनरी चवाव चलयो घर घर ॥ २

बेनी का कवित्त इस प्रकार है :

बलि हौं तो गई जमुना जल की ,

सु कहा कहीं वीर विपत्ति परी ।†

बहराय की कारी घटा उनई ,

तब ही जल गागरि सीस धरी ।‡

रफ्तारी फा पाँव धर्यो न गयी ,

कवि मँडन ह्वै की बिहाल परी ।

चिरजीवहु नंद को बारी बरी ,

गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी ॥

तुलसीदास जी के एक पद का केवल स्थायी
ज्यौं का त्यौं अपना लिया है। वागे ललित किशोरी जी ने भाव अपना व्यक्त
किया है।

तुलसी पद

सुनु मन मूढ़ सिखावन भरी ।

हरि पद विमुख लह्यो न काहु सुख,

सठ । यह समुक्ति सबेरी ॥ ३

इत्यादि

१- अमिताभमाधुरी पृ० २१७।४४

२- , , , पृ० २१७।४४

३- विनयपत्रिका पद सं० ८७

शाह जी का पद

सुन मन मूढ़ सिखावन धरौ ।

वार वार मत धस मग भुलिहै कलकन निपट औधरौ ॥

परसै मत कुँडल मँडल दुति व्यालावलि सौं धरौ ।

वक विलोकनि कनी कनी विधि कठिन निकासि निवेरौ ॥१

रूपादि

इस प्रकार केछुट पट साम्य से यह अनुमति नहीं

किया जा सकता कि शाह जी किसी का अनुकरण कर काव्य रचना करने के लोभी हैं। इसके विपरीत आयास मन में उभरे किसी प्राचीन पद्य की शैली पर अपनी रचना करने में उन्हें संकोच नहीं है। उनका मुख्य लक्ष्य अपनी मधित भाव का निवेदन है।

बिंब योजना

बिंब योजना काव्य का प्रमुख सौन्दर्य है ।

इसके वाधार् पर भी काव्य शिल्प का परीक्षण होना चाहिए । कवि की चेतना जब अनुभूति में मग्न हो जाती है तो उसकी कल्पना शक्ति वर्ण्य विषय का ऐसा वर्णन करने लगती है कि उसका चित्र स्रष्टा हो जाता है। यही बिंब योजना है। इसका सम्बन्ध अनुभूति से जितना सजीव होता है उतनी ही वह हृदय ग्राह्य और प्रेरणादायी बन जाती है। शब्द व्यापार अधिक हो या कम इसका विशेष महत्व नहीं । बल्कि थोड़े शब्दों में बिम्ब जितना सफल बनता है, उतना लम्बे सांगरूप में नहीं घटित होता क्योंकि सांगरूप की योजना में कवि का बुद्धि व्यापार भी क्रियारत रहता है। बौद्धिकता बिंबानुभूति के लिए विघ्नकारी तत्त्व होता है।

तलित किशोरी जी राधाकृष्ण की शृंगार लीलाओं का विशेष रूप से चित्रात्मक अर्थात् बिम्बात्मक वर्णन करते हैं। ये बिम्ब दोनों प्रकार के हैं :

प्रस्तुत बिम्ब और वप्रस्तुत बिम्ब । जहाँ उपमान की योजना किए बिना शृंगार चैष्टाओं का सचित्र वर्णन किया है, वह प्रस्तुत बिम्ब है। ऐसे बिम्बों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। नीचे लिखे दोहों में गाढ़ालिंगन का प्रस्तुत बिम्ब सहज सरल भाषा में साकार अनुभूति होता है।

बंध बाहु गुन सेज पे, उल्ल फंद गम्भीर ।

स्त उत जुगुल विहार में, टस्क सकत ना वीर ॥

हुलै अधर दृग ना हुलै, हुलै तनक कटि भाग ।

जुगुल विहार विनोद वस, विथकित जति अनुराग ॥ १

रसक लिका में यद्यपि रास लीलाओं का हृति-वृत्तात्मक शैली में ही अधिक वर्णन हुआ है पर जहाँ रूप अथवा किसी चैष्टा किंवा स्थिति का वर्णन किया गया है वहाँ प्रस्तुत बिम्ब घटित हो गया है। राधा और कृष्ण आलिंगन बढ़ होकर रसमाती वशा में सोये हैं। दोनों ने ऊपर फीना वस्त्र ओढ़ा हुआ है जिसमें से उनके कंगों की फलक बाहर प्रकट हो रही है। उनके अधर फड़क रहे हैं। ससियाँ पुक्कारने का शब्द बाहर सुनती हैं। दोनों के नेत्र एक दूसरे से मिले हुए हैं। श्रीकृष्ण का हाथ राधा जी के स्तनों पर है। कटि और जंघाएँ मिलीहुई हैं। साँसें लम्बी हो गयी हैं। हल्का

हल्का वंगी में कंप ही रहा है। कहा जही जासकता कि सोथहुर हैं या जागे -

श्यामा श्याम कंठ लगि सोथे ।

वीदे वति भनीनी उपरती भलमलात ससि वदन लकीये ॥

मदमाते रसरूप विमाते माते नीद नेह मद भीये ।

सुरत केलि विवि विवस विमाते वीरा सुधि बुद्धि गीति मति सोथे ॥

पी पी मधू विविध बलसाते लपटाने कुल्फानहि धोये ।

फरकत वधर नाद पुक्कारी चपल दृगचल हू दृग जीये ॥

चंचल भुज कर कमल उरोजन खुलत मुंदत मरद सभोये ॥

हठि हठि कटि तट मिलत निपटि जटि कदली जघ करि लील

मिलोये ॥

दीर्घ श्वास अलप जंग धूनन केलि कला रस सिंधु विलोपे ।

सांच सांच यह ललित किशोरी ना जानीं जागे के सोथे ॥ १

प्रकृति वर्णन के अनेक सजीव चित्र कवि ने अपनी भावुक कल्पना के बल पर खींचे हैं। प्रभात होने को है। राधा और कृष्ण सोकर उठ गये हैं। वे ससियों को जगाते हुए प्रभात बेल का बिंबात्मक चित्र बताते हैं :

उठौ उठौ जी बोलि गई चिरियाँ ।

सोय गई ही हाय सबै तुम पी फाटन की ह्वै गई बिरियाँ ॥

चट पट कली गुलाब की चटकत दुरत फिरत बन भगी लसुरियाँ ॥

बाजि गई नौबत के बजि दमकत ना धन मुंदि गई तरियाँ ॥

ललित किशोरी फल फलतई जाइ गई हा घर की घरियाँ ॥ २

१- रसक लिका दल २४। द्वितीय प्रसंग ७
२- ,, २४। ११

१. बोलि चुकी के बोलन को ७२७

२. कुर कुटियां करती लसुरियां ॥

क्रिया व्यापारी का वर्णन भी जैकब बिबा-
त्फ हुआ है। ससियों के साथ श्रीकृष्ण और राधा जल क्रीड़ा कर रहे हैं।
उनके चारों ओर मृगलोचनियों का मँडल घिरा है। हास विलास का रंग बरस
रहा है। हाथों से एक दूसरे पर छोटि कैक रहे हैं। उससे मुखाँ पर बूँदें झलक
रही हैं। राधा जी के जाभूषण तारागण के समान झलमलाते हैं। केश
पानी में छूट कर तरंगायित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण पानी में छिप छिप कर
गोपियों को फँदते हैं। वे चंचलता से जंग बचाती हैं तो बिजली सी चमक उठती
है। इस प्रकार ऐसा लगता है मानों बादल और बिजली की क्रीड़ा यमुना के
भीतर हो रही हो।

श्याम जल बिहस्त श्यामा संग ।

चहूँ और मृग नैनन मँडल हास विलास महा रस रंग ।

छोटिन कर रस कैलि मचावत सोमित सँकिर वदन सुढंग । १

झलमलात उडगन जाभूषण छुट कैसे मुस सैत तरंग ।

दुरि दुरि लाल गहत गोपि कौ चपला चमकि बचावत जंग ।

ललित किशोरी नवघन दामिनि क्रीडित जमुना भरे उमंग ॥ १

बिम्ब योजना के कारण कहीं कहीं दोहे

बिहारी, मतिराम से चित्रात्मक बन गये हैं। कलंकारी की छटा उनमें अतिरिक्त
सौन्दर्य का सन्निवेश कर देती है।

रूप सिन्धु नाभी मीवर, जल पीयूष उमंग ।

पेरत प्यारी लाल लस, कवि की उठत तरंग ॥

१- रसकलिका पत १६। ३५६

२- ,, ६३८। ४३

प्रस्तुत बिम्बों की भाँति अप्रस्तुत बिम्ब भी बड़े सुनाम और हृदयग्राही हैं। इनमें रूफ वक्ताओं की प्रचुरता है। कहीं एक दो वारीपाँ से ही बिम्ब बन जाता है तो कहीं एक वारीपाँ के सांख्यिक में उसे वाकार मिलता है। राधाकृष्ण के तरल सौन्दर्य का जतीय उपमानों द्वारा बिम्ब रचते हुए कवि कहता है कि "उनका रूप सिन्धु जैसा विशाल तरंगाक्षित है, नामि उसमें मीर सी लगती है। शरीर में प्रेम की उमंग जल की भाँति हिलोई लेती है। हवि की तरंगें उठ रही हैं। इस समुद्र में राधा और कृष्ण तैर रहे हैं। निःशंक वाश्वस्त होकर वानन्द मग्न हैं।"

एक वारीपाँ में बिंबित वस्तु का स्वरूप नीचे लिखे पद में कितना स्पष्ट है। प्रभात हुआ है। राधाकृष्ण अभी तक नींद में जलसाये हुए हैं। सखी बाहर से घोड़े पर सवार होकर आकाश में घूमते सूर्य का वर्णन करती है। उसके डर से रात भागकर कुंज में जा छिपी है। फिर भी सूर्य किरणों के माले की ओर रन्ध्रों में से छेद रहा है। रात्रि का स्वामी चन्द्रमा और उसके मंत्रीगण तारे सब डर के मारे छिप गये। सूर्य वाङ्मन्ता बन कर आया है।

देखी सजनी निर्कुंज भाजि बसी रजनी ।
बाहँ है सरन माँहि राधा ब्रू चरन पाहि ॥
अनी किरन काँचि रवि रँधन सौँ सजनी ।
याको पति चन्द ताहि फर्यो फर केद सौँ ॥
तारागन मँत्री-सुप्त सवन गुप्त कीनि ।
दीनी है ब्रास सवन कीनी सैताप भवन ॥
नीर पवन शीतल गुन जग के हरि सीनि ।

तेज के तुरंग चढ़यो डोलै अभिमान मर्यो
 त्रिभुवन को भूष कढ़यो मानौं आकास में ।
 तलित किशोरी याहि दीजिए मजाय तमकि
 पावै सुख चैन रैन कुंज के निवास में ॥ १

इस प्रकार वण्यं चाहे वस्तु ही, भाव अथवा
 चैष्टा किंवा कोई स्थिति ही, तलित किशोरी जी उसका वर्णन बिम्बात्मक
 शैली में करती हैं। इस कलिका में लीलाओं का वर्णन प्रायः बिम्बात्मक है। अमि-
 लाञ्छमाधुरी के मुक्तक पद्यों में भी युगल विहार का वर्णन बड़े हृदयग्राही चित्रों
 के रूप में हुआ है।

काव्य रूप और शैली

काव्य रूप की दृष्टि से तलित किशोरी जी
 का वाङ्मय दो भागों में विभक्त है- मुक्तक और नाट्यधर्मी । अमिलाञ्छ-
 माधुरी के पद्य मुक्तक शैली के हैं। इनमें गेय पद भी हैं और दोहा, कवित्त,
 सवैया आदि अनेक छन्द भी हैं। ये सब अपने में पूर्ण मुक्तक शैली के हैं। कुछ प्रसंग
 ऐसे भी हैं जिनमें हल्का प्रबन्ध है। पद्य एक दूसरे से सम्बद्ध और क्रमबद्ध हैं।
 बारहमासा और अष्टयाम, ऐसे प्रसंग हैं। इनके पद्यों में क्रमबद्धता और प्रसंगबद्धता
 दोनों हैं। कुछ विद्वान् ऐसे पद्य गुच्छों को, जो एक ही प्रसंग पर क्रमिक रूप में
 अनेक रचे जाते हैं, 'निबन्ध' कहते हैं। यह गद्य के निबन्धों से भिन्न पद्य
 दोष का विभाजन है। यह भी तलित किशोरी जी के साहित्य में अधिक नहीं
 है। यह परिभाषा भी सर्व स्वीकृत नहीं है।

दूसरी विधा इस कलिका में विस्तार के साथ

कल्पनावद्ध हुए हैं। अभिनय के उद्देश्य से रास लीलाओं का इसमें संकलन है। लीलाओं में पद्य का प्रसृत रूप से और ब्रजभाषा गद्य का कहीं कहीं प्रयोग हुआ है। राधा, कृष्ण, ससियाँ, वार्त्तिक और समाजी इनमें पात्र हैं। पद्य में ही पात्रों के संवाद प्रायः चलते हैं। गद्य पद्यों का प्रणयन उनके रागों के नामोल्लेख के साथ पर्याप्तरूप में हुआ है।

इस प्रकार काव्य रूप की दृष्टि से मुक्तक और नाटकीय दो शैलियों को शाह जी ने अपनाया है।

कूट शैली

स्काध स्थान पर कौतुकवश कूट शैली का भी प्रयोग किया गया है। कूट शैली में बात को घुमा फिरा कर कहा जाता है। यह वक्रोक्ति से भिन्न मार्ग है। वक्रोक्ति एक निश्चित व्यवस्थित सरणि है। चमत्कार दोनों में प्रधान रहता है।

ललित किशोरी जी ने नीचे लिखे पद की रचना 'पीतर' शब्द को लेकर की है। मारंप में पीतल की वर्ण में समान होते हुए भी सोने से उसे निकृष्ट बताया है और बाद में उसके अक्षरों की घटा बढ़ी से वक्र वाक्य रचना की है। पद इस प्रकार है :

प्यारी बू पीतर वृथा कसैये ।

मिथ्या कृंदन नाम प्रकृति सौं तार्यै सार न पैये । ।

नीर को नाउं ह्रीर धरि भाजन किहिं माखन मधि काढी ।

विविध बुद्धि बल विष्ण सागर सौं अभी काढ़िबो गाढ़ी ।।

अक्षर जादि रंग निशि बासर कैलि नवेलीकीये ।

अक्षर अंत निकासि दया करि निज चरनन हठि दीये ।।

सुगत होय कथमा पीतर की तब ही ललित किशोरी ।

वन्दार कै दीर्घ करि धायुत धरिये मो उम्फोरी ॥ १

‘ पीतर ’ शब्द का वादि वन्दार ‘ पी ’
वर्णात् प्रिय श्रीकृष्ण । अन्तः वन्दार ‘ र ’ निकालकर पीत वर्णात् प्रीति,
प्रेम । शब्द के अन्तिम वन्दार ‘ र ’ को दीर्घ कर धा जोड़ने से ‘ राधा ’
शब्द बन जाता है।

प्रतीक प्रयोग

जहाँ उपमान वर्ग का प्रयोग ऐसे क्रिया व्या-
पारों के साथ किया जाय कि वे उपमेय वर्ग का बोध करा दें तो वह वाक्य
रचना की प्रतीक शैली मानी जाती है। इसमें उपमेय वर्ग की प्रतीति व्यंजना
व्यापार से होती है।

संसार का प्राणी पाप पुण्यों के बोझ से
वक्रा अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है। यात्रा भी लम्बी दीर्घ काल की होती
है । बीच में अनेक विघ्न बाधाएँ आती हैं। इस संकट को भगवान् दूर करता है ।
गोपी श्रीकृष्ण से याचना करती है :

धरी सिर जल मरी गगरी कुटी ससि सँग की सगरी ।

हमन ग्रीवा लवक मिहरी उतारीगे तो क्या होगा ?

हमन घर दूरि जाना है फुकी घघोर अधियारी ।

डगर डाबर मरे जल सौं जो तारीगे तो क्या होगा ? २

१- कमिलाजमाधुरी १४१। १५५

२- ,, १४६। १८०

८- छन्द

काव्य के छन्द सौन्दर्य की दृष्टि से ललित किशोरी जी के वाङ्मय का विचार किया जाय तो उनका कृतित्व बड़ा प्रशंसनीय और महनीय सिद्ध होता है। उन्होंने हिन्दी के अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। इन छन्दों में प्रायः वे ही हैं जो हिन्दी कवियों ने प्रयुक्त किये हैं। काव्य परंपरा में उनका प्रचलन है। जान बूझकर प्रयत्न पूर्वक किसी छन्द का प्रयोग नहीं किया गया लगता।

रीतिकाल की कवि परंपरा में कवित्त-सवैया और दोहा छन्दों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। ललित किशोरी जी ने इनका भी प्रयोग किया है पर इनके अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग उनके छान्दस ज्ञान का परिचायक है। साथ ही इस बात का भी ध्यान है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य की परंपरा के कवियों का अनुकरण नहीं किया है। वही समय के लोक जीवन से वह अधिक सम्पृक्त रहे हैं। इसलिए कवित्त-सवैया और दोहा के अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

नीचे लक्षण सहित छन्दों का स्वरूप परिचय उपस्थित है।

दोहा - मात्रा १३ + ११ = २४

लक्षण - जहाँ विषम चरणानि परे, कहूँ जगन जो जान ।
बतान ना चण्डालिनी, दोहा दुस की खानि ॥ १
श्री चैतन्य उपासना ज्यों फी तखवार ।
करियो हिय मियान में, सजनी सोच विचार ॥ २

१- छन्द प्रभाकर पृ० ८४

२- अभिलाषमाधुरी पृ० ७।१

चौपाई- मात्रा १६

लक्षण - सौरह क्रम जतन चौपाई । (छन्द प्रभाकर पृ० ४६)

इसमें १६ मात्राएँ होती हैं। उनका कोई क्रम नहीं होता । अन्त में जगण अथवा तगण न हो -

जुगल चरन कवि कँज विमोहन ।
कँगुरी मूहुल करनिका सोहन ॥
निरसि निरसि नत्तवद चादिनी ।
ससि समूह सुकुचात दाहिनी ॥ १

रोला - मात्रा ११+ १३ = २४

लक्षण- रोला की चौबीस कला यति शैर तैरा ॥

(छन्द प्रभाकर पृ० ६१)

रोला में २४ मात्राएँ होती हैं। ११ और १३ पर यति होती है ।

विरह विकल जनबोल सुल ससि कहत न आवै ।

लगी हसत उर चौट कक कृह मरम न पावै ॥ १

सार- मात्रा १६ + १२ = २८

लक्षण- सौरह रविकल कैं कणां सार छन्द वति नीकी ॥

(छन्द प्रभाकर पृ० ६७)

जिसमें १६ और १२ मात्राएँ क्रमशः हों और प्रत्येक वर्ग के अन्त में दो गुरु (कणां) हों तो सार छन्द कहलाता है।

१- अभिलाषामाधुरी पृ० १६१ । २६, ३०

२- ,, पृ० १२६ । १०६

तब जानौ बलिहार कबिली, ऐसी रस रचावी ।
 नैर गुलाब घूँठ जखियन में, मार धमार मचावी ।
 रूपन रूप माप पिक्कारी, भरै सु मान लचावी ।
 ललित किशोरी बोरि प्रीति रंग, मो मन नटै नचावी ॥ १

कुण्डलिया -

लक्षण- दोहा रोला जोरि, है फर चौबिस मत्त ।
 बादि कैं फर रस सौ, कर कूँड लिया सत्त ॥
 (इन्द प्रभाकर पृ० ६५)

धन वृन्दावन सहज हीं ललित माधुरी रूप ।
 ललित त्रिभंगी मा म्मिनी नित्य विहार रूप ॥
 नित्य विहार रूप भाय बस प्रीति परस्पर ।
 नित्य किशोर नवीन सुकरि वर पान सुधाधर ॥
 उज्ज्वल रस कल कैलि शुद्ध माधुर्य कूँज वन ।
 नित्य मिलन बभिसार सखि तन मन सेवा धन ॥ २

ताटक - मात्रा १६ + १४ = ३०

लक्षण - सौरह रत्न कला प्रतिपादहि,
 द्वे ताटकै मो कैं ॥ (इन्द प्रभाकर पृ० ७०)

जिसमें १६, १४ मात्राएँ हैं और अन्त में

मगण अर्थात् तीन गुरु हैं -

फर रज तजि किमि जास करत हो

१- अभिलाष माधुरी पृ० १३८, १५०

२- .. पृ० १६०, २४

जोग जग्य जप साधा की ।
 सुमिरत हीत सुख वानंद बति
 जर न रहत दुस बाधा की ॥ १

फदपादाकुलक-

लक्षण - फदपादाकुलक कला सीला ,
 सम विषम विषमगीत वामोला ॥

(हन्द प्रभाकर पृ० ५०)

इसमें १६ मात्राएं होती हैं। मात्राओं का क्रम
 सम, विषम, विषम इस प्रकार होता है -

दृम बैलि लवंग लता सघनी) = १६
 रही फूल सुरंग सुमंजु तही ॥ = १६

वीर - मात्रा १६ + १५ = ३१

लक्षण - बसु बसु तिथि सानंद सर्वया ,

यारी वीर प्यारी गाव ॥ (हन्द प्रभाकर पृ० ७२)

जिसमें ८, ८, १५ के क्रम से १६ मात्राएं
 हैं वह वीर या वाल्हा कैंद हैं ।

विहरत लाल प्रिया निशि भावस, प्रमुदित हंस सुता के कूल ।

ललित माधुरी परत किरन जल उपजि भल्ल भूमक श्रुति मूल ॥

१- वमिलाषमाधुरी - पृ० १५८। २१६

२- .. पृ० ७१। १

बातन बिच उठि बोलत लातन हिस उपहास वचन सुख मूल ।
निरखि नैक प्यारी प्यारी कवि जोन्ह तरंगन बन रही फूल ॥

सरसी- मात्रा १६+ ११ = २७

सौरह शैभु यती गल कीजै, सरसी कैंद सुजान ।

(कन्द प्रभाकर पृ० ६६)

इसमें १६, ११ के योग से २७ मात्राएँ होती

हैं। पहली यति पर गुरु और दूसरी पर लघु होना चाहिए ।

✽.

विष्णुपद- यह संयुक्त कन्द है। विष्णु पद और गोपी कन्द का मिश्रित रूप ।

लदाण - सौरह दस कल जैत गहो मल, सबैते विष्णुपदे ।

(कन्द प्रभाकर पृ० ६४)

गोपी- गुणहु भुज शास्त्र वेद गोपी

धरहु हरिचरण प्रीति चोपी ।

(कन्द प्रभाकर पृ० ४६)

लगा असाढ़ बाढ़ जमुना अति, वर्षा रितु आई ।

रिमरुम रिमरुम मेला बरसै, बूँदें सुखदाई ॥

सुदामिनि दम्ब लगे प्यारी ।

कौयल कूक औरिला कृष्कनि, फि फुकार न्यारी ।

बने बन भीजत हुलसाही ।

श्यामा श्याम रसिक रंग भीने दीने गलबाही ॥ २

----- ✽. नवलपियो तोह बोग बलाइ तु का करती संगार ।
१- कमिला-बामाधुरी पृ० २०३।४ अंजन सफीह डोंरिब अंज्यो मल छुटै रहन दे कार ॥
२- .. पृ० ८१।१ पुलिया के बंद खुलही भले हैं भूषन-नरमोडार ।
मतवारे सो अली-चली चल समयन वारंवार ॥
कमिला-बामाधुरी पृ० २२४/६५

सुमेरु - मात्रा १६

समपात्रिक

तदाण- लहै रवि लोक सोभा, यह सुमेरु ॥

(कन्द प्रभाकर पृ० ५३)

जिसमें १२, ७ के योग से १९ मात्राएँ हैं वह

सुमेरु कन्द कहलाता है :

सुगल विहरन कहानी मैं सुनाऊँ ।

कि बारामास गुलहरें उड़ाऊँ ॥

बली बाणाद का जब मास लागे ।

कि एक एक पीत सौ नृकाम जागे ॥ १

क वित्ता-

कलाधर क वित्त-

इसमें ३१ वर्ण होते हैं। उनका गुरु लघु का क्रम आवश्यक है। अंतिम वर्ण दीर्घ होना चाहिए। अंतिम वर्ग ७ वर्णों का होता है। इस कन्द के चारों पाद एक से हैं- यह आवश्यक नहीं होता। उनमें गुरु लघु के क्रम में विविधता भी होती है। नीचे लिखा पद्य ३१ वर्णों का ही है। ं, ँ, ः, ७ का क्रम है। अंतिम वर्ण दीर्घ है।

पायल बजत नाहि, मंद मंद धरे पायि ,

हरै हरै जात मनो, मोहत मराल को ।

१- अभिलाष माधुरी पृ० ८५। १-२

चितवत छते उतै, देखत न होइ कोइ ,
 छुह रेनि चन्द्रमुखी, भेंटन गुपाल को ।
 ललित किशोरी छुकि , चौर ज्यों चकोर दृग, †
 कुंजन लतान ओरे, सुखवि रसाल को ।
 देखिँ सुखारविन्द, छुट्यौ हल कंद सबे ,
 दोरि नंद नंद हिथे लाइ लई बालको ॥ १

समान सर्वैया

मात्रा १६ + १६ = ३२

लक्षण - सौरह सौरह मत्त धरौं ब्रु, कंद समान सर्वैया सोमत ।
 (छन्द प्रभाकर पृ० ७४)

जहाँ समान रूप से १६, १६ मात्राएं हों,
 वह समान सर्वैया छन्द होता है।

श्री वृन्दावन वास दीजिए वास यहै वृन्दाभान दुलारी ।
 वंशीवट तट नट नागर संग करत केलि अवलोकौं प्यारी ।
 ललित किशोरी छूक उठत हीं फूँकि बंसुरिया की दह मारी ।
 दरसन किं चित्त विकल रहत अति राधा हरौ सु बाधा हमारी ॥^२

६- राग

छन्दों से भी अधिक रागों का प्रयोग ललित
 किशोरी जी ने अपनी वाङ्मय में किया है। इससे उनके राग सम्बन्धी व्यापक
 ज्ञान का परिचय मिलता है। दोनों ग्रन्थों में दोहा और चौपाई की छोड़कर

१- अमिताभ माधुरी पृ० २०६ । १४

२- ,, पृ० ६८ । ४

प्रत्येक पद्य के प्रारम्भ में उसके राग का उल्लेख है। लगभग १०० रागों का उल्लेख उनकी रचनाओं में मिलता है। उनके नाम इस प्रकार हैं :

सहाना, फेफोटी, हेमन की माफ़ , देस ,
 चैती गौरी , परज ठुमरी , सारंग , कलंगड़ा , धनासरी , सैमाच , वासा-
 वरी , छाटी, मैखी , दादरा , काफ़ी वा ज़ैया , दीपवंदी व ज़ैया ,
 जोगिया , ललित गौरी, कजरी , ललित , षट , विभास, मैराँ , माल-
 कोश , जलहिया , विलावल , पीछू , सिन्धु मैखी , बहार, कुकव विलावल ,
 माफ़ , टोड़ी फफ़ाल , जोगिया , जैनपुरी टोड़ी , मैखी दादरा ,
 जंगला , टोड़ी कवित्त, जै जै वन्ती , हेमन, मलार , गौड मलार , जिला
 हेमन, कान्हरा , धुफ़ , धानी , विहाग , सम्माच चौताला , जैजैवन्ती
 चौताला , धनासरी चौताला , सोरठ , वागैसरी कान्हरा , कान्हरा ,
 कछाना , सोरठा खिफ़टा , पीछू दादरा , सामन्त सारंग , जंगला दादरा ,
 सारंग ताल फूमरा , धनात्री फफ़ाल , धमार , देस गिरनारी , जोगिया
 कलंगड़ा , सिन्धूरा , सिन्धु काफ़ी , राग धानी , राग पुरखी , राग
 सुल्तानी , राग पुरिया , राग हेली , राग हमीर , कान्हरा नायकी ,
 राग माला, कल्याण , बरवै , सोहनी , देस सारवंत , फर्ज तिताला , रागत्री,
 पुरखी गौरी आदि आदि ।

...

षष्ठ अध्याय

ललित किशोरी जी का हिन्दी साहित्य को योगदान

और उनका मूल्यकन

योगदान

मूल्यकन

भक्त रूप

कवि रूप

रास रसिक

उदार सेठ

सलित किशोरी जी का हिन्दी साहित्य को योगदान
और उनका मूल्यकिन
योगदान

भक्ति भावना, दर्शन, काव्य सौन्दर्य

आदि और आचार्यों के अन्तर्गत सलित किशोरी जी के साहित्य का पर्या-
लौचन किया जा चुका है। उन सभी में कवि के कृतित्व एवं उनकी उत्प्रेक्षणीय
सफलता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। फिर भी यह प्रश्न बना ही रहता है कि
कवि का अपने क्षेत्र में क्या योगदान है ? इस प्रश्न का अर्थ यही है कि प्रत्येक
कवि के वाङ्मय में क्या वह महान् ही अथवा साधारण ऐसी विशेषताएँ तो
बनी रहती हैं जिनके आधार पर उसकी रचनाएँ अविस्मरणीय और संस्म-
रणीय होती हैं। काव्य का सौन्दर्य प्रत्येक कवि के काव्य में किसी न किसी
मात्रा में रहता है। वह न हो तो काव्य जीवित नहीं रह सकता। कवि के
साथ ही वह भी मर जाता है। इसी प्रकार "दर्शन" भी कुछ न कुछ प्रत्येक
कवि में मिल जाता है। जीवन के प्रति उसकी अपनी दृष्टि होती है। भक्ति
तो हर एक के लिए अनिवार्य नहीं होती। बिना भक्ति भावना के भी लोक
जीवन को लक्ष्य बना कर रचे गए काव्य में कवि की अविस्मरणीय देन होती
है। संस्कृत के महान् कवि भास, कालिदास, माघ, भारवि आदि सर्वात्मना
भक्त नहीं थे। पर उनका साहित्य शाश्वत और अमर है। इस प्रकार किसी
कवि की रचनाओं में उत्कृष्टता का रहना एक बात है और देन दूसरी बात।
उत्कृष्टता साधारण है, अर्थात् कवि के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती कवियों में
भी वह गुण है तो उस उत्कृष्टता को कवि की देन अथवा योगदान नहीं कह
सकते। देन का तात्पर्य उन उत्कृष्टताओं से होता है जो उसी कवि की असा-
धारण विशेषताएँ होती हैं। अन्य कवियों में वे उस स्तर की नहीं मिलती।

संदीप में योगदान का अर्थ है साधारण उत्कृष्टता अथवा उत्कृष्टताएँ ।

इस दृष्टि से अपनी आलोच्य कवि ललित किशोरी जी के वाङ्मय का पर्यालोचन अब करना है। ऐसा करने के लिए यह न्यायतः अपेक्षित है कि पहले कवि के दोष का विचार करें । उसके काव्य का उत्स क्या है ? उसे आधार बना कर कवि ने किन किन आयातों में अपनी भावों को रूपायित किया है- यह परस्मात् वक्त्यन्त आवश्यक है। अपने दोष में ही किसी कवि के योगदान का निर्धारण किया जा सकता है।

ललित किशोरी जी मूलतः भक्त हैं, भक्त भी सही भाव के । उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सबका सब सही भाव की भक्ति के अन्तर्गत ही आता है। उसके बाहर उन्होंने जो कुछ लिखा होगा - इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। प्रस्तुत कवि सम्पन्न परिवार के व्यक्ति थे । उन्होंने जो कुछ लिखा वह सब सुरक्षित है। व्यवस्था के साथ सुरक्षित है। उसमें कहीं भी ऐसे भाव नहीं मिलते जो सही भावना से इतर भक्ति के भी हों । कवि अपनी भावना में अभिनिव्विष्ट है। उसका उसे विनीत आग्रह है। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि ललित किशोरी जी की भक्ति भावना ही उनकी साधना थी । उनका सारा जीवन सही भाव से राधा कृष्ण की पूजा उपासना और अपनी अभिमत भाव की भावना में व्यतीत हुआ । वे प्रसुप्तः कवि या भावुक नहीं थे । प्रसुप्तः साधक थे । साधना के फलस्वरूप उनकी भावना ने आवेगमयी बनकर काव्य का रूप ग्रहण किया था । जब वे वृन्दावन वा गये तो उन्होंने अनुभव किया कि वहाँ पर भी जीक निष्ठाओं के अन्तः सन्त रहते हैं। वे सभी पूज्य हैं। पर उनके सत्संग और उपदेशों को सुनकर अपनी भक्ति भावना में रस का अन्तर भी आजाय- यह उन्हें स्वीकार्य

नहीं था । उन्हें वृन्दावन में, ब्रज में और सारे संसार में श्यामा-श्याम ही
दिसायी पड़ते थे :

वृन्दावन धाम बहुरंगी या प्रमीन बसै ,
हंस परमहंसन की रंगत है रंग सरी ।
श्याम श्याम नाम लेत भाषत कवित्त यह
स्क स्क रसिकन के पाँयन में जा डरे ।
ललित किशोरी जैसे सावन के अंध भये ,
बारी मास चहुँ और सुभात है रंग हरे ।
एही रंगिज भरे नैनन की रंग ऐसी ,
श्यामा श्याम रंग बिना रंग ना नबेरि परे । १

यह अनन्य भाव की भक्ति ललित किशोरी
जी में प्रारंभ से ही थी । वंश- परम्परा के उनके संस्कार चैतन्य संप्रदाय के
तो थे ही । विशिष्ट और साग्रह अनुभूति उनकी व्यक्तिगत विशेषता थी ।
लसतऊ के निवास काल में उनकी भावना का स्वरूप वही था, जो वृन्दावन
में जाकर पल्लवित पुष्पित हुआ । अर्थात् सखी भाव की भावना और तदनुरूप
उपासना । वृन्दावन जाने से पहले की उनकी कामना अमिताभ माधुरी के
विनय वादि प्रहरणों में व्यक्त हुई है । उसका स्वरूप भी सखी भाव का
है । कथोलिखित पद में वही रूप ललित हो रहा है :

हा हा हा अब क्षिमी किशोरी ।
बहुत नसी यह वैस वृथा ही , किन देखे सुन्दर वर जोरी ॥

१- अमिताभ माधुरी पृ० १२७ । ११४

ऐसी करी कहु वैगि स्वाभिनी कृपावलोकन लसि निज जोरी ।
निरस्त रहौ तुव ललित किशोरी डरी रहौ नित कुंजन सोरी ॥१

इस प्रकार राधाकृष्ण के शृंगार का वर्णन करना और सखी बनकर उसे देखने का आनन्द लेना सखी भाव की भक्ति - भावना है। यह ललित किशोरी जी का प्रकृतिस्थ भाव है। यही उनकी चिन्तना, भावना और कल्पना का मूल उत्स है। इसी को आधार बना कर उनके साहित्य का महत्त्व खड़ा हुआ है। उनका सारा साहित्य इसी स्थायी भाव पर केन्द्रित है।

अतः एक तो यही देन ललित किशोरी जी की है कि उन्होंने एक ही भाव को केन्द्र मान कर इतना विशाल साहित्य लिख डाला। अपनी कल्पना से उन्होंने बिन्दु को सिंधु में परिणत कर दिया है। सखी भाव के और भी अनेक भक्त कवि हुए हैं। संभवतः उनमें से किसी का भी न तो इतना विपुल वाङ्मय है और न उसमें इतना वैविध्य जितना ललित किशोरी के वाङ्मय में विद्यमान है। साधनात्मक सम्प्रदाय को सदा दृष्टि में रखकर वैविध्यपूर्ण साहित्य रचने वाला अकेला यही कवि है। इस प्रकार कल्पना के बल पर सीमित को असीम, अणु को महान्, किंवा ह्रस्व को दीर्घ बना लेना ललित किशोरी जी की उल्लेखनीय देन है।

इसी प्रसंग में यह प्रश्न भी उठता है कि उपर्युक्त सिद्धि उन्हें किस प्रकार मिली। इसके लिए उन्होंने क्या उपाय किए? इस प्रश्न का उत्तर भी यदि उनके काव्य में ढूँढा जाय तो वह भी कवि की एक देन ही प्रतीत होगी।

इस सिद्धि का कारण उनकी रूप-विधा-यिनी कल्पना है। कवि ने राधा और कृष्ण की शृंगार चेष्टाओं के शतशः रूपों की कल्पना की है और उन्हें सहज भाषा में पथबद्ध किया है। कवि अन्य भक्त कवियों की भाँति राधा जी से विनय करता है तो यही कि वह उनकी शृंगार चेष्टाओं को देख देख कर वानन्दित होने का संयोग पाये :

फनीन वल्लन वंग लादिली, लालन दृग रिफवार ।
कोकिल वन बिहरत ललौ, कुंजन लता निवार ॥
सुरमावत लट मुकुट सौ, उरफत चट दृग तात ।
रसिक जुगुल वन कुंज में, निरखहुँ तरे तमाल ॥ ९

होली, सावन आदि पर्वों पर राधा कृष्ण की जो विशेष लीलाएँ व्यवा विशेष शृंगार चेष्टाएँ होती हैं, वाष्टयाम में जो उनकी शृंगारिक दिनचर्या है, उन सब में कवि उस वानन्दाभूति का साक्षी बनकर रसपान करता है। यह भाव पुट उनकी प्रायः प्रत्येक कविता में मिलता है।

‘युगल विहार’ वर्णन कवि का विशिष्ट प्रकरण है। इसके दो सौ दोहाँ में कवि ने निःसंकोच भाव से युगल दम्पती का शारीरिक शृंगार चित्रित किया है। चित्रण बिंबात्मक है जो भक्त की भावना का परिचायक है। इसमें भी प्रायः सर्वत्र कवि उस शृंगार लीला की कर्तृग सखी रूप से दर्शक बनकर अनुभूति करता है। यह अनुभूति न तो तटस्थ भाव की कही जा सकती है और न ऐसी कि कवि का पात्रों के साथ साधारणीकरण हो गया हो। वह विलक्षण वाध्यात्मिक अनुभूति है। कवि ने अपनी कल्पना से वाराध्य राधाकृष्ण युगल की मानवीय धरातल पर उतार

कर मानो शारीरिक शृंगार में सराबोर दिखाया है। यह सब वाध्यात्मिक स्तर पर परमतत्त्व का लीला रमण है जो उनके नित्य विहार का प्रतीक है :

ज्योंज्यों मन नैनन हिये, चढ़े मदन की रंग ।
 त्यों त्यों जुगुल विहार में, मसकि मिलावें रंग ॥
 कधर संहि गलबाह दै, कसे कैं इतराय ।
 दफन जुगुल विहार में, बँक विलीकि सिहाय ॥ १

इस प्रकार ललित किशोरी जी का समस्त काव्य वात्मपरक है। लीलाओं का चित्रण भी काल्पनिक और अस्वाभाविक नहीं है, पर कवि का सही रूप सर्वत्र उपस्थित रहता है। इसलिए उस चित्रण को वस्तुपरक नहीं कह सकते। इतना विशाल और इतना सम्प्रदाय केन्द्रित ललित साहित्य कबिस्त्री अन्य भक्त कवि का नहीं है। साहित्य की यह सम्प्रदायपरकता कवि की अपनी अभिमत भावना की अनन्यता उनकी दूसरी देन है। ललित किशोरी जी के वाङ्मय को पढ़कर पाठक को यह प्रतीति होती है कि कवि अपने समय के परिवेश, भक्ति साहित्य की परंपरा, हिन्दी साहित्य की तत्कालीन शैली में गिमा - इन सबके प्रति विशेषवाकर्षित नहीं है। वह अपने में मग्न है और अपने अनुसार ही अपने वाराध्य का लीला विस्तार करने में लगा है।

सही भाव की उपासना में गुह्य भाव का तत्त्व रहता है। भगवत् तत्त्व की वे लीलाएँ इसमें वर्णित की जाती हैं, जो साधारण भक्त को सुलभ नहीं होती। सही भाव के उपासक लोग स्वयं को भगवान् के निकटतम परिकर का रंग मानते हैं। इसलिए वे उन लीलाओं के

वैष्णव या साधनी बनते हैं। यह उनकी विशिष्ट पारंगतता है। अध्यात्म में गुह्यता का संकेत गीता में भी आया है। वह गुह्य साधना परतत्त्व की अचिन्त्य, अनीचर लीला है। प्रेम भावना के उपासकों में प्रेम तत्त्व का ऐसा उत्कर्ष जो गुह्य हो सकता हो, रति झीड़ा में ही अभिव्यक्त हो सकता है। रति प्रेम का चरमोत्कर्ष है। अतः सखी भाव में राधा और कृष्ण की शारीरिक रति झीड़ा का वर्णन सखी भाव की साधना का गुह्य आख्यान है।

ललित किशोरी जी ने अपनी काव्य में इस दिशा में चरम विन्दु का स्पर्श किया है। यद्यपि तब उन्होंने ऐसी शृंगार चैष्टारें चित्रित की हैं, जिन्हें लौकिक दृष्टि से अश्लील अथवा ग्राम्य कहा जा सकता है। भगवदुचित कहना अच्छा सा नहीं लगता। युगल विहार प्रकरण के निम्नलिखित दोहों में राधा जी के गुप्त वँग और स्तनों की चर्चा की गई है :

ऐसिई रहूँ, हूँ सरकि हाँ, बोलैं भरि सिसकार ।
 लेहि फुरहरी परस्पर, लसि लसि जुगल विहार ॥
 बूझै पीथ का परसि, गुप्त वँग सुकुमार ।
 लली ^नकुकुटिया लेहि कसि, रस वस जुगल विहार ॥
 दोऊ भरे गँदुवा, तुमरे नाँहिकार ।
 कहै लाल सकुची लली, अद्भुत जुगल विहार ॥ २

ऐसे वर्णनों को यदि लौकिक साहित्य की

१- इयं तु ते गुह्यतमं प्रपञ्चाम्यनसूयके ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयेथ शुभात् ॥

- श्रीमद्भागवद्गीता ६।१

२- कमिलाचमामधुरी पृ० ४०।७६

कला मर्यादा की दृष्टि से देखा जाय तो नितान्त ग्राम्य माने जाएँ पर संप्रदाय की अपनी दृष्टि से यह अनावृत्त शृंगार प्रेम भावना का मुख्य वास्तु है। राधा और कृष्ण जो तत्त्वतः एक परतत्त्व का ही द्विपन्नित रूप हैं, विस्मृतान्य व्यापार होकर आत्म रति में लीन हो जाते हैं। वे आनन्द के उदधि में आकण्ठ मग्न हो जाते हैं। सखी उनके आनन्द पर स्वयं आनन्दित होती है और वह भी विस्मृतान्य व्यापार बनकर परमानन्द का लोभ करती है। इस प्रकार सखी भाव की उपासना का मुख्यतम रूप ललित किशोरी जी के वाङ्मय में प्रकृता से अभिव्यक्त हुआ है। यह उनका हिन्दी साहित्य और भक्ति साहित्य का उल्लेखनीय योगदान है। उन्हें भी साहित्यज्ञों की तीखी समीक्षा का ध्यान अवश्य रहा होगा पर इसकी उन्होंने चिन्ता नहीं की। सखी भाव के साहित्य में ललित किशोरी जी इस अनावृत्त मुख्यतम शृंगार वर्णन के लिए उल्लेखनीय हैं। अतः एक दृष्टि से जिस कोई साहित्य का दोष कह सकता है, वही दूसरी दृष्टि से कवि का कृतित्व है।

शाह जी के योगदान के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने रास लीलाओं का विशाल वाङ्मय रचा है। इस वाङ्मय का ही नाम है - 'रास कलिका'। इसका परिचय पहले दिया जा चुका है। चौबीस दलों के इस विस्तृत ग्रंथ में २६६ रास लीलाओं का वर्णन हुआ है। इसमें अनेक दृश्याँ, राग रागिनियाँ और छन्दों का प्रयोग हुआ है।

शाह जी के बनवाये हुए मन्दिर का नाम भी 'ललित निकुंज' है। अनेक रास लीलाओं का अभिनय स्थल भी ललित निकुंज ही दिया गया है। शाह जी अपने मन्दिर में ही उसके प्रति निकुंज भावना रखकर अपनी देस रस में रास लीला कराया करते थे। यह बताया जा चुका है कि घुन्दावन में प्रत्यक्ष रास लीला के प्रवर्तन में सखी भाव के आदि रसिक

स्वामी हरिदास जी का बहुत बड़ा योगदान माना जाता है। इस भाव के उपासक उन्हीं को रास परंपरा का वादि प्रवर्तक मानते हैं। शाह जी ने उन्हीं की परंपरा का अनुसरण करते हुए यह विपुल रास लीला साहित्य रचा। साहित्य और रास लीला की परंपरा में यह उल्लेखनीय योगदान ही माना जायेगा।

ललित किशोरी जी ने अपने जाराध्य के विलास विहारों को समसामयिक अमिजात वर्ग के जीवनके साथ जोड़ने की सफल कल्पना की है। कवि का परिवार धनीमानी सेठों का था। उसमें अपनी ही जीवन की सुविधाएँ प्रचुर और उच्च कोटि की थीं। दूसरे इस परिवार का लक्ष्मण की नवाबी से निकट संपर्क था। दोनों ही स्थान उच्च अमिजात वर्ग के थे। अतः शाह जी की कल्पना में वही वा सकता था। कला के पौत्र में कलाकार कितना ही प्रयत्न करे अपने से भाग नहीं सकता। वह उन्हीं दृश्यों, कार्य व्यापारों और वादशों को अविव्यक्त करता है, जो उसे संस्कार रूप में या संवेदना के रूप में अपने परिवेश से मिलते रहते हैं। ललित किशोरी जी ने भी अपने जीवन और परिवेश से कल्पना की सामग्री संचित की है।

इस कार्य में उन्होंने परंपरा का उतना अनुसरण नहीं किया जितना निजी बोध का किया है। साथ ही उनकी यह अभिलाषा प्रतीत होती है कि अपने जीवन की ऊँची शान-शक्ति, उच्च स्तरीय भोग विलास और वैभव से संपृक्त कर अपने जाराध्य की लीलाओं का वर्णन किया जाय। भगवान् कृष्ण और राधा जी का विहार विलास भक्तों की परंपरा में ब्रज के लोकधित में घटित हुआ था। यमुना तट, गोवर्धन

ब्रज के तरु- पादप, लता कुँज , गायें वादि उसका परिवेश था । ब्रजवासियों का सरल सामान्य भाग विलास जैसे माखन, दूध, दही, आदि का स्वच्छन्द प्रयोग उनका वैभव था । पर समय बीतता गया और इसमें परिवर्तन आता गया । बठारहवीं, उन्नीसवीं शती के कवियों ने राज परिवारों के जीवन का वर्णन राधा कृष्ण के साथ करने की परंपरा बना ली थी । ये लोग भक्त नहीं थे । नाम मात्र के लिए राधा और कृष्ण के नामों का नायक- नायिकाओं के स्थान पर प्रयोग करते थे । इनका वर्णन विजय वर्मा समय का अभिजात संपन्न जीवन था ।

तलित किशोरी जो ने भक्ति के दौर में इस परंपरा को अपनाया है। उन्होंने युगल विहार वर्णन में ऐसी वस्तुओं का प्रयोग किया है, जो नवाबों और सेठों की सुख सुविधा के वर्ण थी ।

बड़े दर्पण (आदर्शकद) के सामने राधा और कृष्ण रति क्रीड़ा करते हैं। अपने कंगों को मिलाते हैं और देखते भी जाते हैं :

दीर्घ वर्ण सामुह, चितै चितै जग भेलि ।

कीजै जुगल विहार में, नई नई रस केलि ॥ १

रति क्रीड़ा के बीच बीच में मधुपान करते जाते हैं। उसके प्रभाव से फिर रति का नया उत्साह प्राप्त करते हैं :

बींजि बींजि पी पी मधू , वधू रसिक हुलसाय ।

फिरि फिरि जुगल विहार में, लस्त पस्त लै जाय ॥ २

१- कमिलाचमामधुरी पृ० ४०।११

२- .. ४५।६५

रस कलिका में सात बार मधु पान लीला का थोड़े थोड़े परिवर्तन के साथ वर्णन किया गया है। पहले दल में 'बरजौरी मधुपान लीला', चौथे दल में 'मधुपान व्याहृता लीला', उन्नीसवें दल में 'मधुपान प्रसंग वर्णन' और छक्कीसवें दल में 'मधुपान लीला', 'मदन मधुपान लीला', 'मधु विसाहन लीला और 'बरजौरी मधुपान लीला' ये चार लीलाएँ मधुपान से ही संबद्ध हैं। छक्कीसवें दल में 'मधुपान लीला' के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस दल का शीर्षक भी 'मधुपान माधुरी' है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जीवन के भोग विलास में मधुपान का प्रयोग नवाबों और सामन्तों के यहाँ होता था। संभवतः वह ललित किशोरी जी के कुमव दौत्र में भी नहीं था। पर अभिजात वर्ग के विलास का प्रतीक क्लेश था।

इसी प्रकार रस कलिका के पाँचवें दल की दो लीलाओं में राधा और कृष्ण जल विहार करते हैं। एक में साधारण जल विहार है और दूसरी में जल कैलि के प्रसंग में राधा जी के मान का वर्णन है। जल कैलि भी राज परिवारों में उस समय संभव थी। जन साधारण के जीवन में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

इसी दल में 'हमाम लीला' भी शाह जी ने लिखी है। जाड़े का समय है। यमुना में स्नान करना कष्टकर है। अतः सखी कुरोध करती है कि बाज उदमा सखी के घर हमाम में ही स्नान किया जाय। राधा कृष्ण सहमत हो जाती हैं। सखियाँ के साथ उदमा के घर पहुँचते हैं तो वह दोनों का भक्ति भाव से स्वागत करती है। सँदीप में हमाम का चित्रण इस प्रकार है :

नवल उदम गृह कुंज सुहाई ।

पाँति पाँति नव निर्मित चूल्हा ता बिज अनल वधिक सुखदाई ॥
 रतक कनक माजन मरि जल सौं तिन पर धरे उदमता लीने ।
 जैह तैह रतक कुंभ जल पूरित गात सुहाते सीरि कीने ॥
 पवन प्रवेश न लेस कहूँ ह्वै जाली छिन दार न मोला ।
 भीतिर भवन प्रकाश कारने जहँ तहँ रासि सुकर भरीला ॥
 प्यारी लाल बाल ललितादिक उबटि उबटि सबहिंन जन्हुवावै ।
 ललित किशोरी दासी मलि मलि जग फुलैल लाय सनुपावै ॥ १

इसी प्रकार बारहवें दल में जल यन्त्र (फुव्वारा) की शोभा राधा और कृष्ण सोकर उठने के पश्चात् देखते हैं। यह दल संपूर्ण ग्रीष्म ऋतु के विहारी से सम्बद्ध है। जल यन्त्र शोभा उसी का एक जग है । उस समय वातावरण- गृहों में जल यन्त्र का निर्माण अत्याधुनिक और पर्याप्त व्यय साध्य विलास था । मुगल शासकों ने अपनी शोभा गृहों में सर्वत्र झकी रचना करायी थी । ताजमहल, शालीमार बाग आदि में बड़े विस्तृत रूप में जल फुव्वारे लगे हैं। लखनऊ में भी नवाबी महलों में झकी व्यवस्था थी । ललित किशोरी जी ने अपनी आराध्य के शृंगार विलास के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा है। फुव्वारे का वर्णन इस प्रकार है :

हवि छाये रही नव कुंज में चहुँ ओर फुहार हजारन सौं ।
 फुकि फूमि रही द्रुम बेलि लता नव पुंज प्रसून के भारन सौं ।
 सुचि सीतल मंद समीर बहै रस कामकला अनुसारन सौं ।
 रस रूप सुमाधुरि सावन में ससि भीजि रही बौझारन सौं ॥ २

ग्रीष्म विहार के वर्णन में वायु यंत्र (पंखा)

१- रसकलिका दल ५ । ४३१

२- ,, दल १२।३

का भी उल्लेख कवि ने किया है।

जलयन्त्र की भाँति रसकलिका के ही १८ वें दल में शीश महल की चर्चा भी की गई है। राधा और कृष्ण वृन्दा देवी के शीशमहल में व्याहृत करने जाते हैं। उस प्रसंग में शीश महल का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

शीश महल नव कुंज विसाली ।
 ससि वृन्दा राखी यक डाली ॥
 राखीबंद किवरियाँ फिलफिल ।
 फन न सीत प्रस तहँ तिल तिल ॥
 कासमीर बासीन बनाये ।
 दरन साल परदा लटकाये ॥
 नरम बिहायत गरम गलीचन ।
 महल प्रशाशित मीनन मरीचन ॥
 केसर कतर सुगंध सुवासित ।
 मधुर मधुर धुनि बरगन बाजित ॥
 मणि सज्जा वति गुल गुल गादी ।
 बीच सजी रतिकैलि विवादी ॥ इत्यादि १

इसी प्रकार रत्नों से संबद्ध दो लीलाएँ सत्रहवें दल में आयी हैं। एक है- 'रतन दलालिन लीला' और दूसरी है 'जौहरी लीला' इन दोनों लीलाओं में श्रीकृष्ण रत्न दलाल और जौहरी

बनते हैं। राधा जी सखियों के साथ जाकर उनका मौल भाव और तरीक करती हैं।

इस प्रकार जोक प्रसंगों में ललित किष्कीरी जी ने अपनी जीवन के वर्तमान रूप के साथ श्रीकृष्ण और राधा जी को संबद्ध कर उनका वर्णन किया है। इतना अभिनव सौन्दर्य शायद ही किसी भक्त कवि ने अपनी भक्ति भावना में संनिविष्ट किया है।

शाह जी कैवशर्मा से एक कहानी सुनने को मिली। बम्बई का कोई धनी सेठ सायंकाल कोशाह जी की रासलीला देखने उपस्थित हुआ। उसके कंठ में, हाथ के मणिबंध और अंगुलियों में बहुमूल्य रत्नों से जड़े आभूषण थे। संभवतः अपना वैभव दिखाने का वह उससे मन में था। शाह जी ने देख लिया। विदा होते समय उनसे कहा कि कल जोहरिन लीला होगी। आप अवश्य जाएँ। दूसरे दिन वह आया। जोहरिन का रूप बनाये श्रीकृष्ण के अपनी पेट्टी में से निकाल निकाल कर कद्भुत, बहुमूल्य रत्न राधा जी को जब दिखाने प्रारम्भ किये, उनकी चमक से रसिक सभा चमत्कृत हो उठी। सेठ लज्जित हो गया। शाह जी के रत्न संग्रह को देखकर वह चकित हो उठा।

शाह जी के पास जीवन का जो श्रेष्ठ था, मूल्यवान् था, उसे वह भगवान् का समझते थे। अपनी समस्त सम्पत्ति का स्काधिकार वह ठाकुर जी को ही दे गये हैं। उनके वंशज ठाकुर जी की सेवा कर मृति रूप में अपना भाग प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के वर्णनों का सांस्कृतिक महत्त्व भी बहुत है। कवि का काव्य भक्तिमय होकर भी अपने समय का साक्षी है।

इस संदर्भ में यह भी नवीन परिकल्पना मानी जाएगी कि शाह जी ने फारसी शैली की कविता और उसी शैली की प्रेम-भावना अपने साहित्य में स्वीकार की है। 'वभिलाष माधुरी' के अन्त में २६ गजल संग्रहीत हैं। उनमें फारसी में रचित भी हैं। अधिकतर उर्दू भाषा में लिखे गये हैं। इनमें भाषा ही नहीं भाव भी उर्दू फारसी शैली के हैं। इस शैली को वाशिकाना शैली कह सकते हैं, जिसमें ऐन्द्रियकृता, उपलापन और चित्त की चंचलता विशेष रूप से वर्णित रहते हैं। हिन्दी साहित्य की मध्य-कालीन प्रेम पद्धति इस शैली से प्रायः बहूनी ही रही थी। यद्यपि उस समय हिन्दी के कवियों का फारसी-उर्दू कवियों से पर्याप्त संपर्क था। इसका कारण था हिन्दी कविता का संस्कृत के काव्य शास्त्र से जुड़ जाना। नायिकाभेद, रसभेद, उत्सर्ग भेद आदि की सीमाओं में बाध होकर हिन्दी कविता फारसी के प्रभाव से बची रही।

शाह जी की प्रेम भावना सही भाव की है, अतः उसमें भी ऐन्द्रियकृता और निर्बन्धता का पुट रहता है। इसलिए अपने काव्य में इस शैली का उपयोग करते हुए उन्हें संकोच नहीं हुआ है :

ब्यारी के संग खड़ा था, वह साविला विहारी ।
 दृग कोर मोर मेरे सीने जड़ी कटारी ॥
 सुध बुध रही न तन की सब भुल गई हमारी ।
 जमना के तीर सुन्दर जहाँ फूलों फुलवारी ॥
 दिल ले गया हमारा नंदलाल हँसते हँसते ॥

०

०

वाहँ ललित किशोरी ब्रज बाल हँसते हँसते ।
 कुँजी मैं ले गया हल गोपाल हँसते हँसते ॥
 कुछ जादू की सी पुदिया पढ़ि डाली हँसते हँसते ॥

वह कर गयी बेदर्दी बेहाल हँसते हँसते ।

दिल ले गया हमारा नंद लाल हँसते हँसते ॥ १

रसकलिका के चौथे दल में " वाशिक लीला " की योजना की गई है। इसमें श्रीकृष्ण वाशिक हैं और राधा जी माशुक । लीला का प्रारम्भ इस प्रकार होता है :

नव नैही मोहन रसिक लख लटफ्ट फा पाग ।
चल्यो लुबली गैल मुस सिन्धु मेखी राग ॥
श्रीकृष्ण- मैं हूँ जईफु नातवाँ और दूर है यार की गली ।
पहुँचावो मुझको मेहरवाँ कूचे तक उसके ए क्ली ।
जुल्फों में मेरा मन कैसा चितवन नै मेरी मति क्ली ।
सौ चाँद से उजरिया प्यारी है मान की लली ।
मुसकान मे है जादू क्या चलने में सुब क्लबली ।
ललिताकिशोरी शौ लियाँ हैं बाल बाल में रली ॥ २

इस प्रकार के भाव ब्रज भाषा के पथों में भी वार है। इनकी समीक्षा यदि प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र की मर्यादा के साथ की जाय तो उदात्तता के अभाव में अनौचित्य का दोष प्रतीत होता है। भगवतत्त्व के साथ ऐसे मनचले भावों का मेल नहीं है। पर शाह जी की चेतना में न भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा है और न भक्ति सिद्धान्त की दार्शनिक गरिमा । सही भाव की साधना होने के कारण उनका सारा वर्णन ऐन्द्रिक शृंगार का रहा है। उसके परिप्रेक्ष्य में यह वाशिकाना प्रेम भी बहुत अलग नहीं लगता । जो भी हो, कवि की नवीन परिकल्पना तो मानी ही

१- वभिताम माधुरी पृ० २६३, २६४। २, ८

२- रसकलिका दल ४। ११६

जाएगी ।

एक ओर अपने समय के अमिजात जीवन के विविध उफरणाँ से अपने आराध्य कीलीलाओं को शाह जी ने मीठित किया है, तो दूसरी ओर लोक जीवन की कनेक ऐसी छोटी छोटी घटनाओं की लीलाएँ भी उन्होंने लिखी हैं, जो ब्रज के ग्रामीण ँवलों में प्रसिद्ध हैं। उनसे सम्बद्ध रास लीलाएँ ग्रामीण रासधारियों द्वारा लिखी जाती थीं । श्री प्रभु दयाल मीतल ने अपने ग्रन्थ ' ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास ' में इनका विवरण दिया है।

शाह जी ने इस प्रकार कीलगभग २५ लीलाएँ कुछ छोटी और कुछ बड़ी इस कल्किा में लिखी हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

फाघट लीला, हिँडोल लीला (इसे वाफे कनेक रूपों में वर्णित किया है) , जल विहार लीला, नौका जल विहार लीला, घटवारिन लीला, बिसातिन लीला, सुनारिन लीला, होरी लीला, बटारी लीला, रंगदान लीला, मालिन लीला, मोहन बाग लीला, साँझी सिरावन लीला, ग्वालिन हृद्म लीला, दधिदान लीला, बेनीगूधन लीला , पीढितानी ब्रूथमान लीला इत्यादि ।

इन लीलाओं के वर्णन में निश्चित रूप से शाह जी ने लोक जीवन की दन्त कथाओं को समायोजित कर भवित भावना में नयी दिशा का संकेत किया है। इसमें उनके व्यापक वैदग्ध्य का भी परिचय मिलता है। शाह जी स्वभाव से नागरिक थे । ब्रज के ग्रामीण ँवल से उनका अनुभव सिद्ध परिचय नहीं था । फिर भी उस पर विस्तृत वाद्मय लिखकर

१- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास .x. भगवान कृष्ण और राधा की शृंगार केलि में

वपनी सरस भक्ति भावना का प्रदर्शन किया है। ~~भगवान् कृष्ण और राधा की~~
~~शृंगार के लिये~~ सांझी लीला का संदिग्ध परिचय इस प्रकार है ।

यह रस कलिका के चौदहवें दल में संगृहीत है । वाश्विन् मास का शुक्ल पक्ष दो भागों में विभक्त रहता है- नवरात्र और सांझी । पहले नौ दिन नवरात्र के होते हैं और बाद के शेष सांझी और टसू खेलने के । इनमें लड़कियाँ सांझी खेलती हैं और लड़के टसू । सांझी मिट्टी का केदों वाला छोटा पात्र होता है जिसे कुम्हार विशेष रूप से इसी कार्य के लिए तैयार करता है। उसमें दीपक जला कर रस दिया जाता है। लड़कियाँ उसके चारों ओर मंडलाकार बैठकर गीत गाती हैं । उसे लेकर पास पड़ोस के घरों में भी जाती हैं जहाँ से उन्हें फैसे या वन्न पुरस्कार रूप में मिलता है। पूर्णिमा के दिन सारी वर्जित सामग्री स्कत्र कर उत्सव मनाया जाता है। गीत गाती हुई सब लड़कियाँ वपनी वपनी सांझी गाँव के तालाब के किनारे पर रस जाती हैं। इसे 'सांझी सिराना' कहते हैं। 'सांझी' शब्द संध्या शब्द का तद्भव रूप है। यह खेल संध्याकाल में ही खेला जाता है।

सांझी लीला में श्रीकृष्ण गोपी का रूप बना कर सलियों में आ मिलते हैं और राधा आदि के साथ सांझी सिराने जाते हैं। खेल से राधा जी को अकेले स्कान्त में ले जाते हैं और विलास रस का आस्वाद लेते हैं।

ले लेउ री फल नैनन को री ।

सखी साँवरी के संग सांझी आज सिरावन जात किशोरी ।।

जो रस दृग मुसक्यात कल्लु सुस परसत वीग बलि निरस चकौरी ।।

इत उत हरणत निरसि निरसि हवि सभिकी सौज लिये

नव गौरी ॥

निरतत चली कली गलियन मैं चटक पटक भृकुटीन मरीरी ।

ललित किशोरी सुनी मनी ना अद्भुत रूप कूप किशोरी ॥१

इसी प्रकार " वभिलाष माधुरी " में दो बार बारह मासा का वर्णन किया गया है। यह भी लोक साहित्य की परंपरा के अन्तर्गत माना जाता है। शिष्ट साहित्य में इसके स्थान पर " ऋतु वर्णन " किया जाता है।

पहली बारहमासी (बारहमासा) लावनी कृन्द में है, जो इस विषय के लिए परंपरित है। वर्णन बड़े सरस और मौलिक है। इनमें यह सौष्ठव विशेष उल्लेखनीय है कि यहाँ ऐन्द्रियक शृंगार का वर्णन अधिक नहीं है। प्रकृति वर्णन का निर्मल सौन्दर्य पाठक को सुग्ध करता है।

लगा असाढ़ बाद जमुना वति, वर्णां रितु जाहें ।

रिमफिम रिमिफिमि मेहा बरसै, बूंदें सुहदाहें ॥

सुदामिनि दम्क लगै प्यारी ।

कौयल कूक, मोरिता कुहकनि, फि फुकार न्यारी ॥

वन वन भीषत हुलसाहीं ।

श्यामा श्याम रसिक रंग भनि, दीनि गलबाहीं ॥ २

दूसरे बारहमासा में भिन्न कृन्द अपनाया गया है :

१- रसक लिका दस १४। ६४

२- वभिलाष माधुरी पृ० ८१।१

युगल विहरन कहानी मैं सुनाऊँ ।
 कि बारह मास गुलहर उदाऊँ ॥
 जली वासाद का अब मास लागा ।
 कि यक यक पीत सौ नृप काम जागा ॥
 चहुँ दिशि घोर दल बादल के छाये ।
 नगीदें मेघ ने कदक सुनाये ॥

०

०

निरसि रस रंग बरसे जलिन जसियाँ ।
 सु जै जैकार बोलैं सकल सलियाँ ॥ १

इस प्रकार जैक रूपों में ललित किशोरी जी ने लोक परम्परा, लोक जीवन और लोक संस्कृति को अपनी भक्ति भावना और साहित्य में समाहित किया है। यह उनके साहित्य की ऐसी विशेषता है जो पाठक की दृष्टि को हठात् अपनी ओर आकृष्ट करती है। ससी संप्रदाय के अन्य भक्त कवियों की तुलना में इसे देखा जाय तो यह भी उनकी स्मरणीय देन ही माननी पड़ेगी।

सारांश में ललित किशोरी जी की निम्न-
 लिखित देन है :

१- ससी भाव की स्कान्तिक भावना और उसी को एक मात्र केन्द्र बनाकर साहित्य की सृष्टि करना ।

२- कवि की रूप- विधायिनी-कल्पना जिसके बल पर उसने ब्रह्म को समुद्र बना दिया है।

 १- अमिताभ माधुरी पृ० ८५ । १-३, ७

३- आत्मपरक साहित्य की सृष्टि ।

कवि युगल- विहार के लीला विलास में प्रत्येक क्षण स्वयं उपस्थित रहता है।

४- सखी भाव के गुह्यतम रूप का चित्रण ।

५- रास लीलाओं के विपुल साहित्य की सृष्टि ।

६- अपनी मक्ति भावना में अभिजात जीवन के विलास साधनों का उपयोग ।

७- उर्दू फारसी की काव्य शैली और भाषा शैली का प्रयोग ।

८- लोक- जीवन का रास लीलाओं एवं अन्य कृतियों में उपयोग ।

मूल्यांकन

शाह जी के कृतित्व का मूल्यांकन करते समय उनके कृती रूप का विश्लेषण भी किया जाना चाहिए। वह भक्त, कवि, रास रसिक और उदार सेठ के रूप में हमारी कल्पना में उभरते हैं। इनमें से प्रत्येक पक्ष का मूल्यांकन करना इस दिशा का सही प्रयास होगा। सर्वप्रथम उनके भक्त रूप का वाकलन करते हैं।

(क) भक्त रूप

शाह जी का भक्त रूप उनके जीवन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। अन्य तीन पक्ष इसी से प्रेरित और इसी के फल हैं। अपने जीवन में वे मुक्तः और प्रमुक्तः भक्त थे। जब तक लखनऊ में अपने परिवार में रहे भक्ति भावना ही उनके जीवन का मुख्य कर्म रहा। भक्तों की संगीत, भक्ति पूर्ण कविता का प्रणयन और अपने आराध्य का ही सदा ध्यान बनाये रक्ता उनकी जीवन चर्या थी।

‘अमिलाज माधुरी’ में संगृहीत उनके पद्य इस भाव के हैं कि शाह जी को लखनऊ का राजसी जीवन हेय प्रतीत हुआ। वे वृन्दावन में रहकर निरन्तर राधा कृष्ण के सान्निध्य का लाभ प्राप्त करने के लिए तालाशित थे। अन्ततः वही उन्होंने किया। अपनी प्राप्य सम्पत्ति को लेकर वृन्दावन आ गये और एक समर्पित भक्त का जीवन जीने लगे। यहाँ आकर उनकी दैनिक चर्या भगवदाराधन के अतिरिक्त और कुछ न थी। इतना ही नहीं, अपने परिवार का प्राचीन मंदिर गुरुजनों को समर्पित कर दिया।

स्वयं अपनी निजी सम्पत्ति से मध्य देवालय का निर्माण कराया और आप उसके सेवक बनकर रहने लगे। इसी में उन्होंने अपनी जीवन की सार्थकता सम्झी। इसी में उन्हें आनन्द अनुभव होता था। मंदिर से सटा हुआ उनका आवास-गृह इसी प्रकार का है जैसे देवालय के कर्मचारियों का हो। शाह जी ने अपना व्यक्तित्व, सम्पत्ति, यश, वैभव सर्वस्व राधाकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया। स्वयं उनके निकुंज में (ललित निकुंज) में सोहनी सेवा (फगाड़ लगाना) करने वाली ठहलनी सखी बन गए। जैसे नदी अपना नाम और रूप त्याग कर समुद्र में लीन हो जाती है उसी प्रकार शाह जी लखनऊ के सेठ कुन्दलाल शाह न रहकर ललित किशोरी सखी बन गये। अनेक सखियाँ में से एक। चित्र, कविता, वादि में भी वे सखी रूप में ही आये हैं। इतना विस्तृत, विशाल साहित्य उन्होंने लिखा है। पर कहीं भी उनका गृहस्थ नाम नहीं आया। यह उनके सर्वात्मना समर्पण भाव का परिचायक व्रत है।

ललित किशोरी जी की कविता की उत्सृष्टि, उसकी प्रेरणा का स्रोत भी भक्ति भावना ही है। समस्त काव्य उनके भक्ति भाव का फलबन जैसा है। काव्य में राधा कृष्ण की शृंगार लीलाओं का चित्रण है और सर्वत्र ललित किशोरी सखी अन्तर्ग सविका के रूप में उपस्थित रहती हैं। कवता कवि अपनी तीव्र लालसा व्यक्त करता है कि वह उन लीलाओं का दर्शन कर आनन्दित होने का सुयोग प्राप्त करे। इस प्रकार ललित किशोरी जी का काव्य उनकी भक्ति भावना का आख्यान मात्र है। निष्कर्ष में यही कहना होगा कि ललित किशोरी जी के कृतित्व के अनेक पद्यों में से उनका भक्त पदा सबसे प्रमुख और अन्य सब पद्यों का बीज रूप है। वही सबकी प्रेरणा है।

(स) कविरूप

ललितकिशोरी जी तत्त्वतः कवि नहीं हैं। कवि की सी वात्मस्थापन की प्रवृत्ति उनमें कहीं नहीं दिखायी देती। कवि लोग प्रायः किसी न किसी पूर्ववर्ती महान् कवि को अपना आदर्श मानते हैं। उनकी कहीं न कहीं अपने काव्य में चर्चा करते हैं। वास्तव में वह उनके जीवन का अनुकरणीय आदर्श होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस में वेद, पुराण, निगम, आगम आदि को अपना आदर्श मान कर उनका उल्लेख किया है। वाल्मीकि की स्पष्टतः प्रणाम किया है :

बंदरुं मुनि पद केशु, रामायन बहिर् निरमयउ ।

सर्वर सुकोमल मसु, दोष रहित दूषण सहित॥ १

लीलतीकशेरीजी ने इस प्रकार कहीं भी किसी भक्त कवि, अथवा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू फार्सी के किसी प्रसिद्ध कवि की चर्चा नहीं की है। इसका तात्पर्य यही है कि उनका काम्य कवियज्ञ नहीं है। उनका आदर्श कवि का बुद्धि वैभव नहीं है।

इसीलिए उनकी वाणी में जहाँ कहीं भी काव्य सौन्दर्य अथवा वाग्वैदग्ध्य आया है, वह सहज रूप में ही आया है। प्रयत्न पूर्वक उसका सन्निवेश कहीं भी नहीं किया गया लगता। वैसे बिंबात्मक चित्रण, रूपक, विरोध, उत्प्रेक्षा आदि कलंकार कृताधिक स्थलों पर प्रयुक्त हुए हैं, पर वह सब कवि की भावात्मक कल्पना का फल है। कवि की प्रतिभा सर पर केन्द्रित नहीं है।

ललित किशोरी जी की वमिव्यक्ति प्रधान रूप से इतिवृत्तात्मक सहज सरल है। उनकी भाषा स्वच्छ , परिष्कृत है। इस शैली में उन्होंने प्रचुर वाङ्मय की सृष्टि की है। उक्तियाँ^{कहे} भी शिथिल और लचर नहीं हैं।

इस प्रकार ललित किशोरी जी की गणना उन भक्त कवियों में की जाएगी जिन्हें कवि बनने की चिन्ता नहीं होती। वे अपनी भक्ति भावना में मग्न रहते हैं और अपनी भावना के वेग को ही कविता के रूप में व्यक्त करते हैं। इस वमिव्यक्ति में अनेक चित्रात्मक वर्णन, अप्रस्तुत योजना, चमत्कार का प्रयोग आदि सौन्दर्य तत्त्व आ गये हैं। सब मिलाकर ललित किशोरी जी का कवि सामर्थ्य मध्यम कोटि का है।

इस प्रसंग में दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। किसी कवि के कवित्व परीक्षण में उसकी भाव सम्पत्ति का विचार अनिवार्यतः किया जाता है। उस दृष्टि से ललित किशोरी जी के वाङ्मय को परखा जाय तो उसमें शिष्टता , उदात्तता और परिष्कार के गुण बहुत कम मिलते हैं। शृंगार के नाम पर ग्राम्य चेष्टाएँ , वक्षिधा प्रधान भाषा में वर्णित कर दी गयी है। सम्प्रदाय की रहस्य भावना के नाम पर साधना दौड़ में उसका समाधान किया जा सकता है। पर काव्य सौंदर्य की दृष्टि से वह दोष ही रहेगा , परम सत्ता का नित्य विहार यदि प्रत्यक्षातः दिसाना है जैसा कि अनुकरण रास में किया जाता है तो उसे भाव स्तर पर दिसाना शोभाजनक होगा। वही नित्य शाश्वत भी हो सकता है। पर सही भाव में ऐसी मान्यता नहीं है। कुछ भी हो काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह दोष ही है।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि ललित किशोरी के काव्य में कौतुक चमत्कार का तत्त्व भाषा के क्षेत्र में मिलता है, जो उनके कवि सामर्थ्य का धोतक है। उन्होंने ब्रजभाषा के अतिरिक्त लड़ी बोली, रेस्ता, उर्दू, फारसी, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी, काश्मीरी आदि भाषाओं में कविता की है। इससे एक ओर उनकी भाषा बहुज्ञता का परिचय मिलता है और दूसरी ओर उनके नूतन प्रयोग करने के कौतुक का भी परिज्ञान हो जाता है। इस प्रकार निष्कर्ष में यही कहा जाएगा कि ललित किशोरी जी का कवि रूप न सर्वथा उच्च स्तर का है और न निम्नतम स्तर का है। कवि के रूप में वह मध्यम मार्गी है।

(ग) रास रसिक

ललित किशोरी जी के रास रसिक रूप की अभिव्यक्ति उनकी 'रास कलिका' रचना में हुई है। इसके आकार, प्रतिपाद्य विषय, मूल भावना आदि का परिचय रचनाओं के प्रसंग में, काव्य सौन्दर्य के प्रसंग में और योगदान के प्रसंग में दे दिया गया है। २५० से ऊपर रास लीलाओं की विविध छन्दों और राग रागिनियों में रचना करना अपने में एक उपलब्धि है।

शाह जी के समय में रास लीलाओं का वृन्दावन में बड़ा प्रचार था। इनकी दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं। एक तो वृन्दावन के सन्त भक्त ब्राह्मण बालकों की श्रीकृष्ण, राधा, गौप, गोपियों का रूप बना कर प्राचीन प्रसिद्ध भक्त कवियों के पदों के द्वारा लीलाओं का अभिनय कराया करते थे। इनमें हित हरिवंश जी, स्वामी हरिदास जी, हरिराम व्यास जी,

स्वामी प्रबोधानंद जी, विट्ठल विपुल जी आदि तथा अष्टहाप के कवि नंद दास, परमानंद दास, चतुर्भुजदास आदि भक्तों की रचनाएँ गायी जाती थीं। यह परंपरा विशुद्ध धार्मिक थी। इसमें विरक्त सन्तों के अतिरिक्त गृहस्थी भक्त लोग भी उपस्थित होकर रसास्वादन करते थे।

दूसरी पद्धति, व्यावसायिक रास मैदलियों की थी। इस पद्धति के आदि प्रवर्तक करहल गाँव के पैदित उदयकरण और लक्ष्मण माने जाते हैं। ये लोग यद्यत्न प्राचीन भक्त कवियों के पद गाते थे। अधिकतर स्वरचित एवं अन्य लोक कवियों द्वारा रचित पद एवं गीतों का प्रयोग करते थे। बड़ी बड़ी लोक कथाओं पर 'स्वर्ग' रचें और रेंते जाते थे। श्रीकृष्ण से सम्बद्ध लीलाओं के अभिनय को रास कहा जाता था।

ललित किशोरी जी ने अपनी लीलाओं में अन्य कवियों की रचनाओं को नहीं लिया है। प्रसंगवश संस्कृत के कतिपय श्लोक— और मन्त्र संगृहीत कर लिये हैं। लीलाओं की समाप्ति पर 'फुटकर' के प्रकरण में कहीं कहीं हित हरिवंश जी और हरिदास जी के पद संकलित कर लिये हैं। अतः उनके कृतित्व का एक तो यही महत्व है कि लीलाएँ केवल एक व्यक्ति द्वारा लिखी गयी हैं। इसीलिए इनमें घटनाओं की क्रमिकता और संधान बहुत है। एक ही शैली और एक ही भाषा में लिखी गयी हैं। अतः स्वरूपता और व्यवस्था के साथ एक विधा को उपस्थित करना मूल्यवान् प्रयास है।

१- रासलीला परंपरा के उद्भव और विकास का विस्तृत लेखा जोखा रासधारी विहारीलाल के पुत्र राधाकृष्ण ने अपने ग्रंथ 'राससर्वस्व' में दिया है। इसकी समीक्षा श्री प्रमुदयाल पीतल ने 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' ग्रंथ में विस्तार से की है।

इसका मूल्यकर्म करने में यदि उपर्युक्त प्रयास को महत्व दिया जाय और इस वाङ्मय की विपुलता का आकलन किया जाय तो निःसंदेह रूप से शाह जी का कृतित्व अभिनन्दनीय और प्रशंसनीय लगता है। उन्होंने रासलीला वाङ्मय को स्वरूपता और व्यवस्था दी। उन्होंने अपनी प्रतिभा का बहुत बड़ा भाग इसकी रचना में व्यय किया। पर आज भी ये रासधारियाँ में अधिक प्रचलित नहीं हैं। कुछ लोग जहाँ तहाँ इनके पथों का प्रयोग करते हैं। पर जैसा सुसंगठित रूप शाह जी ने प्रस्तुत किया था वह अविकल रूप में किसी रासधारी द्वारा प्रयुक्त नहीं हो रहा। इसका कारण अनुमानतः यही प्रतीत होता है कि रास लीलाओं का यह साहित्य नितान्त साम्प्रदायिक, ऐकान्तिक है। सही भाव की साधना में, विशेषकर ललित किशोरी जी की भावना में, लीलाओं का जो गोप्य शृंगारमय रूप था उसकी अभिव्यक्ति इनमें हुई है। कहीं भी किसी अनास्थाय कथ्य को छोड़ देना, अपना व्यंजना से उसकी अभिव्यक्ति करना वादि सुन्दर उपाय इनमें नहीं गृहीत हुए। ऐसी रचनाओं का जन साधारण में प्रदर्शन करना व्यावसायिक लोगों के लिए लाभ कर नहीं हो सकता। इसे सामान्य जन रुचि का प्रसादन -रंजन भी नहीं हो सकता। अतः निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि ललित किशोरी जी के रास रसिक पदा का जो कृतित्व है उसका साम्प्रदायिक, व्यक्तिगत परिवेश में अधिक मूल्य है। जन सामान्य की भावुकता और रसिकता का उससे अधिक आह्लादन नहीं होता।

(घ) उदार सेठ

शाह कुन्दन लाल जी के व्यक्तित्व का यह पदा सर्वजन संग्राह्य और बहुजन प्रशस्त है। अपनी अर्जित सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग व्यय करके भव्य, कलात्मक देवालय का निर्माण उन्होंने कराया।

उस समय लगभग दो लाख रुपये इसके निर्माण में व्यय हुए थे। इसमें भूमि का मूल्य नहीं है। परिवार के लोगों ने तो यह भी बताया कि इसमें जितना पत्थर लगा है, वह जयपुर महाराज ने स्टेट की ओर से दिया था। भूमि भी उन्होंने ही बिना मूल्य लिये दी थी। शाह जी के मथिर के बास पास का भू भाग 'जयसिंह का घरा' कहा जाता है। अपनी मूल परिवार से विमुक्त होकर अपनी सम्पत्ति में से इतना भाग निकाल देना साधारण उदारता का काम नहीं हो सकता। बारहसही प्रसंग में शाह जी ने कहा है कि यदि सम्पत्ति पाकर भी कोई उसे राधाकृष्ण की सेवा में व्यय न करे तो शाह किस बात का ? एक और शाह में फिर अन्तर ही क्या रहा ?

सस्सा सम्पति पाय कै, दम्पति के उत्साह ।

सर्व न कीनी हर्षा तौ, कहा रैक कह साह ॥ १

शाह जी ने 'ललित निबुंज' जिसे सामान्यतः लोग 'शाह जी का मन्दिर' अथवा 'टेढ़े सम्भों का मन्दिर' कहते हैं, उसका निर्माण कराकर अपनी उदार स्वभाव का परिचय दिया है, इसका निर्माण नवाबी स्थापत्य और पश्चिमी स्थापत्य के कला सौन्दर्य की दृष्टि में रत्नकर किया गया है।

प्रमुख भवन के सामने विस्तृत ऊँचा चबूतरा है। उस पर पानी की कलात्मक फव्वारी नालियाँ बनी हैं। उनके मध्य में फुव्वारे हैं। इनका पानी गुप्त नालियों द्वारा उत्तर में यमुना की ओर बह जाता है। जल कला का यह सौन्दर्य मुगल काल में ही स्थापत्य का उत्कर्षण बन गया था। मुख्य भवन के ऊपर मुकैलों पर झूलानी शैली की मसित सौन्दर्य से सज्जित परियाँ

की मूर्तियाँ श्वेत रंग की बनाई गई हैं। मन्दिर के जगमोहन में जो चित्र बने हैं उन पर भी पाश्चात्य चित्र कला का प्रभाव लक्षित होता है। सब मिलाकर 'ललित निरुंज' 'वर्चस्वीन शैली' का भव्य विशाल निर्माण है।

इसमें विशेष रूप से द्रष्टव्य यह है कि सौन्दर्य विधान, अलंकरण, भव्यतारोप आदि के प्रयास उसी भाग में किये गये हैं, जो देवालय हैं। उसी से सटा शाह जी का वावास स्थान है। वह साधारण, ^{निर्वह} ~~निर्वह~~ योग्य बना है। इससे निर्माता की इस रुचि का आभास होता है कि वह जीवन को सुविधा और वैभव के उपभोक्ता एक मात्र राधा कृष्ण को ही समझते थे। स्वयं तो उनके प्रसाद के अधिकारी थे। उनके कुंज में साहसी सेवा करने वाली सखी ललित किशोरी।

शाह जी के इस उदार पक्ष का जितना मूल्यांकन किया जाय, उतना थोड़ा होगा। प्रतिदिन सहस्रों भक्त और दर्शनार्थी 'ललित निरुंज' के दर्शन करने आते हैं और भगवान् का भव्य वावास देखकर सात्त्विक गौरव की अनुभूति करते हैं। यद्यपि यह देव भवन शाह परिवार की व्यक्तिगत सम्पत्ति है। पर ऐसी दुष्कल्पना करना अनुचित होगा कि कभी यह दर्शनार्थियों के लिए बन्द कर दिया जाएगा। ऐसा शायद ही कोई यात्री होगा जो वृन्दावन में आकर शाह जी का मन्दिर देखे बिना अपनी यात्रा पूरी मान लेता हो। शाह जी की भक्त समाज को यह महनीय देन है।

...

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को उपसंहृत करते हुए हम कह सकते हैं-कि श्री ललितकिशोरी जी जिनका वंश नाम शाह कुन्दन लाल था, लखनऊ के एक समृद्ध और गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित परिवार में जन्मे थे ।

२- इसीपासना उनका संस्कार भी थी और व्यक्तिगत साधना भी ।

३- शाह जी लखनऊ में ही काव्य रचना करने लगे थे ।

४- उन्होंने गौड़ीय सम्प्रदाय के वृन्दावन-वासी गोस्वामी राधा गोविन्द जी से दीक्षा ली थी ।

५- वृन्दावन में आकर वाप एक समर्पित भक्त का जीवन जीने लगे । राधा-कृष्णकी पूजा- अर्चा करना, उनकी लीलाओं के ध्यान में मग्न रहना और उन्हें काव्य निबद्ध करना- यही उनकी दित्तचर्या थी ।

६-संवत् १९२५ में वाफो वफा भव्य देवालय (शाह जीका मंदिर) बनवाया और इसका नाम वफा सखी भावना के अनुरूप ' ललित निरुज ' रखा ।

७- शाह जी के छोटे भाई शाह फुन्दनलाल जी थे जो उनके साथ ही वृन्दावन जा गए । उनका निकृज नाम 'ललित-माधुरी' था । वेभी काव्य रचना करते थे । शाह जी की समस्त रचनाओं का संचयन , संपादन और प्रकाशन इन्होंने ही किया ।

८- शाह जी के कार्य काल में उत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थिति अस्थिर एवं परिवर्तमान थी । बंगरेजी शासन पैर फैला रहा था । नवाबी छद्मत विदा हो रही थी । सन्ध्याकाल था ।

९- इस काल में व्यक्तिगत जीवन को विशेष रूप से निर्भय शान्ति मिली । ब्रज - वृन्दावन ने भी शान्ति सन्तोष का वातावरण प्राप्त किया ।

१०- व्यक्तिगत साधना के लिए यह अनुकूल परिस्थिति थी ।

११- मध्यकाल की रसिकता जो काव्य और कला का केन्द्र बिन्दु रही थी, अभी अवशिष्ट थी । इससे धर्म साधना भी प्रभावित हुई ।

१२- गौरांग महाप्रभु की ब्रजयात्रा का उत्तर भारत की भक्ति साधना पर गंभीर प्रभाव पड़ा था । रसोपासना की ओर भक्त जन विशेष रूप से उन्मुख बने ।

१३- मोहम्मद मतानुयायियों के आक्रमणों में जो ब्रज- वृन्दावन का संहार हुआ था उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप इस काल

में हिन्दू राजाओं और सेठों के अन्तःकरण में विशेष रूप से भक्ति भावना जगी। उससे अनेक मंदिरों के जीर्णोद्धार हुए और नये मंदिर बने। उसी परंपरा में शाह जी ने अपना मंदिर बनवाया।

१४- बाफ़ी दो रचनाएँ संग्रह रूप में प्राप्त हैं। 'अमिताभ माधुरी' प्रकाशित है। 'रसकलिका' हस्तलेख रूप में है। इसका लघु संस्करण 'लघु रस कलिका' नाम से प्रकाशित भी हुआ था।

१५- 'अमिताभ माधुरी' में भक्ति भावों के फुटकल पथों का संग्रह है। 'रसकलिका' लीलाओं के वर्णन का विशाल संग्रह है। ये वर्णन रास-अभिनव की दृष्टि से किए गए हैं।

१६- ललित किशोरी जी की उपासना और भावना सखी भाव की है। यह भाव गौड़ीय सम्प्रदाय का ही एक अंग है। वहाँ 'सखी' और 'मैत्री' तत्त्व की व्यवस्थित कल्पना है।

१७- इस भाव में उपास्य मुख्य रूप से राधा तत्त्व है। कृष्ण तत्त्व का स्थान गौण है। विचारस्तर पर राधा तत्त्व में ही कृष्ण तत्त्व भी समाहित रहता है।

१८- राधा कृष्ण की निभृत निकुंज की शृंगार लीलाएँ, जिन्हें सम्प्रदाय में 'निकुंज लीला' कहा जाता है, सखी भाव में प्रमुख रूप से वर्ण्य होती हैं।

१९- सखी इस युगल विहार की साक्षी सेविका होती है। वह युगल के सुख की स्वानुभूति में सुखी होती है। यह सखी सम्प्रदाय का 'तत्सुख सुखित्व' है।

२०- तलित किशोरी जी का संपूर्ण साहित्य इसी भाव का नाना रूपी पल्लवन है। वे ' युगल विहार ' को कुंज के जाल रेश से भाँकते हैं, उनके प्रेमालाप सुनते हैं, उनकी स्कान्त सेवा करते हैं ।

२१- शाह जी की सम्प्रदाय में " सोहनी सेवा " मिली थी । अर्थात् निकुंज में फाड़ लगाने का काम ।

२२- काव्य सौन्दर्य इनकी रचनाओं में कम नहीं है। साफ-सुथरी ब्रज भाषा में भावों की बिंबात्मक अभिव्यक्ति मिली है। वर्णकों का प्रयोग सहज, यथावश्यक है। छन्दों और राग रागिनियों की संख्या बहुत बड़ी है।

२३- उर्दू- फारसी केशवर्दों का भाषा में प्रयोग है। इनमें उन्होंने गजल भी लिखे । भाव शैली पर भी उर्दू- फारसी का प्रभाव है।

२४- शाह जी के भावों में तस्नवी, नवाबी, जीवन पद्धति का प्रभाव है। उन्होंने ' युगल विहार ' को अपने समय के सब प्रकार के वैभव विलास से सज्जित किया है।

२५- उनके वाङ्मय में काव्य सौन्दर्य का प्रशंसनीय स्वरूप विद्यमान है, बिम्ब- विधान, चमत्कार , वर्णकों सौंदर्य, छन्द योजना, रागानुविधान आदि के सभी तत्त्व विद्यमान हैं जिनसे वाणी काव्य बनती है।

२६- तलित किशोरी जी का रास लीला लेखन के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस पर एक तो उनकी

रचना 'रस कल्पा' वाकार में इतनी विशाल है कि वही एक उल्लेखनीय कृतित्व है। दूसरे प्राचीन ग्रन्थों और भक्त कवियों के द्वारा वर्णित लीलाओं के अतिरिक्त ललित किशोरी जी ने ऐसी लीलारं भी दी हैं जो लोक जीवन में आज भी प्रचलित हैं। इसप्रकार उनका यह साहित्यशास्त्र और लोक, परम्परा और प्रयोग दोनों ही का कूता है। एक ही व्यक्ति के द्वारा अनेक लीलाओं को पूर्णतः काव्यबद्ध करना रासलीलाओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कार्य है। रासधारी प्रायः अपनी और दूसरों की रचनाओं को मिलाकर रासलीलाओं का अभिनय करते हैं। आज भी बुन्दावन और बाहर ब्रज की अनेक रास मंडलियाँ ललित किशोरी जी के पदों एवं पणों का अभिनय में प्रयोग करती हैं।

२७- भक्तों की परंपरा में शाह जी का कृतित्व हिन्दी साहित्य की शृंखला की एक अविस्मरणीय कड़ी है। उनका ब्रज प्रेम भक्तों की 'वार्ता' बन गया है। वे कवि रूप और भक्त रूप दोनों में सफल रहे। उदार सैठ के रूप में भी उनका यश अक्षुण्ण है।

...

परिशिष्ट - १

सलित किशोरी

जी के

२५० पद

परिशिष्ट -१

रसकलिका ललित किशोरी जी की विशाल-
काय रचना है- यह रचनाओं के प्रकरण में (अध्याय ३) बता चुके हैं ।
वह प्रमुखतः हस्तलिखित रूप में ही है, अतः उसके कतिपय पथों का परिचय
यहाँ दिया जा रहा है। ये पथ ग्रन्थ के चौबीस वलों से संग्रहीत हुए हैं। उन
सभी लीलाओं का संकलन करना यहाँ कठिन था, इसलिए केवल नमूने की दृष्टि
से यहाँ कुछ पथ दे दिए गए हैं। इस संग्रह में इस बात का विशेष ध्यान रखा
गया है कि संकेत वृत्ति से उनके मनोरंजन और काव्य शैली का पाठक को
परिचय मिल सके ।

पथों के साथ दी गयी संख्या मूल रस-
कलिका की है। लीला का नाम उपशीर्षक के रूप में दे दिया गया है।

प्रथम दल- वृन्दावन विलास माधुरी

वरजोरी मधुपान लीला

(१)

पान करत मधु प्रीतिम प्यारी ।

भरलि मलि वरफ सु लै लै आवत मन मोदक मादक रस सारी ।

पीवत आप पितावत अलियन अंगूरी नारैज कनारी ।

बिच बिच काढ़ि वरफ सौ लावत अति सीतल अंगूर सुनारी ॥ ४६ ॥

(२)

विहरत नव किशोर सुकुमारी ।

सखिलहिं कर वरविन्द फिरावत गति कहू मूम सुमारी ।

कतहुँ मोर संगनाचत हँसि अति उनमत्त विहारी ।

वँशी कुहूँ सुनत रस बस पिय गल भुज भेलत प्यारी ।

मधु प्याले लै पिये परस्पर लेन देन शितकारी ।

कवौ सन्निन वरताय दैत अलि लेत वैलि बलिहारी ।

कबहुँ रुचिर कुसुम कच रावत दुउ ससि वदन निहारी ।

ललित किशोरी मृदुल अलाप्त मिलि कबहुँ अलि न्यारी ॥ ४६ ॥

(३)

तुल सुनदे की कवि न्यारी नहीं उपमा बनत विचारी ।
 लखि कलैं घूँघर वारी उर मदन मौज लहिरारी ।
 क्या बैलियाँ सुब चुमारी चषा चितवन गजब तिहारी
 मूहु मुस्कन जब निहारी बलि जुलमी दित नूँ प्यारी ।
 उह उठती जोर जवानी बस बाफ़ीति जाँ दित जानी
 कर कथरामृत मदिमानी मा भेलि क्कौँ रस सारी ।
 प्रत लाज कान कुल तोरी दुक मसकि मिली क्या चोरी ।
 ममानी ललित किशोरी अब करिये बलि बलिहारी ॥ ५१ ॥

(४)

ठौरी ठौरी मतरहो यक ठौरी निज ठायी ।
 बलि बैठी सब विधि सुनद तहाँ कहु भय नायि ।
 तहाँ कहु भय नायि अबे लौँ जैन मै गुजरी ।
 इहठाँ गिरत क्कास मजो देखी भरि नजरी ।
 भली भली वदि सबे क्कमा क्कम दाँरी दाँरी ।
 बैठी गहँ बलि ललित किशोरी अपनी ठौरी ॥ ६० ॥

(५)

बिहार अस्थली में चलौ ए जिये ।
 अम्न नैन चित चाह मधु पीजिये ।
 मुल्ल भोग के फिरि कुछ वीर मजे ।
 उसी से रस वानंद निधि ऊपये ।
 विवस हौं, सखी अफनी मन मौज से ।
 सुरति कैलि सुख सिंधु बूझी परे ।
 ललित वर किशोरी हँस ताल दे ।
 बिहार अस्थली में घुसे कूदते ॥ ६५ ॥

जमुना कैलि वरनन

(६)

जमुना हवि ना जात बखानी ।
 ललित तरंग तरल चित हरनी हलकौन चित नैन समानी ।
 नील वरन जल विमल मनोहर जहँ तहँ भौं अधिक सुगुनानी ।
 ललित किशोरी उमगी बावत गौद मरी सोभा रस खानी ॥ ६६ ॥

द्वितीय दल- निर्वृज कससान माधुरी

प्रथम मंगला

(७)

मोरहिं उठि वलि जुगल जगावत ।
 बैठत धरि निर्वृज चहुं दिशि मधुरे नाना बाज बजावत ।
 धीमै धीमै सुरन दैत कहूँ कबहुँक लै ककु अधिक बढ़ावत ।
 बाधित मध्यम परम रसीली कबहुँक ठेका गतिहि उठावत ।
 सलटत विविध ताल झि झि पै राग रागिनी बहु उपजावत ।
 कबहुँ ठीप लै जाय मुरलिया कबहुँ बीन सब साज दबावत ॥

परि परि मृदुल गिटकारी गौरी कौमल तीव्र सुवि विध सुनावत ।
 तलित किशोरी बीच बीच लै बोलि मैरवी मोर जतावत ॥२॥

(८)

सुंद परी दियला की जोती
 परसि अंगुरियन लसे हबील सीतल नाशा मोती ।
 तलित किशोरी मम मा मिति मरी नीद वति सोती ।
 विधित ताल फा चापि जगावत मदन पीर उर होती ॥ ६॥

(६)

मूँदि मूँदि तिय णोलत फलैं ।
 भटकि दैत कर रसिक लाल को टारन दैत न मुण सौं कलैं ।
 ज्याँ ज्याँ मुकुलित नैन कबीलै तनक तनक वाली शुलि भलैं ।
 ललित किशोरी मदन कैलि की त्यौँ-त्यौँ बढ़त लाल उर ललैं ॥११॥

(१०)

सुण सज्या नव कुंज भवन मैं कलसौहैं दोउ प्रात उठेरी ।
 नैन मीठि जमुहात परस्पर बैग मरीरि चुटकि चटके री ।
 ललित किशोरी नवल नेह के फेद मैं फेद नहिं सुरफे री ।
 उठिबै चहत बनत नहिं उठिबौ दृग सौं दृग अब तो उरफे री ॥१३॥

द्वितीय पैगला

(११)

यह कवि की कवि सौं बसानी ।
 नैनन मूँदि नींद के कल सौं जील कलसानी ।
 अलक नि वारि कपीलन हूमत तनकन लन टसकानी ।
 ललित किशोरी रसिकगमकत उर सौं दुक सिसकानी ॥१८॥

(१२)

भवन गवन बरवा न चलावो ।
 नवल निवृज सेज पर राजा लीचन त्रिषित कमी रस प्यावो ।
 वीरी पान करौ कर मेरे उरफे कच वैशर सभरावो ।
 ललित किशोरी सुरति रंग मैं कटु बतियाँ कानून सुनावे ॥ २२ ॥

(१३)

पिय प्यारी के धोवत नैना ।
 जीवत वदन लँक उढकायें बोलि रसीलि कैना ।
 पीकृत पलक पीक की लीकें मुण नण रेण छुटे ना ।
 ललित किशोरी कधरन कँज चुवन सेण रहैना ॥ २५ ॥

तृतीय मंगला

(१४)

जागो जी जागो प्राण पियारे ।
 चटकत कली गुलाब विलोकी गुंजत होत मधुप मनवारे ।
 फुदकन लगे पगीरु डारन इति उति कुरकुर विशद फुकारे ।
 आवत जात धार जमुना लौ उठि उठि जुग कवाक निहारे ।
 चपवमात कब ललित किशोरी दुरत जात चहुँ दिशि के तारे ।
 प्राची दिशि कुराग दरस को दीजि दरसन रूप उजारे ॥ २६ ॥

(१५)

श्यामा श्याम फामकि गहि लीनी ।
 तटप्टाय फा धाय हाथ में लायी पट रंग भीनी ।
 तलित किशोरी गगन तलावत तपटि बाँह गल दीनी ।
 पात दिसात न कितहूँ नाँहिन भई तरैया छीनी ॥ २६ ॥

ज्वालामान लीला

(१६)

फैया परी में फैया परी में फैया परी में प्यारी तेरे ।
 छतनी बरष फतौ मम मानहिं कियो करी ना साम सवेरे ।
 होत कोठ रात दिन भस्की मृदु मुसावयान करी करि चरे ।
 तलित किशोरी जीवन मोरी मान कत के काल घनेरे ॥ १५१ ॥

सुगल विहार लीला

(१७)

बरसन लागी मेह हाथ कै सिक्क घर जाऊँ ।
 बहुते बुरी सनेह कियो मैं अब पकितऊँ ।
 देया हुक्मी भौर फटत पौ पीरी छराऊँ ।
 तलित किशोरी बाज लाज का धूरि मिलाऊँ ॥ १६१ ॥

(१८)

सुनी सुनी मो बात तुमै रस रात बताऊँ ।
 सोय रही लपटाय बहुत भई जाऊँ जाऊँ ।
 लूटौ अब रस रंग सेज कौ बलि बलि जाऊँ ।
 फिरि लीजौ पक्षिनाय हाय हितकी समुझाऊँ ।
 वरजौरी करि कैलि घरी द्वै दिवस चढ़ाऊँ ॥
 ललित किशौरी बाज लाज सब धूरि मिलाऊँ ॥ १६२ ॥

फुटकर फल वन निकुंज जलसान के

(१९)

तानि तानि सौवत फट मोरै ।
 बफ्फी बफ्फी और कबीलि वैचत जोरा जोरै ।
 रवि प्रतिबिम्ब वसन भनी सौ परत फलक मुण मोरै ॥
 मसक मसक उर ललित किशौरी सकत हत उत थोरै ॥
 १७६ ॥

(२०)

उरफि गयो पावन सौ वीर ।
 वैचत दृग मूढत जलसाने वावत सीस न वीर ।
 फुर फुराय उर लगत किशौरी सीतल प्रात समीर ।
 कंचन रेण खची मानौ रति कसनी श्याम सरीर ॥ १८१ ॥

तृतीय दल- पूर्व मग विलास माधुरी

विपरीत व्याहृ लीला

(२१)

जुगल हवि बनी कतूपम बाज ।
नागर गौर श्याम नागरिया मई वारने लाज ।
दुलहिनि व्याहि चली नव दूलह कतूपम कैल समाज ।
ललित किशोरी नेह नगर के ये रानी ये राज ॥ २१ ॥

(२२)

नव गोरे बने पै वारिया ।
लप छट पैच पाग के सुन्दर कर्क धूँघर वारिया ।
मृदु मुस्कन चित चोर तुकीली बैसियन कोर कटारिया ।
ललित किशोरी श्याम दुलहनिया तैसी ही बलिहारिया ॥ ४५ ॥

(२३)

वाहे बने बाज बना करी ।
गोरे गात बना बनि आयो सविल गात बनी करी ।
आभूषण पट फटे सबहीं फलटि लियो तन हमन री ।
ललित किशोरी मोद दामिनी पीव बहुरिया वानंदघन री ॥ ४६ ॥

राजपौरिया लीला

(२४)

फूलै बलि वरविन्द री जाती ।
 लज्जित बधू कुमौ दिन मौ दिन निरखि निरखि प्राची
 दिशि लाली ।
 बलि बलि वैग विसाहि लीजिए टुक पधारि राधा
 बनमाली ॥
 ललित किशोरी गगन जोहरी लायो ये मणिक मणि
 थाली ॥ ६६ ॥

(२५)

बाज पैरी कुल कान गर्ह ।
 हायरी हाय उपाय न कौऊ कौनसी करती उदै मर्ह ।
 का मुण लै घर जाउं ग्राम की का कहिहै मुहि देखि दह ।
 ललित किशोरी प्रान सँघा तिन सबहिन मिलि मुहि दगा दह ॥
 ॥ ६७ ॥

जुगल यार लीला

(२६)

प्यारी ब्रू कुरकूट शौर मचावै ।
 वरजत गगन राज रवि कब को तनक न भय उर लावै ।
 उडगन राज सल्लि सैनागत सुनि उपाधि उपजावै ।
 तलित किशोरी कृटिल निगौडे असमय मोहि न भावै ॥ १२१ ॥

रति विसमरनी लीला

(२७)

किशोरी जी ये मुखड़ा वैणि हसी ।
 दावि दावि मुण चीर सहेली वैणियाँ रूप फसी ।
 सेना वैनी कृत परस्पर फुकि फुकि अवन लसी ।
 तलित किशोरी वाकी बलि बलि लेसी पैति ससी ॥ १८६ ॥

(२८)

तली ये सुंदरी सुंदर श्याम ।
 तुम तो श्याम के नाम चिंत सणि कहाँ पाई फिरि वाम ।
 अपनी कहाँ गवाई राई हीरा की बभिराम ।
 तलित किशोरी बरसी बादर गई न दूजे धाम ॥ १८८ ॥

सैताप विचार लीला

(२६)

करत आरती लली मुदित मन ।

मेलि कपोल कपोल रसिक मणि भुकि भुकि हुलसि विलोकत
हृवि वन ।

करना नीर लेत कर जैजुलि पित पित मोहनी मोहन ।

ललित किशोरी जंगल ही में मंगल नित विलसत वानंद मन ॥

॥ २२१ ॥

फुटकर पद

(३०)

लगी तेरी श्याम सों जणियाँ ।

धुरी नींद नैनों में वाली जगी संग प्रीतम के रतियाँ ।

बिन गुन माल दिये मैं सोही लालन मसकि लगाई हृतियाँ ।

ललित किशोरी दुरै न नेहा लगन लगी प्यारीरस बतियाँ ॥

॥ २४५ ॥

(३१)

प्यारी तेरे लहून उन्दि नैन ।
 काजर रेष अघर पर रंजित मँडित अलक शिथिल अति बैन ।
 टूटी लर लटकत मुक्ता उर नष क्त चिन्ह सुरत मत मैन ।
 ललित किशौरी लालन के संग दुरत न निशि कीन्है सुषा चैन ॥
 २५४ ॥

चतुर्थ दल- प्रातः वन विलास माधुरी

(३२)

फाघट लीला

अलक जाल के फँदे परी ना ।
 जो चाहौ कुशलातैं हिय की मृदु मुसकयान अरी न बरोना ।
 तुम न लिनी मनमोहन मधुर भूले वाकी गैल ढरोना ॥
 ललित किशौरी औघट चलिये भौरा घाट मरी न भरोना ॥ २॥

(३३)

काँक रिया वयो घालै हमारी गागरिया ।
 निष्ट ढीठ लँष्ट नित रोकै कदम लता चढ़ि हागरिया ।
 बाज फरि तुहि ठीक बनाऊँ सुरति रहै मग साँक रिया ।
 ललित किशोरी तैं नट नागर हौँ नागरि गुन जागरिया ॥ २४ ॥

(३४)

नागरि नहँ पनहारि ।
 बँ दै कनक कुँजभकुवि जल सौँ भरे जात सुकमारि ।
 भरे नैन तृष्णित चिर दिन के दया लगत ना नारि ।
 पल्लव जाँक किये मुख निरखत ललित किशोरी वारि ॥ २५ ॥

(३५)

कैल मग वैठोइ जावे कैसिक जल लै जाऊँ ।
 गागरि सीस काँध विच धेला कर कर वास कुचाऊँ ।
 भुकि भुकि मँसकत लटक घूँघट की हौँ कूँवे को डराऊँ ।
 ललित किशोरी कौन जतन करि अपस पहुँचै गाऊँ ॥ २७ ॥

नवानुराग लीला

(३६)

बली यह प्यारे के रंग रंग ।
 त्योंही काँके पीत पट माती मदन तरंग ।
 तैसी ही उनमत्तता भ्रमन भुक्कन उमंग ।
 ललित किशोरी मग भ्रमन तैसेई सब ढंग ॥४१॥

(३७)

सौभा कद्भुत कुसुमसर मनों कोकन चंद ।
 घोरि घोरि विधि नीर में रच्यो सिन्धु आनन्द ।
 रच्यो सिंधु आनंद मीन तह नव सुमारी ।
 उठती रूप तरंग मिली सरिता कवि सारी ।
 ललित किशोरी ध्यानि धारि बलियन मन लोभा ।
 कूले निधि वरविन्द नैन निरखी या सौभा ॥ १०८ ॥

(३८)

नवल के ली मदमाती वाली औलुखि मरि मरि नीर उतारै ।
 ग्रीवा ग्रीवा लौ जल भीतर कसि कसि ऊँच रसिक विहारै ।
 वालिंगन लुँबन परिरंभन कटि कसि तनि तनि रूप निहारै ।
 ललित किशोरी गुप्त बसी पी पान करत तन मन ~~विहारे~~ ॥ ११७ ॥
 निवहारे

रसोदगार लीला

(३६)

ना पूछो ना पूछो श्याम सुन्दर बा तियाँ ।
 बली सौं कहिबे की नाहीं मोद कहानी रा तियाँ ।
 मैई जानौ मैई जानौ कै प्रीतिम को प्रेम री ।
 दूजी कौई जानै ना ये प्रीति पद्यति नैम री ।
 हीयो जानै लीचन जानै वानी नाहिं समाव री ।
 जो जानै सो बोलै छोलै ललित किशोरी पाव री ॥ १६५ ॥

संप्रम वै चित्ती लीला

(४०)

लली मरि नैनन वो धनश्याम ।
 मोर मुकुट मकराश्रित कुंडल कान्हूँ कान्हूँ नाम ।
 उर वनमाल मनोहर मुरली सुंदर कर वभिराम ।
 ललित किशोरी राधे राधे बाजत जाठौ जाम ॥ ३७३ ॥

पनिषट वान लीला

(४१)

लेहु दही कुउ लेहु दही ।
 चारखत ही रस मत्त तियन को सीरो हीरो होय सही ।
 रसिक समागम मोद वंग वंग फुरै तुरत जो पिये मही ।
 दुरलभ पुनि या रस के चसकै ललित किशोरी साँच कही ॥ ३६५ ॥

(४२)

भूदि दुऊ पट सकिर दीनी ।

चाँफ लग्यो चरन रस नायक वातुर वति गति मति रति
भीनी ।

फुल्ल परसि कपोल उरौजन फग तल तनक गुलगुली कीनी ।

ललित किशोरी चाँकिभजी जगि जौरै लाल रसिक छवि चीनी ॥

४४७।

वैद लीला

(४३)

ब्रज में वैद सावरीइ होई ।

जैत्री मैत्री तंत्र ज्योतिषी गुनी गाहुरी वीई ।

ऐक प्रीति की रोग हियाँ सखि दूजो रोग न कीई ।

ललित किशोरी वीणब ऐक कुँज कैलि रस जीई ॥४६४॥

(४४)

पेवटी गौली बनवावो ।

हार सिंगार तमान मालती संग पैदार कदम्ब फुमावो ।

मैलि दैत मानिक रस अरुन परसत परसत रोग नसावो ॥४७०॥

ललित किशोरी तन फग वेद न मिटे तुरतहि सेज सुवावो ॥

५०४ ॥

फुटकर पद

(४५)

चंचलश्याम दुग्गन हवि ऋत्की ।
 घाट बाट जमुना तट छेदत वान परी यह नागर नट की ।
 लटकि मटकि फटकी मेरी छूनर चौहट मैं नट मटकी पटकी ।
 उधरि गयो धूँधट पट पनिघट बिसरि गई सुधि बुद्धिघट
 पट की ॥ ६४६ ॥

(४६)

लकुट पिछौरी लै लै मैया ।
 पिछौरी लै लै मैया ।
 ना जैहाँ तेरी सौँ जब मैं धीवन माहि चरावन मैया ।
 सब गौपी का लिंदी तट मुहिँ गुलचा है बचवत ता धैया ।
 ललित किशौरी गहि वरजौरी कहैं राधे कीकही दुहैया ॥ ६४६ ॥

प्रेम दल - जलकैलि माधुरी

घटवारि लीला

(४७)

बनौ घटवारि रसिया सौभा जमित वपार ।
 सारी औढ़ि रासि कंचुलि फल कजरा दुग्गन डरार ।

चंदन घिसत विविध रंग बंदन धरत सवार सवार ।
ललित किशोरी पाँखि पाँखि पट राखत फुर निहार ॥९॥

(४८)

सौहत अति नीवीवंद कसनी ।
जित तित समिटन कटि प्रदेस तट गोरे अंग ललित मन बसनी ।
कसत कंचुकी वंद कसनिया घटवारिन के हियरे लसनी ।
ललित किशोरी चटक चूनरी बूंद बूंद प्रति नैनन फसनी ॥५१॥

जल विहार लीला

(४९)

जौघट घाट जाज बलिये री ।
टुकि लुकि लता मुरकि उत्तहीं रहि ससि ना लंपट सो मिलिये री ।
ललित किशोरी जहाँ होय नट पठवै तहाँ येक बलिये री ।
सखा वैष्ण धरि और ठौर ले जाय प्रमोद क्लै कलिये री ॥६७॥

(५०)

जाज कूपम रूप सखी री ।
सहस नयन रवि ससिहू लोचन यह सोभा त्रिभुवननलसीरी ।

नवल वधूटी बीच मनोहर सुंदर श्याम मुदित विलसै री ।
 दामिनी मध्य मनौ री सजनी नव धनश्याम सुधा वरनौ री ।
 अरुन कमल विकसित दसहू दिस नील कमल विच सौहै री ।
 कंचन भँवर परी जमुना कै लख मरकत मणि मन मोहै री ।
 कर क्रीटा फिकारि लपटि चलि बूढक लैल जाइ थली री ।
 ललित किशोरी न्हात रूप सर पेरा दृगन अघाह अली री ॥

॥१०६॥

कीर सरीवर लीला

(५१)

कीर सरीवर तीरथ राज ।
 मन वांछित फल दर्शन ही तैं देय हूँ देण्यो आज ।
 जब जब पार पारै रस कृपि तब तब सहित समाज ।
 ललित किशोरी कैये न्हैये तजि तजि कै सब काज ॥१४३॥

नौका जल विहार लीला

(५२)

लौक लाज कुल सैंक तजौंगी अब तो कलैंक लग्यो मोरी वाली ।
 क्यों गरीब नैनन हुस दीजि ललिये ना मन भरि बनमाली ।
 ये कहत फिर चार कहैगी कहौ जु चाहौ ग्वाला ग्वाली ।
 ललित किशोरी करै सैंक तजि श्याम संग बन सेला माली ॥२७०॥

(५३)

करत सिंगार सबै सुकमारी ।
 भूषन वसन उताल उतारत पहिरत पहिरावत रुचिकारी ।
 फ्लावली रुचिर रचि रौरी बँदुलि श्याम ललाट सवारी ।
 ललित किशोरी चावि चावि मुख वीछी कमकि चढ़ी कतुरारी ॥

॥ २७७ ॥

(५४)

बाली इन बैखियन लगन लगाई ।
 पहिले तो थे बाप मिली ही फिर मोकी उरफाई ।
 अधिक अधिक उरफात सखी री सुरफात नाहि सुरफाई ।
 दयो सखी ज्यौं बागरुहें विच अब नहि दबत दबाई ॥ २७८ ॥

चीर हरन लीला

(५५)

अब न बनें जल सी कढ़िवा नट ले गयो चीर हमारे ।
 कदमलता उरफात रूध सौं लंगर वंग निहारे ।
 सरफत पवन विली कि चटपटी लैफट लफट सविरे ।
 ललित किशोरी रहै आज क्यौं लाज न कानि विचारे ॥ २७९ ॥

(५६)

मैं बारियाँ दे दे चोर विहारी ।
 सीतल नीर फन सीरी अति कपल वंग सुकमारी ।
 हत उत निकसत नगर वासिनी हम जल माँफ उघारी ।
 ललित किशोरी लाज स्कौचन गली जात वृजनारी ॥ २६६ ॥

जल कै लि चुर्जी लीला

(५७)

ठेरो ठेरो जली हों आवत हों ।
 यहि उफकार कबीली तुमरे अति ही मन सुख पावत हों ।
 तुमरो नाम रटों वंशी में तुमरोई मुन गावत हों ।
 ललित किशोरी प्रीति तुमारी किन किन हिये बढ़ावत हों ॥
 ॥ ३५६ ॥

(५८)

जमुना जल जल्लि ले वारै ।
 पैरि पैरि फेरी दे वाली बारि फेरि कर नीर उधारै ।
 कबहुँ प्यारी लाल झिलझिली मुँदि मुँदि पुनि तनक उधारै ।
 ललित किशोरी बैसियाँ मोरी निस दिन अस एस कैलि निहारै ॥
 ॥ ३७६ ॥

षष्ठ दल- शृंगार माधुरी

शृंगार रचना

(५६)

बनी जि गृध्र गोपाल ।
वीथिन में गूथन तो कर की पहिचानत ब्रज बाल ।
बिन बिन कुशुम छतै उत मद्ब्री परत कौसे जाल ।
ललित किशोरी या गोकुल की बड़ीचबाई चाल ॥३॥

(६०)

बसि बसि अब न कसे नैदलाल ।
कसैगी फसूरी कहूँ मसकै कंचुकि सुरंग विशाल ।
कसि कसि वैद करत पुनि डोलै करि पायो तैं स्थाल ।
ललित किशोरी लग्यो निकासन उरफि गई ही माल ॥५॥

त्री वीग शोभा

(६१)

जुगल हवि बनी अनूप बगिया ।
चैफ़ श्याम तमाल ललित दृग विविध फूल फल लगिया ।
मुख गुलाब शुचि कृष्ण छाँति तिल नरगिस नैनन ठगिया ।
ललित किशोरी क्यार बिंब फल दादिम उरन उमगिया ॥१५६॥

(६२)

बरखी सी तौरी तिरखी नजरिया ।
 कजरा की रचि सान धरी है वैखियन कौर कटरिया ।
 कौ काकी बूझै सब घायल तरफत रेत मछरिया ।
 ललित किशोरी हैल चलावत मौह्न कीतरु रिया ॥१५६॥

(६३)

वैजन जि मन पद गैजन सैजन कीज मीन मृग चेरे ।
 बनियारे रतनारे प्यारे मतवारे तिरखोटि हेरे ।
 रेशम जाल लाल लौने अति बाल गुपाल हिये उरभरे ।
 ललित किशोरी चितै फेरि टुक सौचत मोचन लौचन तेरे ॥१६०॥

(६४)

बलि बलि हन नैनन वजरीहैं ।
 कौमल कीज मैलु मधुकर से बातुर अति जुग सैज लरीहैं ।
 तिरखीहैं चितवत सकुचीहैं श्याम वदन अरविन्द वरीहैं ।
 ललित किशोरी रहत न हटकै नटसट घूँघट पर फगरीहैं ॥१६१॥

(६५)

कजरी वसिया अनियारी मतवारी मनुवा ठगती हैं ।
 घुंघरा वल्लू वर हल्लू नागिनि सी हिये उमगती हैं ।
 दसनावलि अरुन अधरन की शोभा लखि उपमा भगती हैं ।
 ललित किशोरी लालन मृकुटी कूटिली भी प्यारी लगती हैं ।

॥ १६५ ॥

(६६)

गुहरीदार लहिरने फले कौटे कौटे वाले हैं ।
 टेढ़े भेदे अति बहिरीले साये बल मतवाले हैं ।
 ललित किशोरी पैवदार वर सुंदर श्याम निराले हैं ।
 घुंघरवाले बाल आपने पाते बया कुह काले हैं ॥ १६६ ॥

(६७)

प्यारी तेरे नैनन में रंग बरसे ।
 कारे कूटिल अरुन अनियारे मतवारे रस सरसे ।
 तापर कजरा रेश घुरानी चितवन कौर मसरसे ॥
 ललित किशोरी फल न परत कल उरफे श्याम सुन्दर से ॥

॥ १६७ ॥

सप्तम दल- पासा कैलि माधुरी

विसातिन लीला

(६८)

रूप सिंधु वृषभानु किशोरी ।
 चहुँ दिसि ललित तरंग मनोहर वसन सुरंग विचित्रित गौरी ।
 हवि जल भीवर अंग अंग प्रति नेह नवीन अथाह हिलोरी ।
 ललित किशोरी विहरत अनुदिन मन मोहन मन मीन किशोरी ॥
 ॥ २ ॥

(६९)

खेलन सखियन संग सुकमारी ।
 चलत कबीली जोरि जोरि जुट उलटि पुलटि पासा कर डारी ।
 फारन कंज गहि रौकि परस्पर हाँ झाँ सचि चली ब्रू नारी ।
 ललित किशोरी चाल लाल की चलौ न हम संग बलि बलिहारी ॥
 ॥ ६ ॥

चौपर लीला

(७०)

राजत नवल निरंज किशोरी ।
 खिस्की सौँ हिस्की मग जोषत पठहँ लींग लेन बलि बीरी ।
 डोलत गेल केल चरैपर लै कहत येक एक सौँ खेलोरी ।
 ललित किशोरी लपकि बिहारात पास न जावत कुउ नव गौरी ॥ १३० ॥

(७१)

तौरे सँग चौपर की खेलै ।
 चल चल केली गली अपनी को बात बात रस घातन भेलै ।
 गर्ह केली.सब चली भवन सौं दीप मा लिका गीधन भेलै ।
 ललित किशोरी भूने मंदिर तौरि कानि कुल लाल ओलै ॥१३४॥

(७२)

ससिहुउ खेलत ललित अटारी ।
 मोर फुल फलकत पट ओफल वैवृणभानु हुलारी ।
 दम्कत कर पासान चलावत मनौ दामिनी कारी ।
 ललित किशोरी वारत आरति लसै कहूँदीठि हारी ॥१३५॥

(७३)

करत आरती नव सुगार ।
 दवेदवै पायन ना निकसत नूपुर की फकार ।
 छीना फाफ्टी छौत दीप ना फलटि पर्यौ यर वार ।
 ललित किशोरी चट पट लंपट मूँद कुंज किवार ॥१३६॥

पासा कै लि लीला

(७४)

नित खेली ऐसी चौसारे ।
 नित हम करे ठठौली ऐसी तुम दुरि बैठी द्विदि किवारे ।
 हम सब हंसै भजौ श्याम तुम गहत लात पट रघु निहारे ॥
 ललित किशोरी नित नित या कवि बलिगन वारति आनि उतारे ॥

॥ १५६ ॥

वृत्थ चौपर लीला

(७५)

खेलत चौपर भाँति औसी ।
 निरतत हिरि दोउ दुहुँ दिसि इत उत चालै चलत सुचौसी ।
 कर सौँ कर गहि राखत कबहुँ पासा ढरत करत रस सौसी ।
 नैन सौँ नैन मिलाय रहत हंसि ललित किशोरी छिन रस पौसी ॥

॥ १८५ ॥

(७६)

वाज वज्र चौसार् मई ।
 जोरा जोरी मैं मरीरी खेति खेसि रति केलि सई ।
 चूमावाजी होत परस्पर मदन उमंग चौप नई ।
 ललित किशोरी वानंद भर दृग निरस्त रैन फलन दई ॥ २५ ॥

वष्टम दल- राज भोग माधुरी

पहुनाई लीला

(७७)

अति ही लंपट लंगर कन्हाई ।
 नित नख कण्ठ प्रखीन लंगरई पाई कित थैती चतुराई ।
 कौन बात ही आज ही हेली जमुना धंसत चपल अतुराई ।
 ललित किशोरी वीर चौरि चढ़ि कदम लता दीने फैलाई ॥

॥ २ ॥

(७८)

प्रीति की गैल गहो ना ।
 नैनन नीद भुजस जो चाहो नैह लगन की बात कहो ना ।
 भूख प्यास पति पात तात तजि लोक लाज कुल कान चहोना ।
 ललित किशोरी नैह नगर पथ पतिव्रत धन लै निवहोना ॥ १२ ॥

(७६)

जै जै बौलि सुप्न बरसावै ।
 निरतत बली मुदित मँडल वै लखि कवि फूलि जँगन समावै ॥
 राज किशोरी मिथुन बीच में मनन मनानन गति उपजावै ।
 ललित किशोरी चित्र लिखी लखि उमा रमा रभा सकुचावै ॥
 ॥३४॥

रूपामृत राजमोग

(८०)

अववन कर वृषभान किशोरी ।
 ललिता जल लावत भगरी सौ फतरी धार रोकि थोरी
 थोरी ॥
 मोहन रसिक स्व कर पधराये ध्रुवत मीजि जंगुरी गौरी
 गौरी ॥
 भिसरी बुरन छानि लगावत निरखि प्रीति ता रुचि
 पौरी पौरी ॥
 बैसन माँजि मुँदरिया ककनी पहिरावत पुलकै दुग जोरी ।
 बैवत हाथ सिसकि सरपट कहु माथे लावत ललित किशोरी ॥
 ॥६१॥

(८१)

कचवन कर वृषभान लईती ।
 चपलि चीर पीतम मुख पाँझी मनी वीर की नीक मनीती ।
 न्याही छै मुसक्याय कही कहु कहाँ गहँ वह लाल पढैती ।
 तुमरी भेंट करी मन भा मिनि ललित किशोरी जोकहु सैती ॥

॥ ६२ ॥

दूलह- दुलहिन राजभोग

(८२)

मन सिज विधि सँजोग बनायो ।
 मनहीं मन पीर गहँ भाँचरी गठ जोरौ नैनान करायो ।
 बलिहारी या ज्वि फवि ऊपर रूप कूप सिंगार सुहायो ।
 सुरति निसान बजाय चौप सखि दूलह गौर साँवरी व्यह्यो^{या} ।
 बहै सुहाग राग कतु दिन बलि श्याम सलीनी नव वर पायो ।
 चिरजीवी चिर ललित किशोरी यह वर गौर सवन मन भायो ।

॥ ६८ ॥

(८३)

खेल खेल रस कैलि भई ।
 दुलह दुलहिन अति लपटाने रससाने तस लगन नई ।
 भई सुहाग रात दिन धौपर वरते मोह कपोद भई ।
 हँसी हँसी ही दान कैलि मैं व्याह वरात की बलि बई ॥८६॥

चन्द्रावली ग्रह राज भोग

(८४)

हमै तो भूख नहीं चन्द्रावलि ।
 पत्नी न अवही निसि की घूरी मैये दूध जिमाई मलि मलि ।
 हुनै सूरज वरत उपासी कैसिक दिवस पाइयत ये बलि ।
 ललित किशोरी सठ की बातन हठ न कीजिये तुम पै बलि
 बलि ॥ ८६ ॥

फुटकर पद

(८५)

शुंवरि किशोरी कलेऊ कीजै ।
 मास्त मिसरी सानि परस्पर वे तुनरे तुम उन मुख बीजै ।
 करिये पान दूध धौरी को तापर वरा सलीना लीजै ॥
 ललित किशोरी षट्स विजन बीच बीच जमुना जल पीजै ॥

॥१४१॥

(८६)

चूनर पीरे दाग परे ।
 तै तो निलज मयी रे नंद के सकुच ना मो दृग जात ढरे ।
 केशर कढ़ी न पौंही कर सौं मुख में पीरे सीथ मरे ।
 ललित किशोरी प्रीति बाबरी यामें ना कूल कान हरे ॥१४४॥

नवम दल- मध्याह्न वन विलास माधुरी

मास्त चौरी लीला

(८७)

सौमित्र सुंदर ललित अटारी ।
 सुमन सैज पर्यंक छबिती सोवत श्री वृषभान दुलारी ।
 चाफत चरन नवल नागरिया ढौरत एक बिजनी सुमारी ।
 मोहन रक्ति मधुप ताही मग बिगड़त ललित किशोरी प्यारी ॥१॥

(८८)

निरख ससी हवि मास्त चौरी ।
 मोहन हत उत भौकत करौले होय भवन जनि कुव गौरी ।
 मुकै मुकै डोलत चारौ दिशि लसि लसि रहत सता सौं जोरी ।
 मूदि एक यह उभकि पौरि की चलत घुट्टहवन ललित किशोरी ॥२॥

(८६)

मुरकि कुरकि चितवत मनमोहन ।

आहट पाय विलोकि भालक अलि भुकि भुकि रहत कौन
ब्रवि जीहन ।

है है पैड़ सरकि पुनि ठिठकत उठि उठि संकत होय कूड गोहन।
दिन दूनी हुति होय नंद के ललित किशोरी प्रीति फलीहन ॥३॥

(६०)

करत लाल मास्त की धोरी ।

दौरि दौरि द्वारे भूकि आवत बहुरि उतारत जानि कपोरी ।

बाधुन चाखि चखावत हाहैं दैत भाग अघ गेहै गोरी ।

वै वै चिन्न भीति निहोरत तुम कहियो बनि ललित किशोरी ॥४॥

(६१)

मोहन खोरि सकिरी धरी ।

स्त उत चितै बकित पाकैं व्है हेरौ भवन अधरी ।

भूपटि धैर्यो नट ललित किशोरी नागरि चटफट भेरी ।

दौरा दौरि कूदि अटा सौ पैया ही कहि टेरी ॥८॥

मैना लीला

(६२)

चासि चासि प्यारी फल दीने ।
 श्याम ससी जूँलि कर लीने ।
 बभकत लली जली का फीके ।
 चुटकी जोरि बतावत नीके ।
 मैना तब एक बुद्धि बिचारी ।
 ललित किशोरी बोलि फूकारी ॥४१॥

(६३)

जुगल पर मैना वारि फेरि डारी ।
 प्यारी लाल कबीली कलिया राधा कृष्ण फूकारी ।
 जै जै नवल किशोरि की बोली नाचो री सुकमारी ।
 ललित किशोरी या विलसन पर बोली मिलि बलिहारी ॥
 ॥५६॥

सुनारी लीला

नाहीं मैं पी मद ककी तनक न मानौ झूठ ।
 जान मान ये लाडिली मो दिल्वर की अठ ।
 मो दिल्वर की अठ सचि दिल्वर के येई ।
 तनक मरो रन भौह हियो फेफरो करि देखे ।
 कै विलोकन तीर छिदे उर जेतस जाहीं ।
 लीजै ललित किशोरि हाय अब धीरज नाहीं ॥७६॥

समागम लीला

(६५)

चलिय सुंदरि श्याम दरस को ।
 देखि चांद से सुघर सुहारे मन ललचै अंग तरस परस को ।
 अवन लुभाने ललित किशोरी सुनिवै को धुनि वेनु सरस को ।
 लाज जरी परि भार छार छै रहै मवन बी तरस तरस को ॥

॥१३२॥

(६६)

नैनन की जनि बात कही ।
 हान लाभ कहूँ न विचारिं विफरि परै सोभा पै ही ।
 रहै प्रान कै जाय बलारै ये चाहै रस रूप लही ।
 ललित किशोरी झरीं पाँखे छतनी जग उपहास सही ॥१३६॥

(६७)

मौकौं अलक सौँह सुकुमारी ।
 बयौं डरपै ये लाह गहेली कियौं न कोर कँकुली सारी ।
 घूँघट तनक उठाय कमल मुख देहु दिखाय दया करि प्यारी ।
 ललित किशोरी नैन सफल करि वाट लगै लै लै बलिहारी ॥

॥१४६॥

(६८)

मैं तो तुमरी हुकमी वंदा ।
 वर्यो हरपौ मोसो बलिहारी मैं चकोर तुम पूनी चंदा ।
 सहितो सहितो करौ चाकरी हुलैन पानी उदर कंदा ।
 ललित किशोरी कपकि जाय दृग तौ कहियो साँची नंद नंददा ॥

॥ १६४ ॥

नवीदा मिलन

(६९)

कहो न कहो कलु हम अनुधानी ।
 चकित धकित नैनन की पुतरी दुरनि मुरनि सौ जिय की जानी ।
 वर्यो उसण उर लेत कंषे कंषि धर धर हियरे लस रानी ।
 ललित किशोरी अधर चाँप सौ तन मन की पेद न पहिचानी ॥

॥ १७४ ॥

कीर नहर लीला

(१००)

वाली औलि कीर उतारै ।
 कबहुँक मीन नवीन रुचिर लै चपलि दृगन हवि ऊपर वारै ।
 प्यारी लाल अलौकिक फल मधु मुख निचोरि करि रन्ध्र निहारै ॥
 ललित किशोरी माते फल मैं मूदि दई अलियन ह्रम डारै ॥ १०० ॥

मो रूटी लीला

(१०१)

उत सौ मोहन लाल कबीली ।
 वसी ललित बजावत आवत प्रिया प्रेम गखीली ।
 फु कि फु कि फू मि फू मि बवनी फा धरि अलमस्त रसीली ।
 ललित किशोरी मैद मधुर सुर गावत राग रंगिनी ॥ ३७५ ॥

दसम बल- फागुलीला माधुरी

(१०२)

रंग रंग केगुलाल ।
 देखे में प्यारे हैं भाँति भाँति न्यारे ।
 अति गाढ़े पट छाने बहु भेदन सेवारे ।
 महिबूब को मिलावे चित प्रीति को बढ़ावे ।
 नित रंग चित्रसारी एक सेज पे सुलावे ।
 जो इनको उठावे सो नैनो सुख पावे ।
 एक मूठ ही में लोक लाज वाली उदि जावे ।
 जब धूँधर नम ह्रावे झुंड दीठ में न आवे ।
 तब मोहन दिल जानी हैसि कंठ सौ लगावे ॥ २॥

(१०३)

बीलि लेहु वैपारिन हेली ।
 विमुख न जाय आय रस रातें बेचनहार नवेली ।
 विविध गुलाल विसाहि खेलि हैं ततकिन अद्भुत केली ।
 ललित ककशोरी रंग बरसिहै जाली इन धूम बेली ॥७॥

(१०४)

नित प्रति होय बैसिही होरी ।
 ब्रूका बेचनहारि सिखावै मूठ चलावन मैत्र निहोरी ।
 ललित लडैती सुनै कान दै बलिहारी कहि ललित किशोरी ।
 वारि वारि जल पियत मुदित मन राहै नोन उतारत गोरी ॥
 ॥१६॥

होरी लीला

(१०५)

होरी हो हो होरी होरी ।
 छलियन मसकि लगै ससि वदनो फागुन में का जोरी ।
 केसर रंग गुलाल बीच में मदन पझारी गोरी ।
 मुख चुंबन दै दान केलि रस लुटौ ललित किशोरी ॥२१॥

(१०६)

नंद सुत ना खेलाँ तोखी होरी ।
 तैं वदनाम ग्राम बरसाने हौं नव जीवन जीरी ।
 या खिन लाल गुलाल न दीसत ना कहूँ रंग कमौरी ।
 जो चित चौप खेल वासीँ उत आवत ललितत किशौरी ॥ २५ ॥

(१०७)

गोरी फापटि गह्यो रंग लाल ।
 एक पग बाहिर पड़्यो एक पग दिहरी परी उताल ।
 एक कर मूठ गुलाल तनी लख एक कर कर नव लाल ॥
 ललित किशौरी अध पट ~~छ~~ ओभल मुकी हलत उर माल ॥ २६ ॥

(१०८)

खेत नवल रंगीली बाल ।
 गहिरी घूँघट का दि कबीली घायल मूठ गुलाल ।
 इत उत बवतनचत वर भा मिनि लकत कटि मट चाल ।
 ललित किशौरी खोलि नील पट मसलत गाल गुपाल ॥ २७ ॥

रंग मान लीला

(१०६)

होरी में मदमाती किशोरी गखा लगाय लेरी ।
 मस्त भये धुच कढ़े भजत हैं भरे हिये मिराय लेरी ।
 फागुन की फल यह किशोरी नैन सों नैन लड़ाय लेरी ।
 ललित किशोरी कर्म धर्म यह होरी में संग साय लेरी ॥ ३४ ॥

जटारी लीला

(११०)

मदमाती फागुन मास तक मुहिं अपनी पास बुलाय ले ।
 धूरि डारि गुरजन की बैसियन हंसि हंसि कंठ लगाय ले ।
 देत लेत अपराधुत गौरी देह दसा विसराय ले ।
 ललित किशोरी रस रिस करि करि मसकि मसकि उर लाय ले ॥
 ॥ ४६ ॥

(१११)

जय जय रंग रंगोली प्यारी ।
 हाथ गुलाल गाल दूजे कर कुच कसि गह्यो रंग लाल बिहारी ।
 भिन्नकत सकृदि सकृदि सिस्सत लति आकुल कै टरत ना
 टारी ॥
 ललित किशोरी वारत आरति दीनी लैपट कृज किवारी ॥ ५० ॥

रंग दान लीला

(११२)

कबीली मेरी दान चुकाय ।
 ऊँचे कुच कुम्हूम से सोहैं लाई चोर चुराय ।
 कोहैं बड़े बाप की बेटी बिना रंग कढ़ि जाय ।
 ललित किशोरी मसकि मिलींगी मासुन तनक चसाय ॥

॥ ७२ ॥

(११३)

जमुना कूल कूल जुरि जाई ब्रूथ ब्रूथ नव गोरी ।
 चहुँ ओर सौँ रूप घटा सी लीनै गुलाल रीरी ।
 धेरि लियो मोहन फुरसक करि बोलि हो हो हो होरी ।
 हुँद उठाय दहैं सब दिसि सौँ अबिर मरामर कोरी ।
 मरामर चलन लगीं फिकारी तकि तकि ललित किशोरी ।
 चैतल खेल औलेरंग लौँ सर्वे करीं सखोरी ॥ ८२ ॥

(११४)

करि लीनौ जल बीच कन्हाई ।
 विहरत विविध नाँति नव तरुनी कीटन कर फिकारि चलाई ।
 न्यारी तनक विलीकि लली सौँ धन वाली आवत अकुलाई ।
 ललित किशोरी पास फलटि पिय चपल गहत अँवल मुसकाई ॥

॥ १०५ ॥

रंग पनिघट लीला

(११५)

गुवरियाँ जाई करि फरकैद ।
 देखत मै सुधी सी लागै रूप रूम कल कंद ।
 गुन जागरि गागरि रंग नरि कै कष्ट चाल मंद मंद ।
 ललित किशोरी मोहि भिजायो नचि नचि होहि अंद ॥ १४० ॥

फुटकर पद

(११६)

रंगि गये री लंगर लंगिया सगरी ।
 फरौ री फरौ जान न पावै रौकि रहौ सवि सब डगरी ।
 होय न होय मालती कुंज हैंकि लेउ वाकी नग नग री ।
 ललित किशोरी गुलचि देउ मुख रार करत नित फा फा री ॥

॥ ११२ ॥

(११७)

कैला डारी न गुललवा मोरी नई चुनरी ।
 तकि तकि मो कतिमन पिचकारी कडो न हूँ हूँ रंग मरी ।
 गुलचौंगी तो गाल कंचुकी कीन कुसुमी हरी हरी ।
 ललित किशोरी उगी अनीसी तोरी उर मुतियान लरी ॥ ११६ ॥

ग्याहवाँ दल- रस पान सयन माधुरी

अधूरी नींद लीला

(११८)

द्वैपति अधूरी नींद बैठ उठि जा रही ।
 प्यारी बरसाय कुकी प्रीतिम अगो रही ।
 जमुहारुँ की मरि कसि अंगन मरो रही ।
 ललित नव किशोरी वारि वारि तृण तो रही ॥ ५ ॥

फुटकर पद

(११९)

आज हुआ उरफे विषस विहार ।
 सिधिलित परत अंग कसि बांधि अति अद्भुत मतवार ।
 होत विलंब सुनत ना काने केकी कीर फुहार ।
 चुभत हिये नव ललित किशोरी नाहिँ हार संभार ॥ ६३ ॥

(१२०)

विहारिनि हूटन दे उर हार ।
 करकि जान दे कर की चुरयाँ मुख तैं अलक विवार ।
 मसकि जाय कनि भले कंचुकी ठीली ना अँवार ।
 ललित किशोरी उरफन दे कच कुँडल सी बलिहार ॥ ६६ ॥

(१२१)

सकुच न तजि टुक नैन मिलाय ।
 ही बलिहार विहारनि तौ पै हत उत मै मत दृष्टि चलाय ।
 मीं हिये सौं रीपि हथरीमोरि मोरि मुख जिन घबराय ।
 चपलि चपलि है ललित किशोरी अक्रम तैं क्यों छूटी जाय ॥
 ॥६७॥

(१२२)

घरियां कबीली ये मेरे मन भाई हैं ।
 हीरा बौ लाल वीर बरसै समुदाई है ।
 ललित किशोरी कुंज बाजती बधाई है
 बाज प्रिया पालने गुपाल ने झुलाई है ॥८१॥

बारहवां दल- उत्थापन विलास माधुरी

फल पान लीला

(१२३)

मधुर मधुर फलपान करे री ।
 मुख मर्या परसाय परस्पर रूप पान हित नैन वरै री ।
 बिबाफल रस फलन सिरौमनि चाखि बोट पट प्राण हरै री ।
 ललित किशोरी के मन भाजन मतवारे मन मोह भरै री ॥२४॥

फुटकर पद

(१२४)

बाज यह सौभा नैन निहारी ।

सुंदर गौर किशोर मनोहर ठाढ़े गहि कृंजन की डारी ।

ललित किशोरी अधर सुधा की पीवत मधु^{कर} श्याम बिहारी ।

उरभूयो मुक्त बुलाक लाल को मुखारी वैसर सौ प्यारी ॥ ७८ ॥

(१२५)

हुउ हंसि हंसि कंठन लागे री ।

चुंवन चौप उभे दिसि अधरन ललित कैलि कुरागे री ।

उमगि क्यो नैनन रस सजनी मनहुँ सकल निसि जागे री ।

ललित किशोरी रसिक रंगिले नवल नेह फा पागे री ॥ ७९ ॥

(१२६)

सधन वन विहरत वैर भई ।

श्यामा श्याम निरुंजन नूतन कैलत कैलि नई ।

दुरि दुरि लतन मिलत रीदौऊ क्रीडत सौभ थई ।

ललित किशोरी उर कवनी मैवानंद बैलि बई ॥ ८० ॥

(१२७)

फांकित चंचल हैल मारोसैं ।
 प्यारी की घुघराहैं ललकैं पी मुस चंद दीठि परीधोसैं ।
 बाहैं लहर गहर ना कीनी देह दसा विसराय कबीली ।
 औचक फुकी सुप्त सेजडिया मई सु नस नस कसनी ढीली ।
 अधर सुधा रस पान करावन लफन्यौ लालहाल तजि ढीरी ।
 क र्है ककु किलैव सहुचि ससि निकसि चली चट ललित किशोरी ॥

॥८४॥

वरणा

(१२८)

तुव हवि राचे नैना मोरे ।
 भीनी परत फुहार कटा पर घटा कटा निरस्त भू तोरे ।
 मोहै मदन गुपाल लली तैं कली गली सौं करत निहोरे ।
 ललित किशोरी दामिनि दम्कत फरकत वंग वंग तिय तोरे ॥

॥८५॥

(१२९)

सोहत लाल लाडिली जोरी ।
 सधन कुंज ठाढ़े दोऊ जन लतन जोट वंसीवट जोरी ।
 तानि पीत पट बूंद बचावत वंग अंग उमंग हिलोरी ।
 नव धन सौं दामिनि ज्यौं विलसत रसिक नवल वर ललित किशोरी ॥

॥८६॥

(१३०)

धनधौर बदरिया बरसै ।

ललित लदैती लाल दुऊ बन कृञ्ज जात नगर सै ।

ललित किशौरी वसन भीजि कै लपटत अंग सुघर सै ।

पुलकि पुलकि उर लगत विहारिन साविल गात सुंदरसै ॥८६॥

(१३१)

लागि रही बन कृञ्ज फरि ।

लतन कृञ्ज तर ठाढ़े दीऊ भजित अंग वसन फुनरी ।

गरजत मेघ दामिनी दम्कत हिय डरफत राधे सुधरी ।

ललित किशौरी लाल कंठ लगि गाढ़े गहत गुनन अगरी ॥८७॥

(१३२)

बाज हुउ भजित कृञ्ज बावत ।

विलसि रहै पट अंग अंग मैं अद्भुत मूषन दुति दरसावत ।

वे उनकैवै उन रस लोभी निरसि निरसि हुउ नैन सिरावत ।

ललित किशौरी लालन रसिया भुज गल मेलि मलारहि गावत ॥

॥८८॥

(१३३)

मैद भकौरन पनिया बरसै ।

कारी घटा दबी सीरु अति विहरत जुगल हृमन चित हरसै ।

टफकत पात गात दूरि आवत लिपटत पुलकि मदन रस सरसै ।

ललित किशौरी पन भकौरे लता उडत विलसन दुति दरसै ॥

॥८९॥

तेरहवाँ दल- छिंठील माधुरी

प्रथम प्रसंग

(१३४)

चली पिया वाही कदम तर भूलै ।
भुकी लता अति सघन प्रभु छिंटत का लींदीके कूलै ।
बोलत मोर चकौर को किला अलिगन गुंजत फूलै ।
ललित किशोरी मग बतरावत कहि कहि बतियाँ भूलै ॥१॥

(१३५)

कौन चढ़े जी पहिले रतन फटलिया ।
फटली हाथ न परसै कोई गहि लीने बिन डुरिया ।
वदि वर जीत मैं मन दोऊ चले चपल वातुरिया ।
ललित किशोरी लाल लपटि पट रहे फपटि गई गुरिया ॥२॥

द्वितीय प्रसंग

(१३६)

बाँकी भूलन पर बलिहारियाँ ।
बाँकि पैग बढ़ावत रसिया डरफत सब सुकमारियाँ ।
गाढ़े गहत डोर फटलीकी परसत जब डुम डारियाँ ।
उतरत बाल लाल गहि रासत ललित किशोरी वारियाँ ॥

॥६॥

(१३७)

हरे हरे भूलैं भूली नैद लाल ।
 सरकै परत घुंघरू पग सौं बधिन दे गीपाल ।
 तोरी पियारी की सारी सैवारी उरफत मुखतामाल ।
 ललित किशोरी तरल मुलैयों अब तो भूली रुमाल ॥१०॥

तृतीय प्रसंग

I

(१३८)

मोरा काँडि दे कवरवा मै तो न्यारी भूलौंगी ।
 भौटन मिस मोहन लंगरैया कजहूँ टहौकत ना भूलौंगी ।
 ललिता संगरौंगी भूलैं भूलि भूलि मन ही मन भूलौंगी ।
 ललित किशोरी तरल पैग करि लालन तो संग सम बूलौंगी ॥
 ॥११॥

(१३९)

भूलत कलवेली कलवेली ।
 फुलैकित कँग कँग लजावत बरसत रंग सुरत भुज मैली ।
 परसत विहसि कपोल कपोलन जोरन नैनन नवल नवेली ।
 ललित किशोरी उमगि मिलत ज्यों नील लता सौ कंचन वैली ॥
 ॥१२॥

चतुर्थ प्रसंग

(१४०)

भूलत लता शृंग बन प्यारी ।
 हरे हरे ललितादि भुलावत रमन अति हितकारी ।
 ललित किशोरी धरी अघर पर वंशी कलित सवारी ।
 नागर नट चट कृषी लता सौं अ हा बीलि बलिहारी ॥१७॥

(१४१)

भूलि भूलि भूलि दुख भूलै वरसाने ।
 बैडत जमुहात भुक्त भूमत रस साने ।
 भूलन की चौप चौप नाहिनें अघाने ।
 ललित किशोरी वाज भूलै लपटाने ॥२१॥

पंचम प्रसंग

(१४२)

भूलत दौऊ नवल अटारी ।
 ठढी गली सौं अली विलोकत फौटा फलक फारीस प्यारी ।
 कबहुँ कटा कबीली दरसत कबहुँ दुति नवरंग विहारी ॥
 ललित किशोरी उदन फिँवर कबहुँ लहर लहरिया वारी ॥

॥२२॥

जादू लीला

(१४३)

पढ़ि पढ़ि फूँकत उरद सैवरिया ।

फूँकत गैल करत दिग बंधन कढ़ि न जायँ हत उत कहँ गुरिया ।

निहँजन निविह निहँज वगीची द्वार रैल सचि दई वसु रिया ।
मंत्रन जोर गमन नागीरयन सो मारग रह्यो लीलत-
रिशुरिया ॥ ५३ ॥

(१४४)

फलटि फलटि सब आवहीँ हँदि अपनी गैल ।

चौहट में टोना कहूँ कियो नंद के खेल ।

कियो नंद के खेल कहूँ टोना सो मग मैं ।

पढ़ि पढ़ि डारे उरद ससी दैली फा फा मैं ।

लाजे बात विचारि बनी बलि बहुते अटपट ।

दीजे पाके पायि डगर पुनि आवैं न फलट ॥ ५६ ॥

फुटकर पद

(१४५)

कातिक के दिन मैं सौक से झूला झुलाइये ।

जाड़ा गुलाबी होय तौ दोहर उढाइये ।

बाज लाज वीर वराजीरी छुड़ाइये ।

दंपति कपोल गोल मोल हँसिकर मिलाइये ।

नैननैं से नैन कौर को चिबु गहि जुराइये ।

ललिता किशोरी मंद सुरति फाँटा दिवाइये ॥ १८७ ॥

(१४६)

जै जै रसिक मुकुट पिय प्यारी ।
 रतनारी सजि सैज विराजे बलि दैपति कवि वारति वारी ।
 रति रस मैलि कपोल मदन मद ललित किशोरी थकित निहारी ॥
 नव अनुराग सुहाग कुँज में विलसत फन दामिनि बलिहारी ॥१६०॥

चौदहवाँ दल- पुष्प माधुरी

मोहन वास लीला

(१४७)

चली चली कबीली हमारी बगिया ।
 नई नई कोफ्त कलियानी फूली फली भली जगमगिया ।
 तनकहि द्वार वह दीसै चँफ़ वन फिलफिली लगिया ।
 मन रमनी बलि ललित किशोरी मनी मन पतियन सौं जगिया ॥

॥१॥

(१४८)

जुगलवर की वाँ सुरति विहार ।
 ललित कपोल मिलाय लाडिले मूँदि निरुंज किवार ।
 भलकत रंजन गौर श्याम कवि बलि बलि बारबार ।
 यह सौभा लसि ललित किशोरी तन मन दीजे वार ॥१५॥

मालिनि लीला

(१४६)

सींचत श्याम सुंदर वर वेली ।
 सांझी सुमन वीनि मिस कहूँ वावै प्रिया नवेली ।
 कौमल करत बीनि कांकरि मन फुलवैया विच हैली ।
 पात पात पे नाम किशोरी वैकित करत चमेली ॥ १६ ॥

(१५०)

मेरी फुलवैया चलिये हो मैं तो तिहारी मालिनिया ।
 विविध रंग फूलन पर वेली कलवेली बनी मामिनिया ।
 बहुत दिवस तैं वास लगाईं सींच सींच कर कामिनिया ।
 सफल करौ फल तल वैकित करि ललित किशोरी दामिनिया ॥
 ॥ २६ ॥

सांझी सिरावत लीला

(१५१)

लै लेउ री फल नैनन को री ।
 ससी सझ्वरी के संग सांझी जाज सिरावन जात किशोरी ।
 जो रस दृग मुखयात कहूँ मुख परसत जलि नल चकोरी ।
 हत उत हरणत निरसि निरसि हवि सांझी सौज लिए नव गोरी ।
 निरतत चलीं जली गलियन मैं चटक मटक भूकृटीन परोरी ।
 ललित किशोरी सुनी मनी ना कदभुत रूप अनूप किशोरी ॥ ६४ ॥

(१५२)

बारी बारी तिहारी तमोलनिया ।
 मेरी बसरिया विराजो तनक मैं तो बेरी सदा बिन मौलनिया ।
 मग चलिबै सौ ललित किशोरी फलनयो स्वेद कपोलनिया ।
 या लिनिया की मन लेहु द्वे वीरी रचौ फि बोलनिया ॥६६॥

फुटकर पद

(१५३)

सांझी राखत ललित किशोरी ।
 नाना रंग फूल ओलिन मैं बलियन संग बैस नव थोरी ।
 चुनि चुनि सुमन पसिखति जोरत घट बढ़ हैरि सवारत गोरी ।
 अंचल ओट बीचि सलियन के रसिक लाल निरखत चोरी चोरी ।

॥७८॥

(१५४)

बाज तेरी सांझी मैं बरसत रंग ।
 श्याम सलीनी सुमन सभावत फरकत है वंग वंग ।
 चंचल नवल रूप रस बोरी जीवन नवल उमंग ।
 ललित किशोरी साविल गोरी जोरी जमुना गंग ॥८०॥

पन्द्रहवाँ दल- दान कैलि माधुरी

ग्वारिन कदम लीला

(१५५)

कौसी दधि की बैचनहारि ।
 दही निकारि चिते उत रही का एक टक वदन निहारि ।
 रक्षी जात कसन सौं हेली सारी तनक सेवा रि ।
 ललित किशोरी जालिम नैना का रसिया की नारि ॥ १८ ॥

(१५६)

बहुत जतन मलिया निरमानी ।
 कौमल ललित चीकनी रजलै जुही सुन सौधे सौ पानी ।
 छोरि कपूर मिलाय औस धरि सात पीत कतर फट कानी ॥
 ललित किशोरी लै मयक कवि मंत्रन पढ़ि पढ़ि मैली पानी ॥
 ॥ २५ ॥

(१५७)

लोक लाज कुल कान बावरु पहिले साक मिलावै ।
 करम धरम व्रत यज्ञ नैम सब प्रेम प्रवाह बहावै ।
 ललित किशोरी फलक कनी सौं हियरा विहसि विधावै ।
 दही जमावन मंत्र सिद्धि सौ राधे ब्रू करि पावै ॥ ३० ॥

प्रेम दान लीला

(१५८)

बरी कुछ लेहो माखन चोरे ।
 मनमाने सौ देव दामन उठि बाहं भोरे ।
 मिसरी सौ मीठो बति सुंदर चाखो थोरे थोरे ।
 ललित किशोरी वै गि फलटिबो कैहै नंद किशोरे ॥४१॥

(१५९)

बरी कुछ लेहो दृग बनियारे ।
 सान धरे सम साम कबिले चंचल कारे कारे ।
 रूप भरे मुखयान माधुरी अमी श्रवत मतवारे ।
 ललित किशोरी कृटिल कजाके बाँकी चितवन वारे ॥४२॥

(१६०)

बति जादूगर श्याम कन्हैया ।
 घर सौ छाँड़ नितारि लै बाहं फलमलात पाखिन नंद कैया ।
 कठिन भयो गोरस लै कदिवो का सामुहिँ लै धरौ री कैया ।
 ललित किशोरी कद्वत न काढ़े लखि लखि डारि फिरावौ रैया ॥

॥४८॥

दान लीला

(१६१)

पूत की और करत ब्रजरानी ।
कादि देउ अँसि लँगर को लहँगा दे टुक फिरि हम जानी ।
माखन साय बहाय काँक छिन कीर समुद्र करी मग जानी ।
मेरी सौँ चल ललित किशोरी निरसि लेउ कौतुक दधि दानी ॥

॥१२५॥

(१६२)

नँद लँगर कर फ़रि भिगरि कर हम सौँ दान लीनी हो ।
वर जोरी ससि सकिरि लोरी दहिया माखन कीनी हो ।
तोरि तनी चट फोरि मटकि पट टूक टूक करि दीनी हो ।
ललित किशोरी भरि भरि कौरी गौरी गौरस पीनी हो ॥१२३॥

परिहास दान लीला

(१६३)

काहे सौँ परनारियाँ तुम हौ सब मेरी प्यारी ।
कूँज विहारी हिये वसत तुम तुमरे कूँज विहारी ॥
ललित किशोरी व्याही सबही अबही धेरा धारी ।
नौ नौ पीत भाविरी मो संग डारि चुकी सुकमारी ॥१६१॥

खलदान लीला

(१६४)

ग्वालिनि बर्यौ ठाढ़ी नव पौरी ।
 काना बाती कृत काम कह हम सौ बर्यौ न कहौ री ।
 साँझ मई घर जाव आपो तुम नव जीवन जोरी ।
 ललित किशोरी चुगल चरित हैं तिमिर साकिरी सौरी ॥

॥ १८५ ॥

फुटकर पद

नीकौ लगे राधा वर प्यारी ।
 मोर मुकट प्यारी पट सौहै लकृटी कर मतवारी ।
 रौकत गैल कैंल कलवैली नटवर वैष्ण सवारी ।
 ललित किशोरी मोहन रसिया जीवन प्रान हमारी ॥ ३२१ ॥

(१६६)

सुंदर नवल ग्वारिनी गौरी उठती जीवन जोर नवीनी ।
 दूध दही बैलत मग डोलत उमग मरी औढ़े पर फीनी ।
 ललित किशोरी लखि वन सौरी मोहन मील दही कौ कीनी ।
 मुसकन मिसरी मिल्यो मसौहर गौरस मिस अधरन एस लीनी ॥

॥ ३२७ ॥

सौलहवाँ दल- उत्तर मग विलास माधुरी

नौका सण्ड लीला

(१६७)

लाय रे लाय मलाह निवरिया ।
 दहँ दहँ करि तोहि निहारी वार न लाय जापवातुरिया ।
 मन मानी देहँ उतराहँ सभि मई कहुलाहँ गुरिया ।
 फल मैं पार लगाय जन्म लौं गुन मानैगी ललित किशुरिया ॥२६॥

(१६८)

जरे मल्लाह के झोरा हमें मँकधार बयौं बोरै ।
 लगादे पार किस्ती को नहीं बयौं वादवाँ जोरै ।
 जरा वल्ली लगा जालिम हियाँ जल बहुत हिल्लोरै ।
 ललित किशौरी गुन मानै निठुर बयौं हँस के मुख मोरै ॥४६॥

(१६९)

बहुत है मार धूँषन का इसी से डगमगाती है ।
 जरा फँको जरा फँको वसन नहीं चलने पाती है ।
 ललित किशोरि जमुना में डुबाओ सँती थाती है ।
 सकुच के मार से तुमरे यह नैया बूढ़ी जाती है ॥५०॥

वासक सज्जा

(१७०)

साँफ मई नहिं जायो श्याम सखी कैसी जब कीजै ।
 रात भये सब नाँव धरौंगी कौन कौन मुख लफुटी दीजै ।
 बस्यो हिये सठ लंगर नंद को बिन हवि कैल दरस क्यों जीजै ॥
 ललित किशोरी रूप रसासव होय सु होय नयन भरि पीजै ॥

॥ २१४ ॥

बिकुर मिलौनी लीला

(१७१)

श्याम मुखिका मिलिके बिकुरिणी ।
 जियरा हियरा फोरि निकसलि सिटनवाँ सो कहू करिगौ ।
 घर घर विरुला विरुला दूबयो कौनी गेल निकरिगौ ।
 ललित किशुरिया बटिया परलि सिनटिया मनुवाँ हरिगौ ॥

॥ २५२ ॥

(१७२)

मोहन लाल का कौन वन दूँढौ ।
 सावित सुंदर गात सलोने श्याम तमाल का कौन वन दूँढौ ।
 ललित किशुरिया सो बसिया बजावै रूप विशाल का कौन वन दूँढौ ।
 जुलुम भरी सँवला चितवनिया फूले फूले गाल का कौन वन दूँढौ ॥

॥ २६६ ॥

वैष्णव लीला

(१७३)

मुसाफिर रैन रही थीरी ।
जाग जाग सुख नींद त्यागि दे हीत वस्तु की चोरी ।
मँजिल दूरि भूरि भव सागर मान बूर मति मीरी ।
ललित किशोरी हाकिम सों उर करै जेर वरजोरी ॥ ५५० ॥

जोगी लीला

(१७४)

झोड़ि दिया सब माल सजाना हीरा मुती लुटाया है ।
फैक फाँक कर साल दुसाले जग से चित्त उठाया है ।।
ललित किशोरी झोड़ कान कुल मन माझूक लुभाया है ।।
धीरज धर्म सबी झोड़ा तब मजा फकीरी पाया है ॥ ५६६ ॥

(१७५)

जंगल में अब रमता है दित बस्ती से घबराता है ।
मानुष गंध न भाती है संग मरकट मीर सुहाता है ।
चाक गेरवाँ करै दम दम जाहँ मरना भाता है ।
ललित किशोरी हस्क रैन दिन यह सब खेल खिलाता है ॥ ५६७ ॥

(१७६)

मोहन क्यों वैराग लियो ।

नासा मूँदि हाथ माला ले कीनो ध्यान कियो ।

भली करी भिक्षा जोगी बनि भलोइ प्रसाद दियो ।

ललित किशोरी कान काज यह कथा कष्ट सियो ॥६३६॥

कुम्हारिन लीला

(१७७)

मेरी बुद्धिभीजै हो सास्नि की तुमरी कुम्हारनियाँ ।

वि विध वि चिद्र सिलौना लीजि ममाने दास दैरनियाँ ।

• ललित किशोरी मी कर पै कर धरि बलियै बलि जाँउ दमिनियाँ ।

भलि रुमाव बलैयाँ लै लै पीटि पाट लै गई ठगिनियाँ ॥६४८॥

सब्रह्मा दल-वभिसार माधुरी

जोतिषी लीला

(१७८)

नव किशोर बायी यक पैडित ।
 रूप वरूप सकल गुन पैडित ।
 सामुद्रिक के भेष न जानै ।
 जोतिष की बहु बात बसानै ।
 ऐसा आकृत गुनन सुनावै ।
 दुष्फल के सुभ जतन बतावै ।
 गुरजन दुरजन दुरमति नासै ।
 करै कौटि गुन पी वभिलाषी ।
 नित स्वाधीन रहै जिहिं प्यारी ।
 सौ उपाय निज करिवे हारी ।
 ललित किशोरी श्याम सुहानी ।
 वान पान ममोहन मानौ ॥६॥

(१७९)

जोतिष सामुद्रिक निपुन चलिये पैडितराज ।
 चतुर लैहैती सामुहै बात राखियो आज ॥
 बात राखियो आज गुप्त भेदन कौ कहियो ।
 परचौ प्रगट दिसाय विविध संपति सुख लहियो ।
 ललित किशोरी सिद्धि करौ मन की बीसौ बिस ।
 तब जानौगी निपुन भये सामुद्रिक जोतिस ॥६॥

गान तान लीला

(१८०)

सुनिये री गुह्याँ साँवरे सै लागी प्हा री नेह ।
 बिन देखे पल कल न परत है गवाँ गवाँ वा गेह ।
 मोर फुट कर लकुट मुरलिया लटक लटक जिय लैह ।
 ललित किशोरी रूम रूम राँ फरि लागी कवि मेह ॥ ७३ ॥

रतन दलालिन लीला

(१८१)

लेहो री कुछ हीरा मोती ।
 चौखी जाति लाहिली मनियाँ फन्ना पन्ना होती ।
 ललित किशोरी पन्ना चुन्नी मानौ फुरसुट तीली ।
 अद्भुत रतन अमोल कबिलि चाँद सुरज सी जीती ॥ २५ ॥

जादूगर विदेसी लीला

(१८२)

हम नये मुसा फिर लाये हैं ।
 जानै नहीं कहाँ टिकावारा गली गली भरमाये हैं ।
 रात की रात टिकावो कोई विथकित बैग अलसाये हैं ।
 ललित किशोरी बलि या नगरी तन मन दृग उरफाये हैं ॥

॥ २६६ ॥

कर्मद लीला

(१८३)

राहँ नीन उतारत गौरी ।

राजे कौमल सेज कबीले घन दामिनि हवि कौरी ।

वीरी विविध सुगंध सुवासित लाहँ ललित किशोरी ।

विहसि परस्पर दुउ मुख दीनी जै जै सावल गौरी ॥३५५॥

कृष्णामिसार चित्रानुराग लीला

(१८४)

नवल वल्लुटी गौने जाई ।

जिहि ना चाँद सुरज हू देखै महि तिन वैसी भवन लुकाई ।

काया सी सँग ही सँग डोलै नाम श्याम ना भवनन जाई ।

ललित किशोरी मुग्ध अचानक वँसी वन घनश्याम बजाई ॥

॥३५८॥

कठारहवाँ दल- व्यास विलास माधुरी

रसोल्गाह लीला

(१८५)

जैवत गौरी श्याम सलीनी ।
 मोहन भाग सविरी रुचि सौं प्रिय कबीली टटकी लीनी ।
 चन्द्रकला कपूर पिराकी अल्प मसाले परी तिकौनी ।
 कौटी कौटी सवुक कचौरी बनी बतासा सी अति मीनी ।
 पानी सौंठ राखते न्यारे कदरक कीलि कनक की दौनी ।
 पाक कौक फुलौरी सुंदर डिबिया सी अति चित्त लुभौनी ।
 दैत लेत मुख ग्रास परस्पर बैसियाँ रूप क्वी ललचौनी ।
 चितै चंद मुख होत चकौरी अलकावलि मन की उरफौनी ॥
 प्राण बाने करिये हँसि हँसि बँक विलोकन टोना टोनी ॥
 ललित किशौरी कैसी जौरी तिहूँ काल त्रिभुवन नहिं होनी ॥

॥६०॥

काम कन्दला ग्रह व्यास विलास

(१८६)

श्यामा श्याम बियाह कीजि ।
 सिलरन इवि लावन्य नसेमय मधु मुस्कन को चुसकौ लीजि ।
 हाव भाव तिलचौरी लहुआ ललित किशौरी सुख रस मीजि ।
 लीजि स्वाद कपील माखन बीच बीच कधराभूत पीजि ॥१६५॥

सीस महल व्याक विलास

(१८७)

प्यारी हैंडि जम्हाई लीनी ।

चटपट तटकै वंद कँकुकी कुच चकवाक कुंभ हवि हनीनी ।

उधरि परे हवै मस्त लाल कै सनमुख बाँट बिये की कीनी ।

ललित किशोरी जूमि चटपटी वीरी कमल वदन धरि दीनी ॥

॥ १८१ ॥

दूध भोग

(१८८)

बनत न तोरे संग पय पान ।

तीती छोय न होय कबली कँडि देत सिसकन की वान ।

दावत होत अचेत अँगुरिया चेतत तनक तेग मुखयान ।

ललित किशोरी चपलि सडाके बैचि लेत गौरी मुख म्यान ॥

॥ २०५ ॥

(१८९)

कबली वैसिई नाहिं करी ।

जैसे भोर भोर माँहि टुक मेरी चित्त हरी ।

ललित किशोरी रतन कटोरा फलटत दूध मरी ।

उलटे हाथ सकौरि नासिका बीचहि कलकि पारी ॥

॥ २०६ ॥

(१६०)

तनक सीर प्यारी पी लीजै ।
 कितक वैर हों फूँ कि सिरायी नैन उधारि दृष्टि टुक दीजै ।
 हटक कमल करै ललित किशोरी कखट लै बालस ना कीजै ।
 पीतम लेत दुराय दावि उर बलक परे नीलावर भीजै ॥२७॥

उन्नीसवाँ दल- रास माधुरी

रासोल्लास पैवाध्याई की प्रथम प्रकरण

(१६१)

मिले आनि वन कूँज हुलसि कै ।
 नंद हेल वृषभानु नैदिनी रहे कपोलन भेलि विहसि कै ।
 ललित किशोरी रूप कृटा कवि उफली बात करत हैसि हैसिकै ।
 दुरि दुरि जात दाहिनी घन में मुँदि-मुँदि जात नैन रवि ससि कै ॥

॥३॥

(१६२)

राजत जुगल किशोर कबीले ।
 सरद नैन निरमल रस भीनी ललित लता तर बति गखीले ।
 मुज भीरें सुखयात मुदित मन नैनन नैन मिले सरमीले ।
 ललित किशोरी निरजन वन में दोऊ रास विलास रंगीले ॥६॥

शृंगार विलास लीला

(१६३)

हमरी जान दुऊ मे रानी ।

ये कहि वरन वसन जाभूषन सकुचन मृदु मुसकयान समानी ।

ललित किशोरी कसी कंतुकी पैर तार रचि सौंधि सानी ।

पुरुष होय पहिरै जो घाघरि जग युवतिन कीसो जगबानी ॥

॥१३७॥

(१६४)

क्यों जी कौन मोहन लाल ।

पहिचानौ तौ तुम्है सराहैं कौन राधिका बाल ॥

ललित किशोरी सदा परस्त्री नाहीं हांसी ख्याल ॥

बड़े भ्रमन सीखी सतगुर सौ विद्या छंदर जाल ॥१४१॥

जुगल किशोर गुप्ता प्रगट लीला रास पैवाध्याह्न की द्वितीय प्रकरण

(१६५)

मिलत रास में पिय प्यारी ।

उदि उदि भ्रमत बकौर चंदमुख चौकित लाल बाल सुकमारी ।

ललितादिक अलि चंवर हुरावत भ्रमकि-भ्रमकि होती बलिहारी ।

ललित किशोरी चपल चलत भुकि मुख मोरत ओटत पट सारी ॥

॥१५७॥

(१६६)

वृंदा विप्लि चकौरी सुंदरि लसि चौगान की गैद मई ।
 ससि मंडल जुवतिन तन धावत नम मयंक उदि कबहुँ गई ।
 टरत न कौटि जतन निखारे प्रीतम प्रेम के रंग रहै ।
 ललित किशोरी नवल लाल हवि वदन सुधामृत रस कन्ह ॥१५६॥

(१६७)

नाचत है होड़ा होड़ी ।
 रासाधिप रस रास विलासि विहसि क्लृप्त टोड़ी ।
 मो तन चितै कहत क्यों भूकृटी नलि हंसन मुस थोड़ी ।
 ललित किशोरी दाद ननन गुन गान तुम पै होड़ी ॥१६१॥

बीसवाँ दल- मान माधुरी

लली ललित मान लीला

(१६८)

बौली जी बौली धूँघट खौली बूक क्षिपी बलि मोरीझ ।
 झुजी लिया तन ना हंसि हेरौ क्यों रुसौ वरजोरी झ ।
 रैन दिन तुमहीं रंग राती माती ललित किशोरी झ ।
 चित्र पूतरी वनि ढिंग वसि हौ चंचलता तजि गोरी झ ॥१६॥

(१६६)

नवेली राधा काहे को मान करी ।
 कष्ट रौण तजि चिबुक हाथ गहि बर्यो ना कै मरी ।
 कबहीं भई कनोसी वा हा पानी जात डरी ।
 हम जानत सब ललित किशोरी लपटि न हिये लरी ॥१७॥

मा लिति मान लीला

(२००)

हारो जी हारो मैं हारो बाल ।
 जो चाहै सो करिसे किशोरी पैयाँ परत है तेरो लाल ।
 कर मत रौण निकुंज स्वामिनी बिन कारन रस कैलि स्थाल ।
 ललित किशोरी दैस बनाऊँ तुष पद तल रज तिलक भाल ॥

॥ २०५ ॥

(२०१)

तुम मत स्त्री राधा रानी ।
 मोसौं वदि वर जीत मतो करि सबहिन आज मानता मानी ।
 मैं अनन्य हन चरन उपासक जानौं ना को देह दानी ।
 ललित किशोरी राति लीजिये बात मिरी बलि बलि मुख्यानी ॥

॥ २०६ ॥

(२०२)

कौहँ फुलवा लेउ री फुलवा ।
 चुनि चुनि कली विचित्र बनायी वंदी वैना हरुबा ।
 महकि रहै घर बाहिर पहिरे गूथ्यो दीना मरुबा ।
 ललित किशोरी सीस फवै बति गजरा कंचन गरुबा ॥
 ॥ २११३ ॥

(२०३)

ससि री श्याम सुन्दर को त्यागो ।
 धिक् धिक् मैं बिन बात रुसायो कैसिहूँ जाय मागो ।
 उठत मरौर हिये मन व्याकुल पीतम फतौ लगावो ।
 ललित किशोरी बहा दरस दै दीउन बाज बिगावो ॥ २१७ ॥

मैना मान सीला

(२०४)

चली सखी बाज जमुनियाँ के कूल ।
 फूली वैलि कमलनी रंग रंग मधुर मधुर सुन्दर समतूल ।
 दूजी वैलि बाय लिपटी तिहिँ बिकरी मधुपनी पतियन मूल ।
 ललित किशोरी फूल विभाँतिन लता लता सुंदर फल भूल ॥

॥ ३४६ ॥

(२०५)

तौ बिन श्याम सुंदर कुम्हलानो ।
 बद्धुत नील कमल हवि सरिता तुव मुसवद बिना मुरझानो ।
 मन मराल या हवि मुक्ता बिन वातुर वापुहि बाप हिरानो ।
 ललित किशोरी मिलि भेटौं चट कियो चहत अब प्रान पयानो ॥
 ॥३६७॥

(२०६)

जान जा मैना उदि उतै करी बहुत ^{बैक} कबवाद ।
 कहा कहै तौ बज सौं बौयन बीज विषाद ।
 बौयन बीज विषाद स्वाद नहिं बातन तेरी ।
 बाहिर जैसी श्याम त्युहीं अंतस है येरी ।
 कुटिल कपट की गांठ वदै मति थेह ताता ॥
 ललित किशोरी मली चहै तौ उदि उदि जा जा ॥३७१॥

स्वकीसर्वा दल- मधुपान माधुरी

मधुपान लीला

(२०७)

हित सौं पान करत मधु दौऊ ।
 नवल सु कुंजलता वानंद मैं ब्रज जुवतीजन वानन कौऊ ।
 बाहिर ठढ़ी रूप गुन वागरि मुनि कन्या वादिक ससि सौऊ ।
 दारे वाय बुलाय के बूछन ललित किशोरी दीजि मौऊ ॥३॥

(२०८)

दौड मधुपान किये मग ढौलैं ।
 ऋष्ट बैन तीतरे बाँलैं ।
 ललित किशोरी हवि दृग तीलैं ।
 बतियाँ प्रीति पा किलीसोलैं ॥४॥

(२०९)

कैली कैल बने वति नीकि ।
 पन रंग पट चटकीलै सुंदर चाँद सुरज परे फीके ।
 चट चट तरफत बसन बैंग बैंग कैं जुगुल मध पीके ।
 ललित किशोरी निरसि निरसि हवि बलि बलि लाल लली के ।
 ॥७॥

मदन मधुपान

(२१०)

बै बै मनमोहन मन मुहनी ।
 रूप अरूप कसन हवि वदभुत कैं कसन हवि जुहनी ।
 पौढ़े लपटि मदन बस लंपट उकसि उकसि बल कुहनी ।
 ललित किशोरी सुरति कैलि विच मुस चुँवन मन दुहनी ॥३१॥

मधु विसाहन लीला

(२११)

चलौ यार हिलि मिलि मधु पीवैं ।
 अंगूरी नारंग करारी पाचि पाचि मुहरन की लीवैं ।
 चौसी होय वान नाथक सी परसत पार न दूजी क्वीवैं ।
 ललित किशोरी हाट हठीली मिलैं दाम मुहमगि दीवैं ॥३६॥

(२१२)

यार यार भजि कुंज छिपे ।
 छूटी छटा क्वी सीमा की रैन रैन मयक दिपे ।
 ललित किशोरी बुरी बनै को अंगूरी सूध तकाय चिपे ।
 बुझि लेहु घर घर ब्रज वीथिन साता वही कलक टिपे ॥

॥७७॥

बाईसवाई दल- कुंज विलास माधुरी

ल्यारिया ब्रास लीला

(२१३)

दई मारी निंदडिया ने सात लई ।
 ते अंगार याको मुस मुलसौं, हाय वाज कुल कान गई ।
 हूँडा ढाँडी मची होयगी ललित किशो रि उपाधि नई ।
 पत्त लगत बाधी निसि बीती कैसि अब घर जाय दई ॥२॥

नींद परीक्षा लीला

(२१४)

जैसे बहु जागत हैं धनश्याम ।
 सोवत तुमरी जानि मूँदि रही जानि बूझि दुग वाम ।
 हरे हरे अंगन पट टारत करत न अंग विप्राम ।
 ललित किशोरी न्यारेह नीके लंपट निकट निकाम ॥ २१ ॥

(२१५)

जागौ जागौ गुह्याँ अब जागौ जी ।
 यैहि मढये सब विवाही मेरे कंठ उठि लागौ जी ।
 यैक यैक संग सुरति करौंगो नातर सब उठि भागौ जी ।
 ललित किशोरी मसकी अँगिया कढ़े भजत कुच लागौ जी ॥
 ॥ २२ ॥

अलसान के पद

(२१६)

गौरी कपलारे नैन तिहारे ।
 बनियारे सरसाने कजरा ज्यों सिर सौल कटारे ।
 कारे कूटिल कजाके गोकुलानन लौ रतनारे ।
 ललित किशोरी चपल कबोलै मो वैखियन के तारे ॥ ७० ॥

(२१७)

भुकि रहे नैना नीदि भरे ।
 निरसि निरसि कवि कैं परस्पर छत उत नाहिं टरे ।
 बलि अलसान सौख्ये चाहत नाहिं फल पारे ।
 ललित किशोरी देखे गलवाहीं बलियन चित्त हरे ॥ ७३ ॥

(२१८)

नागरी नागर रूप सुभाने ।
 दुऊ दुहुन की क्वी कैं रस बलियन माहिं भुलाने ।
 नैनन सैनन भौंह कटाक्षन मन ही मन अतुराने ।
 ललित किशोरी भये कैलि वस करत मनहिं मनमाने ॥ ७४ ॥

निर्कुंज चाह के पद

(२१९)

मोहिं विहारिन मदन सतावै ।
 हौं कहु काज बिगारौ ना कहु बाकी मो पै आवै ।
 तुव दासै श्रीललित किशोरी नीच आनि ठरपावै ।
 चलिये वेगि निर्कुंज भामिनी वसु कियो फल पावै ॥ ७५ ॥

(२२०)

जुगुल रंग रस राते नैन ।
 वागम नदी झुकी सी पलकें करत कहुँ बरसाते वैन ।
 अमी पान पिय अघरन जाचत प्रिया कहत मुसक्याते मेन ।
 ललित किशोरी रस भरी वतियन रूप सिंधु सरसाते वैन ॥७॥

निर्गुज गमन के पद

(२२१)

असदियों अरुनाई बाई कीजि जो सुख सैन हो ।
 सेजदिया रचि राखी मैं भीनी भीनी रैन हो ।
 नागर नवल दंड कहु दीजि बैठी डोलै मैं हो ।
 ललित किशोरी लाल लालि उर मीठे मीठे वैनहो ॥८॥

(२२२)

रंग भीने प्यारी प्यारे री ।
 झुकि झुकि परत जम्हात परस्पर कमल नैन मतवारे री ।
 गलवाही दे जात निर्गुजन दुख मुस चंद निहारे री ।
 ललित किशोरी चलत लटफटे जीवन प्रान हमारे री ॥ ८७ ॥

(२२३)

रंग मीनी राधे प्यारी हो ।

गज गम्भी मुस्कान माधुरी बैसियाँ जति कजरारी हो ।

मम मोहन के रंग में माती गरबाहीं सुकमारी हो ।

रसिक नवल वर अविचल जौरी ललित किशोरी बारीही ॥

॥८८॥

पार्यंक विलास के पद

(२२४)

बौदे नील वसन धूँजन में सोवत ही राधे ^{सुरवरासी} सुखमसी ।

मोहन आय जगाय कही पट लौलि लसौ ससि देज प्रकासी ।

भूलि कही भूनी है किशोरी करन लगे लालन उपहासी ।

वानन सौ पट टारि दियो चट देज की हूँ गई पूरनमासी ॥

॥१०७॥

(२२५)

पाव पाव पे धरौ न प्यारी ।

लेहु उतारि मानि मेरी वलि असगुन होत महारी ।

डरपौ मति हो न्यारीह बैठी पौढी सुरुचि सवारी ।

ललित किशोरी भूमि लौलि पग हंसि कही भली विहारी ॥

॥११२॥

(२२६)

बाज सखि सोभा को नाहीं वीर ।
 उर लपटाय दुज कसि सोये राधा नंद किशोर ।
 हाँह कपोल कहुँ हुम पातन कहूँ दुति चन्द्र की थीर ।
 ललित किशोरी जाल रैध व्है निरखत वृगन की कीर ॥ ११६ ॥

(२२७)

प्यारी पायत चरन फ्लोटै ।
 चटकि चूमि जगुनि माथे सौं परसि परसि पायन में लोटै ।
 चुबन चौप कमल मुख ललकत ललित किशोरी वरजत ढोटै ।
 छिरकत नीरि वीरि जगुनी मोहन लाल कपोलन वोटै ॥ १२० ॥

(२२८)

कैम छुटि लपेटि पीतांबर कै समेटि रही सोय ।
 चाँपि चाँपि मसकै पट दस दिस तनक रैध मुख जोय ।
 मोहन लाल उठाय जीलि भरि सुरति रंग रस भोय ।
 ललित किशोरी हठ न राखिहौं होनी होय सु होय ॥

॥ १२६ ॥

(२२६)

नैन सौ नैनन जोरि रहे गरवाह दिये नित नंद दुलारी ।
 मेलि कपोल कपोलन सौं कटिहू कटि सौं, वह रूप उजारी ।
 रसिक सिरोमनि ललित किशोरी तजि परजक होत नहि न्यारी ।
 कवर को विविधान तिया तन दैसांतर दुस मानत प्यारी ॥

॥१३४॥

(२३०)

राजे सेज किशोर किशोरी ।
 जब नीवी पी कुहं जागुरी बैठी सिमिटि दुऊ कर जोरी ।
 आसि आसि हटि ढोरत ग्रीवा भृकुटी दावि चितै चस कोरी ।
 लुढत पाँय पीतम कवल गहि ह हा कहा कवि मुकट लुढोरी ।
 कुवरी कर धरि सीस आपने पुनि पण तल सिर धरो चह्यो री ।
 ललित किशोरी गही लाल चिबु कृम कृम कीनी सिधिल गदोरी ।

॥१३७॥

तेईसवाँ दल- निरुंज विहार माधुरी

सुरति सुमिरनी

(२३१)

श्याम तमाल कनक वैली विव रस कैली करि तन मनसचित ।
 प्रफुलित कंज कंज की कलियाँ कुमुद बंधु तजि कसि कसि मंचित ।
 उकसत तिल तिल कनक वैलि ससि श्याम तमाल विकसि कसि संचित ।
 ललित किशोरी सकल कर्मो क्रम क्रम लीचन सीलत मंचित ॥१॥

(२३२)

बिहस्त वन रति भाँति जाँसैं ।

बिच बिच सीस पाँय तै पाटी पत्तिका तर जालीन भरोसैं ।

चढ़ि चढ़ि गुल्म लता धन दुरि दुरि तकि तकि बँक बटोही

मौसैं ।।

चुसि रसाल फल ललित किशोरी नैकै मन अधरामृत चोसैं ।।५।।

(२३३)

दावे कुचन न पिय परसावत ।

दसनन चाँपि कोर घूँघट ना अधर कपोल कहि दसावत ।

नीवी बंद जौक ग्रँथि वै जकहि जकहि कसि रस सरसावत ।

पग तल पेलि पीव उर सरसत उरु दावि कटि पट वरसावत ।

हिये हसन दृग कोपहुँ हूँ करि सुरतारै रँग वरसावत ।

ललित किशोरी बाँधि बाँधि पग कँची लालन जी तरसावत ।।

।।२३।।

रति रँग तरंगिनी

(२३४)

बिछुवा बजे सब रात कम् कम् ।

दबे दबे पैयन को साधि निकसत ख धुँधरु सौँ कम् कम् ।।

उलटि फुलटि रँग रँग बाभरन चक्रदार चाली रँग चम् चम् ।।

सँभु उरौज श्यामघन वरचन कर कँकन किँकिन धुनि वम् वम् ।।

झिटके पौ पीतम गहि रास्त परी पियारी के मन रम् रम् ।

ललित किशोरी धूम बटोखिन भौर मये जब लाज कीधम् धम् ।।३०।।

(२३५)

जो तुम नैन कटारी मारी ।
 कियो विसुध रस कैलि पिया को तो अब मान हमारी प्यारी ।
 वीरासन भुकि सम्हरि कीजिये रति विपरीत पियारी नारी ।
 ललित किशोरी धीसौं काम गढ़ हू हा बोलि विहारी हारि ॥

॥३६॥

(२३६)

द्वैपति सुरतारि करि चुके ।
 वागि लगे कुरकुर की रसना बोलि उठे मिलि कुके कुके ।
 चपल भई सतगुन थिर दामिनि रहत न नव धन श्याम रुके ।
 चला चली रति ललित किशोरी निरसि ते नैनन दुके दुके ॥

॥५२॥

(२३७)

बौचक वंगिया के वंद टूटे ।
 उछरि कद्वे कुच मनौ कंद तैं द्वे कलमस्त से छूटे ।
 कै द्वे कनक कमल सोभा सर छवि सिवार से फूटे ।
 ललित किशोरी कैलि करत चट अलियुत पीतम छूटे ॥ ८७ ॥

(२३८)

मुख चूमत वैसरि उरफि गई ।
 लपटावत मुख रसिक ग्रीव गहि लली फुकारी दई दई ।
 छुटत न कैलि शसर्न वैसर लट चौगुन चौप विहार मई ।
 ललित किशोरी सका सकी तिल तिल विहरन नई नई ॥८८॥

(२३९)

हरपौ ना हरपौ ना जानी ।
 सिमटी ना निधरक रासौ मन हुलन न पेहै फट की पानी ।
 चौटिहु के काटे की पीड़ा होय जु भूलिहु तौ मै जानी ।
 ललित किशोरी कमल कली सीजानौगी तन तनक चुपानी ॥

॥१३७॥

(२४०)

विहरत बुरी बाधित प्यारी ।
 विष्टुरि जात कुच कंठ कपोलन छुटि छुटि जात भरत कबारी ।
 कटके जानि उमै कामिनि कर सील दियो चट बंद विहारी ।
 फूके दियो फट ललित किशोरी सटकी हिये दीप उजियारी ॥

॥१३८॥

(२४१)

गरमा गरम दूध रस नागर ।
 पीवत जाप पिवावत कामिनि कधर लगावत ना गुन जागर ।
 वैसो काचार का कहि सुरि भौंह मरौ रत रूप उजागर ।
 ललित किशोरी वरजौरी करि कैलत सौलत बौठ सुधाकर ॥ १७२ ॥

(२४२)

गौरी टुक जाँ को हार उतारी ।
 सौलि धरो हिन भरि को ककना नथ की गूँज सवारी ।
 दावि दावि का बैठत छूटि हियरी तनक उभारी ।
 ललित किशोरी लाज लूक दै हियरा सौलि विहारी ॥ १७५ ॥

(२४३)

थर थर कंपत अँग अँग प्यारी ।
 नीर लुँद डरि जावत नैनन हूँ हूँ करत भरत सिसकारी ।
 समिटत फिरत सकौरत गातन दावत वैचि वैचि तन सारी ।
 ललित किशोरी सीत सताई सुरति ब्रास कै विपति महा री ॥

॥ १८७ ॥

(२४४)

विहरत कंचुलि पी पहिरावत ।
 खोली हुती वापुही अबही वापुहि कसि कसि वंद लगावत ।
 वनी गुहत कैलि वलि कूटी खुली गुंज नथ सूत भिरावत ।
 ललित किशोरी कैलि की माती टसकी ना लैष्ट दुलरावत ॥
 ॥ २१० ॥

(२४५)

बालस युत दैपति लपटान ।
 भुकि भुकि परत दुहुन फलका पर लोयन की मुकलान ।
 सिथिल रैन चुंबन वा लिंगन गहन उरौजन पान ।
 ललित किशोरी विलोकि न विसरत विसरत फल नैनान ॥
 ॥ २४८ ॥

चौबीसवाँ दल- स्वप्न विलास माधुरी

द्वितीय प्रसंग

(२४६)

श्यामा श्याम कंठ लगि सोये ।
 बोदे बलि भूनी उपाती भालमलातससि वदन लकीये ।
 मदमाते रस रूप विमाते माते नौद नेह मद भीये ।
 सुरति कैलि विवि विवस विमाते वीरा सुधि बुधि गति मति सोये ।
 पी पी मधु विविध कलसाते लपटाने कुल कान्हि धोये ।
 फरकत कधर नाद पुकारो चपल दृगचल हू दृग जोये ।

चंचल भुज कर कमल उरोजन झुलत मुंदत फरद समीये ।
 हठि हठि कटि तट मिलत निपटि जटि कदली जेघ करि लोल
 मिलीये ॥४॥

दीर्घ स्वास अल्प वेग धूनन केलि कला रस सिंधु विलीये ।
 सांच सांच यह ललित किशोरी ना जानौं जानै के सोये ॥७॥

(२४७)

जानै हैं री जानै हैं ।
 कुन सुन कुनसुन करै रसील काम केलि अनुरागै हैं ।
 फुल्ल कमल दा डिम सिर कुलही ललित किशोरी तानै हैं ।
 ये कैसी निंदिया कदही सिरकि सरकि उर लागै हैं ॥८॥

तृतीय प्रसंग

(२४८)

उठौ उठौ जो बोलि गईं चिरिया ।
 सोय गईं हीं हाय सवै तुम पौ फाटन की ह्वै गईं विरिया ।
 चटखट कली गुलाब की चटकत दुरत फिरत कमगी लसुरिया ॥
 बोलि चुकीं कै बोलन की अब कुर कुटियां करती लसुरिया ॥
 बाजि गईं नौवत कै बीजवै दमकत ना घन मुंदि मुंदि तरिया ।
 ललित किशोरी फल फलतिह जाइ गईं हा घर की घरिया ॥

॥११॥

(२४६)

सजनी रजनी देर मरी ।

छुदुर छुदुर लगि रही हिये मैं तासों तुमै न नीद परी ।

वृथा वहिम मति करौ नीदि भरि सोय लेव सुख कै मरी ।

उरु उरु लैपेटि उमगि कै सीस बाहु भुज पीठ धरी ।

ललित किशोरी भराभरी निसि जाव सेज क्यों डरा डरी ।

बीनि बजे ना कैं देखिल्यो हम देखत फल घरी घरी ॥१२॥

पंचम प्रसंग

(२५०)

जागि जागि उठि पीयै मधू री ।

लावत रतन सुराही लैपट हाथ पियाला नवल वधू री ।

लटपटाय कुकि भ्रूमत माते उर लिपटात ज्वेत कधू री ।

मई ज्वेत कैलि मद अद्भुत ललित किशोरी कली कधू री ॥

॥१७॥

परिशिष्ट - २

चित्रावली



शाह कुन्दनलाल एवं शाह कुन्दनलाल अपने
परिवार सहित ललित निकुंज के
बरामदे में फर्श पर
उत्कीर्ण



सलित निगुंज

(शाह बिहारी जी का मंदिर)



सलित निकुंज में स्थापित
राधा रमण जी का विग्रह



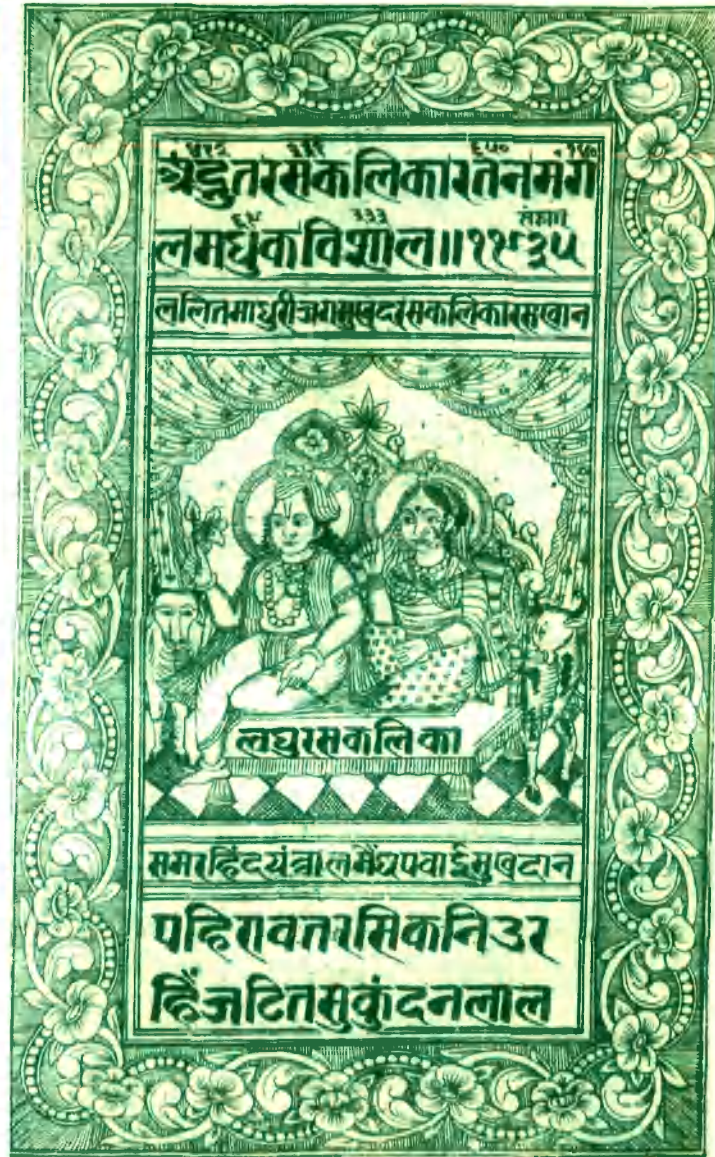
चंदपोल
(निजी मवन का मुख्य द्वार)



चंदपोल की पूर्वी ह्यूँदी में
ललित किशोरी जी की समाधि



चंदपोल की पश्चिमी ह्यूँदी में
ललितमाधुरी जी की समाधि



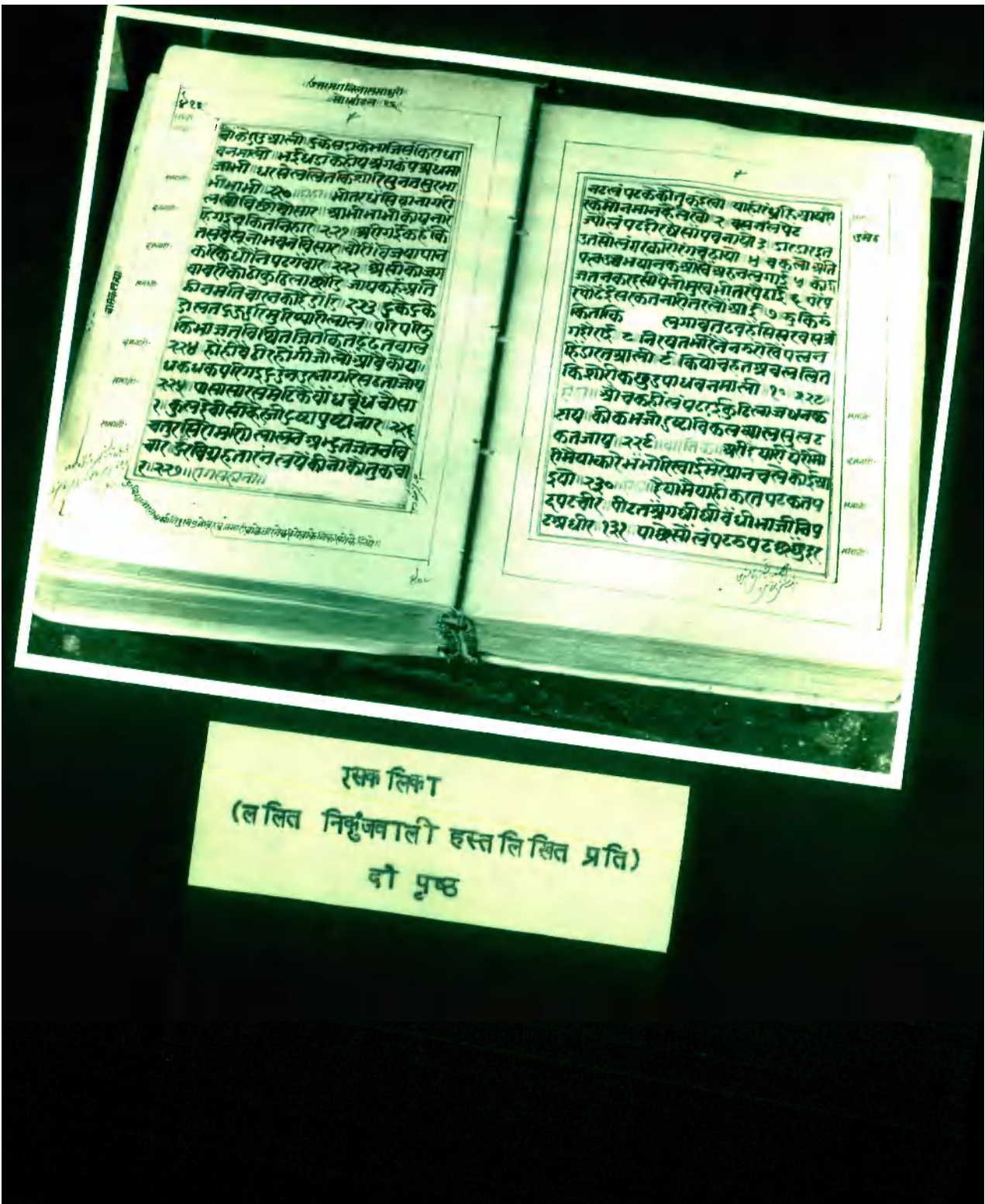
वृन्दावन शोध संस्थान से प्राप्त
मुद्रित रसक लिका का मुख पृष्ठ



श्रीराधारमणचरणकमलेभ्योनमः
 श्रीकृष्णचैतन्यपादपद्मेभ्योनमः
 अथलघुरसकलिकालिखति
 पद॥रागसहाना॥

नमोनमोश्रीशचीकिशोर अथयोरसविलासप्रेमासुउदेकियो
 कनुणकीकोर वलिदंटावनचंद्रप्रकाशोपतितनत्रंघ ।
 हिथेवरजोर ललितकिशोरीमोसीकुटिलैदीनोसरवस ।
 तिनानिहोर ॥१॥ नमोनमोश्रीभटगोपाल प्रगटेश्रीदंटा
 वनजिनहितशशिश्रीराधारमणलाल वज्रैविविधिसुर
 वाजनवीनामुरलीमहुपरडफकारताल ललितकिशोरी
 गोपीनिरतहिंमधुरगावहिंगीतरसाल ॥२॥ धनसतगुर ।
 राधागोविंद जिनकेपदनखचंद्रदृष्टासोमिलोमुधादं

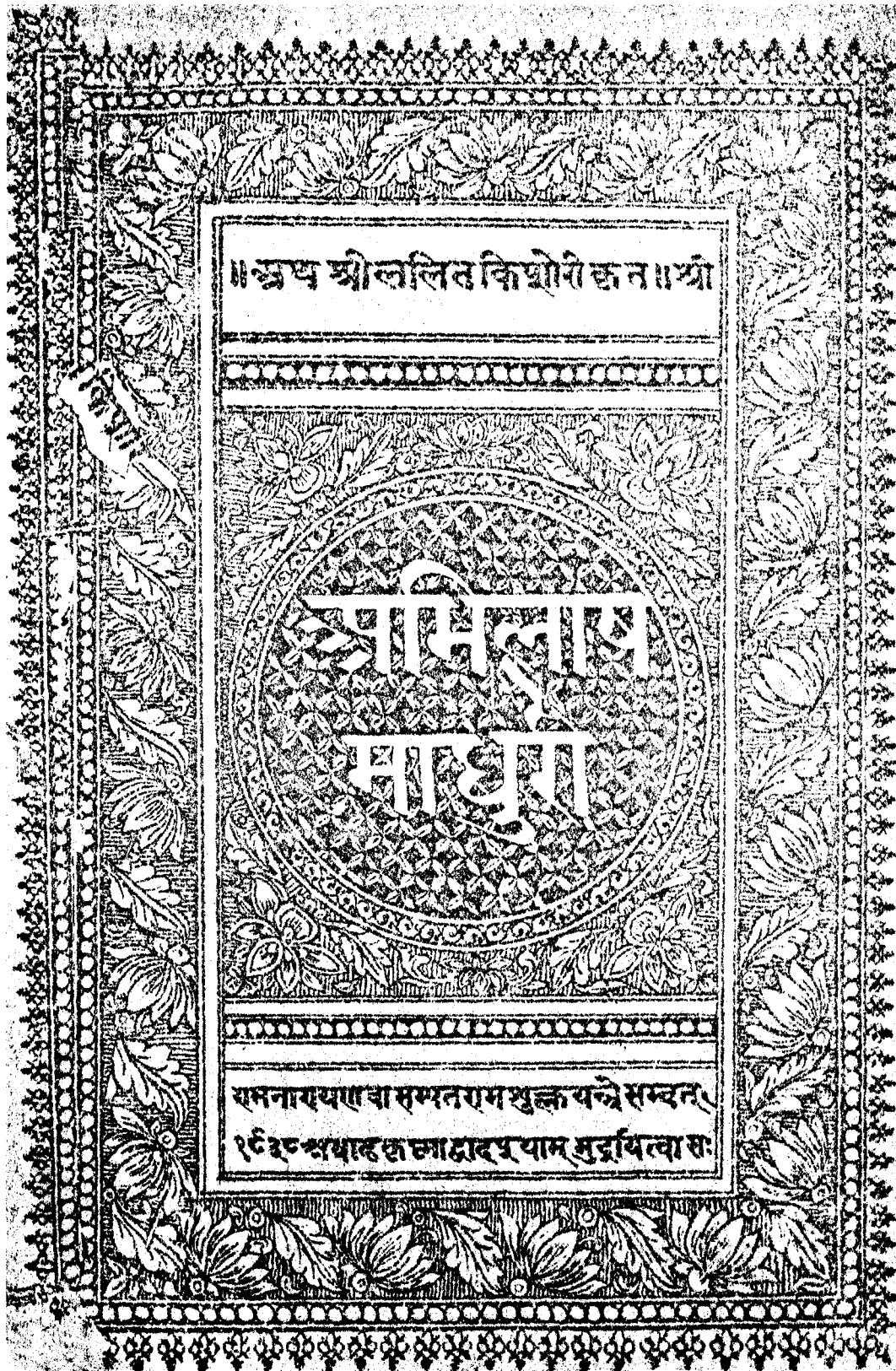
वृन्दावन शोध संस्थान से प्राप्त
 मुद्रित लघु रसकलिका का प्रथम पृष्ठ



रसक लिपि
(ललित निर्मलवाली हस्त लिखित प्रति)
दो पृष्ठ

परिशिष्ट - ३

फोटोस्टेट का पियाँ



ग्रन्थ वृत्तिका का पुस्तक
(श्री रावर्ध्नि विस्वनाथ पुस्तकालय कटरपुर से प्राप्त)

॥१॥

श्रीगणेशायनमः॥ श्रीराधारमराम्च
 रनकमलेभ्योनमः॥ अथ श्रीललितकि
 शोर्गविरचित-अष्टयामसेवानुकरनब्र
 ह्मदलिरव्यते॥ अहोप्रियेकवलौपहि
 ताङ्॥१॥ अवहन्ति न निकुंजतिहारे
 चापनवरनपाङ्॥२॥ नाडिगेरवि
 भाससीलीरंगभरितानलनाङ्॥३॥
 नंसुरलीलुहचंगतैवूरीन्पुष्पनक
 मिलाङ्॥४॥ रजनीविगंतललितदल

॥१॥

स्वरपुर के प्राप्त

वन्द्याम सीता के वस्तुसक का प्रथम पृष्ठ

ऊँ सनिलीजै नो नो नती दो जै दास निकुं
 जनि स्रदेन दाहीर समनो स्वा मिनि सो
 भायुंज ॥ दिज पार मै उषाम के देह म
 स्तनो ओर तिहं काल तिहं लोक मेता
 कोठी कन होर ॥ पद चौरासि संपूर्ण
 संवत् ॥ १९५८ ॥ समवशी ॥ विस
 पोतवा ॥ १९ ॥ हस्ता अक्षर जगन्ताये
 के ॥ अममस्तू ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥

वाराणसी के प्राच्य

वन्द्याम लीला के हस्तलिख का वस्तुम पृष्ठ



श्रीकृष्णचैतन्यचरणउपासी श्रीगोपालमंदगोस्वामिपर
 वारगोस्वामिश्रीरामगोविंदजीमहारजकेकृपापात्र श्रीगोविण्णाम
 महाउज्ज्वलरसाधिकारीसाहकुंदनलाललखनऊशहिरकेरहिने
 बालेउन्होंनेसकुंदुवश्रायकेमितीवैसायसुक्त १३ संवत् १८१३ को श्री
 वृंदावनमेंयासकियो श्रीरसलीलाद्वाराप्रतिगुप्तउज्ज्वलभावना
 रसकोप्रध्वदरसाधोश्रीरमावशुक्त ५ संवत् १८१७ को प्रतिप्रभिला
 यसंयुक्तनमनधनअर्पनकारिके श्रीजीकेमंदिरकोआरंभकरायो-
 सोमंदिरसंगमरमरपत्थरकोप्रतिप्रपूर्ववरय ८ मेंनिरमानहोयकारमि
 तीमावशुक्त ५ संवत् १८२५ कोसामेंउनकेनित्यनिजसेव्यश्रीरधारम
 राजीबिराजेमहोत्सववडेउत्साहसोंकियो ललितनिकुंजमंदिर
 कोनामधरयो तापीछेकार्तिकशुक्त २ संवत् १८३० केदिवसगंध
 श्यामनामसंकीर्तनधुनि आनंदमेंसाहकुंदनलालनेश्रीवृंदाव
 ननित्यनिकुंजनिवासपायो उन्होंनेजोपुस्तकरचनाकरीसाकोना
 मरसकलिकाहै बाहीमेंसेसाहकुंदनलालउनकेलघुध्यातानेसम
 यसमयकेथोडेथोडेपदश्रीरकोईकोईलीलासंयुक्तकारिकेयह पु
 स्तकबनाई यासौलघुरसकलिका याकोनामरख्यो ॥ ॥

यहपुस्तकलखनऊकेसमरहिंदयंत्रालय
 ॥ मंछपीसम्बत् १८३५ ॥

लघु रस कलिका

प्रथम भाग का पुस्तक

मिलिलितहिलोरी॥१२॥ ब्राह्मजलद्वारसखीजन
 पोवतप्रेमसुधारसवेरी॥१३॥ शोभासदनवदनदं
 तिकेनिरधिनिरषिडारतटपातोरी॥१४॥ वंशीरणि
 तत्रनुणश्चधरनपरमधुचंपलगतित्रंगुरिनपोरी
 ॥१५॥ देवीमनीसुनीनहिंकमनीरमनीजोरीललि

तकिशोरी॥१६॥ ६७४

हेनैचरती ॥

॥ ब्रह्मविहारा

अस्मानेखंजनसंनैनाकदततोतेसुखरसवैनाट्य
 तिथविकथुकाहतवनेनात्रलोचरतीवारी ॥ तानि
 तानिपगत्रैडिसिको रंजमुद्राईलैअंगमंगोरैनिरधि
 निरपितरुचरिदण तोरैसुखअरविंदनिहारै ॥ पुल
 विजतनदीनेमलयहोपीतमकरतमुकुटपाथोही
 शुकीपमतत्रैपियांअलसार्होअननअलकनियारै
 ललितकिशोरीरतिवंगरातेसुमनसेजफूलनसमाने
 नवलनेहकपुत्रकसकुचातेमूदिनिकुजकिंवोरै


॥ ६७५ ॥

इतिश्रीललितकिशोरीविरचितलघुरस

कलिकाप्रथमभाग

समपूर्णा

म

नृपलता	३२५	विसातिनलीला
		
श्रीराधारमहाचरणकमलेभ्योनमः		
श्रीकलचैतन्यपादपदमेभ्योनमः		
अथलघुरसकलिकाद्वितीयभागालिख्यते ॥		
अथपाशाकलि		
विसातिनलीला		
॥दोहा॥		
नृपलताभामिनिभवनश्रीवृषभानदुलारि ॥ रा		
जीअलिसंगगावर्द्धीनिरततद्वेसुकमारि ॥ ६७६ ॥		
॥रागविलावल॥		
नृपसिंधुवृषभानुकिशोरी ॥ चहुँदिशिललिततस्य		
मनोहरकसनशुरंगविचित्रितगोरी ॥ थविजलभंवा		
आंआनिप्रतिनेहनवीनयथोहहिलोरी ॥ तलिनकि		
शीरीविहरातअनुदिनमनमीहमनमीनकिशोरी		
॥६७७॥दोहा		

विसातिनलीला

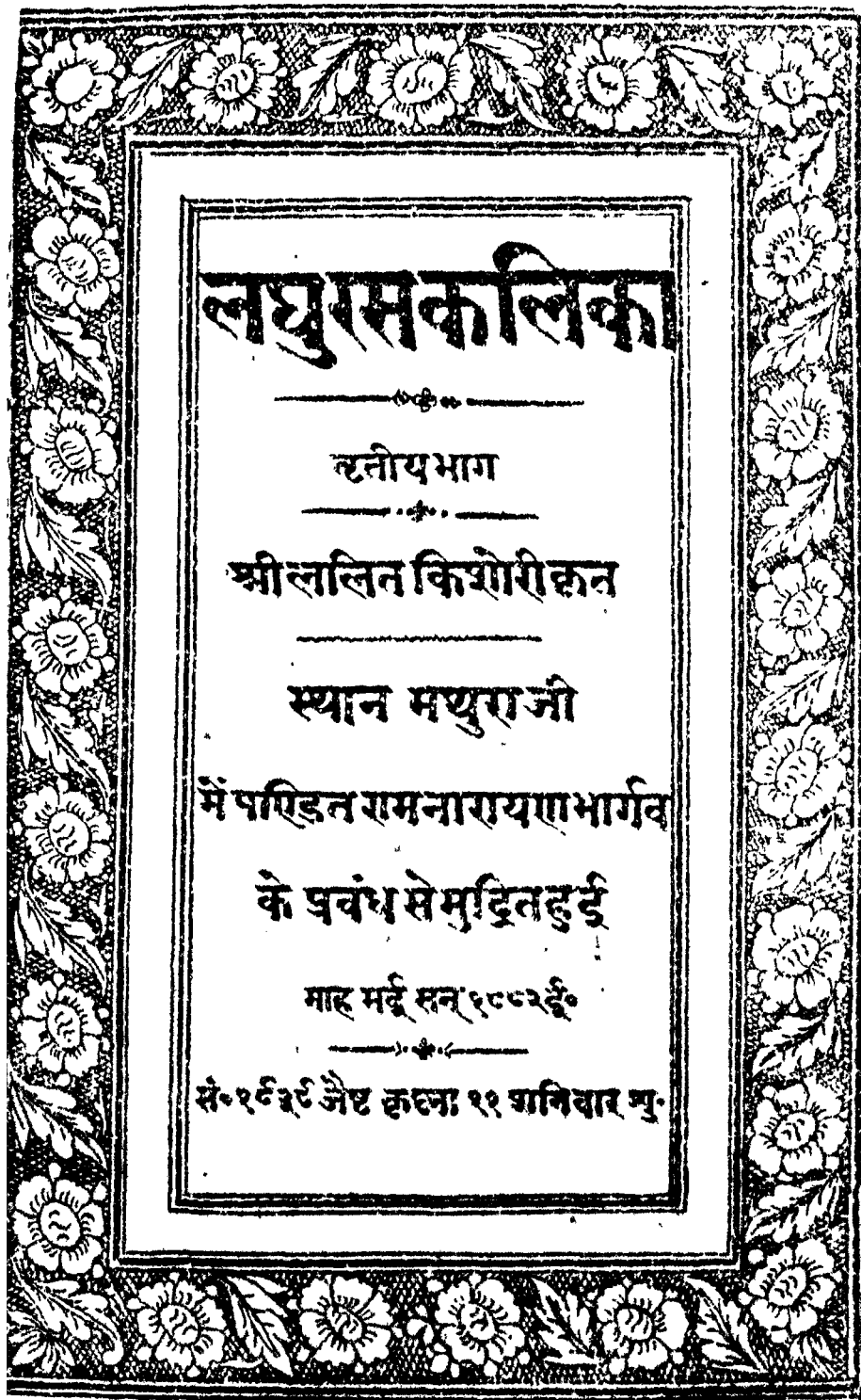
रसमयी

नमः

रस रस रस

विहीन मान का प्रम पृष्ठ

<p>मदनसेजसुखसयनकीजिये॥तजिअनुमानसु वानलवारिनलाबढढेलिनकहाखीजिये॥र जनीतनुनतरलगतिसजनीअपनीसरलसुभ यलीजिये॥ललितमाधुरीनिजप्रीतममिलिअ धरामृतवलिविहंसिपीजिये॥२१२१॥ १ १</p>	<p>॥ रागापरज ॥</p> <p>प्योरोलालप्योरोकेपीयपलोटे॥ढोरीपितंवरो रविजनिपियदेमुवटणकाजोटे॥जनिअधीर नलालविहारिनिहंसिहगत्रंलओटे॥ललित लिहोरोमानिनिशधेमिलोविलिसुषनोटे॥२१२२</p>
<p>॥ रागापरज ॥</p> <p>चौपातचतनकोपाडहनेमननोरधरसीसलैप मरदरहावही॥आगतनमलकाटोरतदशनगात प्योरोजिहंसोसोतहीढोरिआदही॥मानमान त्याममानताहिनाहियेडिबनहेरिनेकपानप्योरो कैसिकमनावही॥होठनमुसकप्रियाआतुरमि लोपियेधुजनविशालभरिअंकअलावही॥२१२३</p>	<p>इतिमानप्रसंगसम्पूर्णम्॥</p> <p>इतिश्रीललितकिशोरीविरचितलघुसकलि काहितीयगारासमाप्तम्</p>



यह एक किताब
दुर्लभ नाम का पुस्तक

भयानक

खप्यारीकोशरीलखप्यारो पीकलीकडरआंचर
 बतमृदुमुसकपायकरतमुखन्यारो अंकमदैअंचत
 चरओरीरसिकशिरोमाशिरूपसुजारो ललित-
 किशोरीसुरतपिछौहोंचंपचांपिछविधाननिछ
 रो २६७५ रागजैजैवेंती दगाबाजपीतमभ
 लीआजकीनीहमारेकहेदुनललीजनमानीरिस
 नीमलेलालगलचांहदीनी करौजीकरौकेलि
 आछेचमगभरिललितकिशोरीहैरसरंगभीनी-
 मिलावोमिलावोहंहोंमेलमिलमिलनवीनान
 वीनीनगीनानगीनी २६७६ रागविहारा
 नागिनिपूछकमलकसिचांपीदौरतकमलदामि
 नीकांपी वरसैदामिनिभीजैरजनी फूलेकुं
 दचंपपैसजनीचंदचंदचकवाकविकासे
 भमरमध्यअरविंदसुवासे लटपूटर
 सकूटकहौना ललितकिशोरी
 रसनारसना २६७७ इति-
 श्रीललितकिशोरीविर
 चितलघुरसकलि
 कानृतीयभाग
 समाप्तम्
 इति

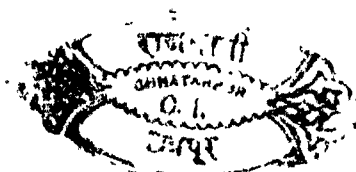
लघु रस कलिका

द्वितीय भाग का अन्तिम पृष्ठ

छात्रिकस्तोत्रा सफा (३६) रागभैरवी ॥

रहा०॥ मैं हूँ जड़िया ब नातवां और खुर है यार की
 गली ॥ महुँचाव मुझको मेहरवां कचे तक उस
 के अच झली ॥ जुलफों में मेरा मन फसा चितव
 न ने मेरी मत छली ॥ सो चांद सी उजारियां प्या
 री है भान की लली ॥ मुसक्यान में है जादू क्या-
 चलने में खूब छलबली ॥ ललिता किशोरी शो
 खियां हैं बाल बाल में रली ॥

समा०॥ अलरसबाह चु मरदुम बकार व बार रवंद
 सुबह होत ही तो लाग अपने काम काज में जाते हैं
 ॥ बला कशानि महुँबत बकूय यार रवंद ॥
 यानि अपने रंधे में लगत हैं ॥ लेकिन अशिक्षु लाग माशुका
 ॥ टी०॥ भोरहिं उठि सब लाग हीं अपने काज ॥



वाक्य वक्ता का ल पुच्छ

विषय उर्दू के लफ्जों का हिन्दी में स्पष्टीकरण किया गया है।
 पुच्छ के नीचे क्लरपुर पुस्तकालय की छहर ली हुई है।

परिशिष्ट- ४

ग्रन्थ- सूची

परिशिष्ट- ४

ग्रन्थ-सूची

हिन्दी ग्रन्थ

मूल ग्रन्थ - हस्त लिखित

१- रसक लिका

ललित किशोरी , शाह कृष्ण शरण गुप्त
वृन्दावन के संग्रह में

प्रकाशित

२- वभिता-चमाधुरी

ललित किशोरी, प्रथम संस्करण सेवत् १९३८
रामनाथ्यण व संपतराम शुक्ल यंत्रालय,
लखनऊ

३- वभिता-चमाधुरी

ललित किशोरी, प्रकाशक शाह गौर शरण
गुप्त, वृन्दावन, संस्करण २०१५ वि०

४- लघु रसक लिका (प्रथम भाग)

ललित किशोरी , प्रकाशक शाह पुन्यन
लास (ललित माधुरी) समरसिंद यंत्रालय,
लखनऊ सं० १९३५

५- लघु रसक लिका (द्वितीय
भाग)

ललित किशोरी, प्रकाशक, शाह पुन्यनलास
समरसिंद यंत्रालय, लखनऊ सं० १९३५

- ६- लघु रसकलिका (तृतीय भाग) ललितकिशोरी, काशी समान शिला,
 यन्त्रालय, मथुरा, संवत् १९३६
- ७- लघु रसकलिका (चतुर्थ भाग) ललितकिशोरी, काशी समान शिला,
 यन्त्रालय, मथुरा, संवत् १९३६

सहायक ग्रन्थ

- ८- अष्टकाप और वल्लभ संप्रदाय डा० दीन दयालु गुप्त, हिन्दी
 साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००४ वि०
- ९- कबीर वचनावली व्योम्या सिंह उपाध्याय, हरिवोध
 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
 सं० २०१५ वि०
- कविवर परमानन्ददास और वल्लभ
 संप्रदाय डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल
 भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
- ११- कृष्ण भक्ति काव्य में सती
 भाव डा० जरण बिहारी गोस्वामी,
 चौलम्बा विद्या भवन, वाराणसी
 सं० २०२१ वि०
- १२ कैलियास, स्वामी हरिदास सुदर्शन चक्र कीर्तिका सहित
 बुज बिहारी पुस्तकालय, वृन्दावन
- १३- फानर्नद ग्रन्थावली सं० पी० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,
 वाणी बितान, ब्रह्मास, वाराणसी

- १४- चैतन्य मत और ब्रज साहित्य
प्रभु दयाल मीश,
साहित्य संस्थान, मथुरा , सं० २०१६ वि०
- १५- चैतन्य सम्प्रदाय सिद्धान्त और
साहित्य
डा० नरेश चन्द्र बैस, विनीत पुस्तक
मंदिर, वागरा , प्र० सं० सन् १९८०
- १६- तसव्युफ कथा सुफीमत
चन्द्रबली पाण्डेय,
नंद किशोर एण्ड सन्स, बनारस,
प्रथम संस्करण
- १७- तुलसी ग्रन्थावली
गी० तुलसीदास ,
ज० भा० विक्रम परिषद् काशी
संवत् २०२६
- १८- पीदार अभिनन्दन ग्रन्थ
सं० वासुदेव शरण कृष्णवाल
ज० भा० ब्रज साहित्य मण्डल,
मथुरा , सं० २०१० वि०
- १९- कयालीस लीला और पदावली
ध्रुवदास जी,
रामरत्न रत्नेश सनाढ्य, कानपुर
- २०- ब्रज का इतिहास (प्रथम भाग)
कृष्ण दत्त बाबपेयी,
ज० भा० ब्रज साहित्य मण्डल,
मथुरा , सं० २०११
- २१- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास
(भाग १)
प्रभु दयाल मीश
राकमल प्रकाशन, दिल्ली , २०२३ वि०

- २२- ब्रज माधुरी सार •
 स० वियोगी हरि
 हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
 सन् १९५६
- २३- ब्रज साहित्य का इतिहास
 डा० सत्येन्द्र,
 भारती मंदार, कलाहाबाद
 स० २०२४ वि०
- २४- भक्ति का विकास
 डा० सुश्री राम शर्मा "सोम"
 चौखम्बा संस्कृत सीरीज,
 वाराणसी, प्रथम स० १९५५
- २५- भारतेन्दु ग्रन्थावली
 बा० ब्रजरत्नदास
- २६- मित्रबन्धु विनोद
 मित्रबन्धु,
 गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
 प्रथम तथा द्वितीय संस्करण
- २७- राधावल्लभ सम्प्रदाय :
 सिद्धान्त और साहित्य
 डा० विजयेन्द्र स्नातक,
 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
 द्वितीय संस्करण, १९६५
- २८- रामचरित मानस
 गी० तुलसीदास,
 गीता प्रेस, गोरखपुर
- २९- रासलीला तथा रासानुकरण
 विकास
 डा० बसन्त यामदग्नि
 संगीत नाटक अकादमी, नयी दिल्ली,
 प्रथम संस्करण १९८०

- ३०- बार्ता साहित्य : स्मृत कथयन डा० हरिहर नाथ टंडन
- ३१- विनय पत्रिका श्री० तुलसीदास, गीता प्रेस,
गोरखपुर
- ३२- सत्य कबीर की सासी कैटेश्वर प्रेस, बनारस, सं० १९६७
- ३३- सनेह सागर कबीर जीसराज,
सं० लाला भगवानदीन
साहित्य भूषण, मंडली काशी,
प्रथम संस्करण , सं० १९७२
- ३४- सुधर्म बोधिनी लाला दिलीदास, वृन्दावन
- ३५- सूरसागर (प्र० १०) सं० नन्द दुलारे बाजपेयी,
नागरी प्रचारिणी सभा काशी,
सं० २००५, प्रथम संस्करण
- ३६- हिन्दी साहित्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
क्टर चंद कपूर एण्ड सन्स,
दिल्ली, १९५२ ई०
- ३७- हिन्दी साहित्य का इतिहास बाचार्य रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
सं० २०१५ वि०
- ३८- मथुरा - एडिस्विट मेमोवर : एफ० एस० ग्राउस

संस्कृत ग्रन्थ

उज्ज्वलनीलिमणि

रूपगोस्वामी,

निर्णय सागर, मुद्रणालय, बंबई
द्वितीय संस्करण, १९३२ ई०

काव्य प्रकाश

मम्मट,

विद्याविलास प्रेस, काठमांडू

हृन्द प्रभाकर

जगन्नाथ प्रसाद भातु,

(नूतन परिशोधित एवं परिवर्धित
संस्करण) दशम संस्करण

जगन्नाथ प्रिन्टिंग प्रेस, विलासपुर
सं० १९१७

पद्म पुराण

लेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई

भक्ति रसायन

मधुसूदन सरस्वती,

मोतीलाल कारसीदास, वाराणसी

भगवद्गीता

गीता प्रेस, गोरखपुर

भागवत पुराण

गीता प्रेस गोरखपुर

महिम्नस्तीत्र

पुष्पकान्त, बृहत् स्तीत्र रत्नाकर,

गीता प्रेस गोरखपुर

योगदर्शन पार्श्वत

सं० मुनिलात ,

गीता प्रेस, गोरखपुर

साहित्यदर्पण

विश्वनाथ , पाण्डुरंग जावजी,

बम्बई सन् १९३६

स्कन्द पुराण

लक्ष्मणराज श्रीकृष्णदास, बम्बई

हरिवंशित रसामृत सिन्धु

रूपगोस्वामी,

वक्तुत ग्रंथमाला कार्यालय,

काशी, सं० १९८८ वि०

...